गुजरात के गौरव

गुजरात के गौरव

[भाग १]

के. एम. मुन्शी

नवयुग प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
नवयुग प्रकाशन,
३६, यू. ए. बैंग्लो रोड, दिल्ली।

मूल्य : ६.००
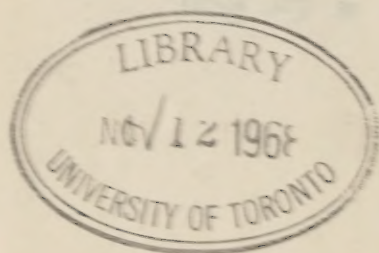
मुद्रक
राजकमल प्रिंटिंग प्रेस,
तुर्कमान गेट, दिल्ली।

चैत्र संवत् ११३९ विक्रमी ।

भोर की वेला में ।

प्राचीन भृगुकच्छ (वर्तमान भरौंच) में दिनचर्या आरम्भ हो चुकी थी, परन्तु नये नगर के कोट का द्वार अभी नहीं खुला था। नए नगर में प्रवेश के लिए उत्सुक व्यक्ति प्राचीन नगर और कोट के बीच आने वाली खाई को पार कर पहाड़ी पर खड़े द्वार खुलने की प्रतीक्षा में थे।

इसलिए कि भृगुकच्छ दो थे, एक था प्राचीन लाट राजाओं का पुराना नगर और दूसरा त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित गढ़ी में बड़ा नया नगर। नए नगर-कोट और पुराने नगर के बीच नदी के मार्ग ने एक गहरी और चौड़ी खाई निर्मित कर दी थी, जो नवीन नगर को लगभग चारों ओर से घेरे हुए थी। इस खाई का मुख समुद्र की गहराई की ओर था, जहां दूर-दूर से आने वाले जहाज लंगर डालते थे।

इसी स्थान के एक ऊँचे टीले पर चार जैन साधु खड़े थे। ऐसा लगता था मानो वह कहीं दूर से चले आ रहे हों। इनमें से एक साधु शेष तीन से दूर टीले के ढाल पर खड़ा हुआ था। साधु की आयु लगभग पच्चीस वर्ष थी। मुख की सुन्दरता, आंखों का तेज और चमकते हुए भाल का गौरव असाधारण था। इस यौवन के प्रथम प्रहर में ऐसे सुन्दर पुरुष ने, ऐसा अखंड वैराग्य भरा जीवन क्यों अपनाया-यह समस्या देखने वाले के लिए समझनी कठिन थी।

साधु की आंखें, विशाल तेजस्वी और गहन थीं। उसने कुछ देर गगनचुम्बी गढ़ के बुर्जों की ओर देखा, फिर नाव में बैठकर खाई पार करते हुए मनुष्यों को निहारा, और फिर मुड़कर त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित विशाल और भव्य महादेव सोमनाथ के मन्दिर शिखर को देखने लगा।

जब इन सबसे सन्तोष प्राप्त न हुआ तो वह नदी की ओर देखने लगा। जहां वह खड़ा था, उससे नीचे गौरवशाली रुद्र-कन्या नर्मदा की गम्भीर पतित-पावन तरंगें बाल सूर्य की किरणों में थिरकती सदैव भावभरी आतुरता से भृगु के इस पवित्र धाम का आलिंगन कर रही थीं।

कोई त्रिकालज्ञ होता तो उसे अनन्त दर्पण रूपी इन तरंगों में आर्यावर्त के अनेकों उत्थान और पतन प्रतिबिम्बित होते दिखाई पड़ते। इन तरंगों ने आर्यों के नाम से भी अनभिज्ञ इतिहासकाल में नागलोक के वीरों को स्नान कराया था। इन तरंगों ने हैहय श्रेष्ठ सहस्रार्जुन की प्रचंड भुजाओं को अर्घ्य दिया था, और हैहयों का वध करके तृप्ति को प्राप्त परशु को स्वच्छ करके उनकी जमदाग्नेय की कालाग्नि सदृश्य मुख-मुद्रा को शान्त किया था। समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधकर वानप्रस्थ धारण किए हुए भगवान कौटिल्य के पातक धोकर इन ही तरंगों ने उनकी आत्मा को शुद्ध किया था।

इन तंरगों ने यादवों की जल-क्रीड़ा, भोजों की सुकुमार नारियों का अंग-लालित्य और ग्रीक योद्धाओं का स्नायुबद्ध सौंदर्य देखा था। सिकन्दर की थकी हुई सेना का विश्वास सुना था। दद्दा की दुर्जय सेना को देखा था और त्रिलोचनपाल के गजराजों के दर्शन किये थे, तथा महान सेनापति बारप का बल देखकर आश्चर्य किया था। इन तंरगों ने लाट देश के स्वतन्त्रता सूर्य को डूबते हुए देखा था, पाटण के मूलराज सोलंकी के पुत्र चामुण्ड की विजयी सेना की गर्व भरी तुरही सुनी थी।

साधु को यह सब सोचने का अवकाश नहीं था, नर्मदा की तरंगें उसे केवल सूर्य की सुनहरी किरणों से खेलती हुई दिखाई पड़ रही थीं।

वह तो केवल अपनी समस्या पर विचार कर रहा था।

त्रिभुवनपाल की लाट को गुजरात बनाने की राजनीति तथा वह कारण, जो उसे बरबस ही यहां ले आया था।

अनायास ही उसकी दृष्टि उस जहाज पर, जिसने अभी-अभी लंगर

डाला था, पड़ी। जहाज से उतरते हुए एक यात्री को उसने देखा और मुख पर सन्तोष के भाव उभर आए। वह तनिक मुस्कराया।

सम्भवतः इसी यात्री को देखकर उसी साधु का दूसरा साथी निकट आता हुआ बोला, 'सूरीजी मेहता का आँबड़ ··।' इतना कहकर वह युवक साधु का मुख देखकर रुक गया।

युवक साधु ने मीठे परन्तु तलवार की धार जैसे तीक्ष्ण स्वर में कहा, 'विजयचन्द्र जी! किसी का नाम लेने से क्या लाभ है?'

विजयचन्द्र ने 'मेहता का आँबड़' जिस यात्री को सम्बोधन दिया था—वह मजबूत काठी का युवक योद्धा था। उसके कानों के कुण्डल और हाथों के कंकरण, समृद्धि का—लम्बा भाला तथा पीछे चलते हुए सेवक द्वारा लिया हुआ धनुष शौर्य का साक्षी था। पीछे और भी कई सैनिक उसका सामान लेकर आ रहे थे। आँबड़ अथवा शिष्ट भाषा में कहें तो आम्रभट के साथ एक काला, ठिगना परन्तु मोटा ब्राह्मण भी चल रहा था, उसकी त्वचा पक्के काले संगमरमर जैसी थी, और कपाल पर चन्दन का त्रिपुण्ड काले पत्थर के शिवलिंग की स्मृति जागृत करता था। उसके सिर पर कनटोपी तथा कंधे पर कंबल था।

'हर-हर भोलानाथ, आखिर जीते जी भृगुकच्छ देख ही लिया।'

हँसकर आम्रभट ने कहा, 'महाराज अब तो हमें अलग-अलग होना है। हो सके तो फिर मिलिएगा।'

'इसमें चिन्ता की क्या बात है? विधि का लेख होगा तो मिले बिना छुटकारा कहाँ है? यहाँ से ऊब गया तो खम्भात ही जाऊंगा। बहुत हुआ। ईश्वर की कृपा हुई तो अब फिर सोरठ नहीं जाना पड़ेगा।'

आम्रभट मुस्कराया—'मणिभद्र जी अपनी बहन के यहाँ कितने दिन ठहरोगे?

'कितने दिन तक, हर-हर भोलानाथ सोमनाथ भगवान की कृपा हो तो जीवन भर।' ब्राह्मण ने आत्म-सन्तोष से कहा—'बहन तो बहन ही

'और नगर सेठ कहाँ रहते हैं ?'

'वह जरा दूर रहते हैं—पट्टणी चौक में मैं वहीं जा रहा हूं।' उस नागरिक ने कहा।

'कृपा करके मेरे आदमियों को वहां तक पहुंचा देना हमीर !' आम्रभट ने अपने आदमी को सम्बोधित किया, तू इनके साथ चला जा, और सेठ तेजपाल को मेरे आने की सूचना दे। मैं दुर्गपाल से मिलकर आता हूं।

आज्ञा पाकर उसके अनुचर नागरिक के साथ चले गए। क्षण मात्र के लिए एकान्त पाकर आम्रभट के मन की अभिलाषा मुख पर प्रगट हुई। उसने जाते हुए अपने अनुचरों को निहारा।

बचपन से ही उसका जीवन रसमय था। सौभाग्यशाली बालक की भाँति उसे माँ-बाप का लाड़-प्यार मिला था, शिक्षा मिली थी और अब वह पाँच वर्षों से सम्मानित योद्धा की प्रतिष्ठा से युद्ध में भी भाग लेने लगा था परन्तु उसका रसिक स्वभाव शान्ति का आनन्द लेने के लिए आतुर था। कल्लोल करती हुई नर्मदा की लहरें, गगनचुम्बी मन्दिर के शिखर, प्रभात के आनन्द में डूबा हुआ नगर ··· और प्रियतमा। तेजपाल सेठ की पुत्री उसकी भावी पत्नी थी उस प्रियतमा से साक्षात् की आशा ने मन में कोमल भावनाओं का ज्वार भर दिया। परन्तु कर्त्तव्य, महाराज के आदेश और पिता की आज्ञा ने भावनाओं का ज्वार रोक दिया। एक असमर्थ निःश्वास लेकर वह गांव की ओर बढ़ा।

उसके तेजस्वी मुख—आभूषणों से शरीर तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित दूकान खोलने वाले व्यापारी उसे पीछे मुड़-मुड़ कर देख रहे थे परन्तु उन पर दृष्टि न डालकर आम्रभट नाम्बा बृहस्पति का बाड़ा पूछता हुआ आगे बढ़ा।

रिवाज के अनुसार उसे बन्दरगाह पर ठहरना चाहिए था अपना आदमी भेजकर दुर्गपाल को अपने आगमन की सूचना देनी चाहिए थी, और तब पालकी में बैठकर नगर-प्रवेश करना चाहिए था। ऐसा करना

उसकी तथा उसके पिताकी प्रतिष्ठा के अनुकूल था । परन्तु आम्रभट स्वभाव से सरल और हृदय से उमंगी जीव था। टीपटाप उसे पसन्द नहीं थी। अलबत्ता उनके स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि चलते-चलते वह इस अपरिचित नगर का मार्ग भूल गया।

इस समय वह ब्राह्मण मुहल्ले में था। साधारण घरों की बस्ती थी। एक घर से वेदोच्चार का स्वर सुनाई दे रहा था। यहीं कहीं था साम्बा बृहस्पति का बाड़ा। आम्रभट को आश्चर्य हुआ, क्या इसी बस्ती में लाट का दुर्जय योद्धा, भृगुकच्छ का दुर्गपाल, महराजा त्रिभुवनपाल का परममित्र, किन्तु उसके प्रतापी मंत्री पिता का शत्रु रहता है। वह तिरस्कार से तनिक मुस्कराया, कहां उसके पिता का, पाटण का महल, कर्णावती और खंभात के भव्य प्रासाद और कहाँ इस सत्ताधीश का झोंपड़ा? आसपास के आवास खुले हुए थे, परन्तु कोई व्यक्ति दिखाई न पड़ा। केवल आवासों के द्वारों पर बंधी हुई गायें नीरस आंखों से आगन्तुक को निहार रही थीं। वह सोच रहा था, दुर्गपाल का ठिकाना पूछा जाये तो किससे?

घण्टानाद से प्रतीत होता था कि पास ही महादेव का मन्दिर है। वहाँ कोई होगा, यह सोचकर वह उसी ओर बढ़ा।

जैसे ही वह मंदिर की ओर बढ़ा ठिठककर खड़ा हो गया— उसकी दृष्टि मन्दिर के द्वार से उसी ओर आती हुई एक स्त्री पर पड़ी। आश्चर्य से उसकी आँखें खुली रह गईं। उसे वह स्त्री नहीं देवांगना प्रतीत हुई। प्रत्येक भंगिमा में आकर्षण था, प्रत्येक अंग में लालित्य था, पांवों के अंगूठे से निकलती हुई कंचन की डंडी सदृश्य पैर की उंगलियों से लेकर सांप के फन सदृश्य केशों की भव्यता तक अपूर्व और अद्भुत सौन्दर्य था। उस स्त्री की आंखों में मेनका जैसा मद था और ऋषियों का मन लुभाने वाली मोहकता थी। युवक के हृदय को इस शिष्ट सौन्दर्य ने एक बार मूर्छित कर दिया।

वह ऊषा की भांति उज्ज्वलता का प्रसार करती हुई निकट आई।

आम्रभट की आंखें मुग्ध हो गईं । केवल एक कदम दूर वह रुकी, आँखों में झलकते हुए आश्चर्य सहित उसने पूछा, 'किससे काम है ?'

युवक के कानों में गांधर्व संगीत गूँजा । उसने शिथिलता अनुभव की और एक हाथ पीछे करके दीवार का सहारा लिया ।

युवती युवक की घबराहट देखकर मुस्कराई । युवक का अचेत हृदय उसके हास्य के प्रभाव से जागृत हुआ, 'मैं साम्बा बृहस्पति का···।'

'हां ।' बस इतना ही कहकर युवती पास वाले मकान में जाकर अदृश्य हो गई ।

तब आम्रभट को ऐसा लगा जैसे पृथ्वी पर प्रलयकाल का अन्धकार उतर आया हो । बन्द होते हुए द्वार में अदृश्य होती हुई सुन्दरी मानो उसका हृदय साथ लेती गई ।

शरीर की सुध-बुध न रही । वह कहाँ है, किस लिए वह यहाँ खड़ा है-- किस काम के लिये वह भृगुकच्छ आया था— वह सब भूल गया । उसे ऐसा अनुभव हुआ कि, उसका हृदय, उसका जीवन और उसकी समस्त आशायें, सब उस दरवाजे के पीछे जाकर छुप गई हैं ।

'किसे पूछते हो भाई ?' एक आवाज सुनकर वह चौंका । पास ही के घर से एक विद्यार्थी हाथ में आचमनी पात्र लिए हुए निकला । उसे ऐसा लगा कि वह कुछ पूछ रहा है ।

'एं ।' बड़ी कठिनता से अपने मस्तिष्क को स्थिर करके उसने विद्यार्थी की ओर देखा ।

'एं क्या, किसी से मिलना है ?'

यही प्रश्न पहले भी पूछा गया था, उस स्वर की मीठी स्मृति से विभोर होकर आम्रभट ने कहा 'दुर्गपाल से ।'

'अरे दुर्गपाल महाराज से मिलना है, वह तो उस तरफ रहते हैं

'तो क्या यह साम्बा बृहस्पति का बाड़ा नहीं है ?'

'यह पुराना बाड़ा है । महाराज तो नए बाड़े में रहते हैं । आइए, मार्ग बताता हूं ।'

परन्तु मन तो बन्द द्वार में अटका था। पाँव नहीं उठे। संकेत से उस द्वार को दिखाकर पूछा - 'यह घर किसका है ?'

'यह तो पाठशाला है, क्यों · · · · · ?'

'कुछ नहीं, वैसे ही पूछ लिया था।'

३

आम्रभट आत्म-विस्मृत-सा विद्यार्थी के पीछे पीछे चल दिया। थोड़ी दूर चलने के बाद साम्बा बृहस्पति का नवीन बाड़ा आ गया।

वहाँ घर छोटे ही थे, अलबत्ता नए थे, वेदपाठ के उच्चारण के स्थान पर आम्रभट ने वहाँ घोड़ों के हिनहिनाने की ध्वनि सुनी। यहाँ के घरों के आंगन में जुगाली करती गायें नहीं थीं, उनके स्थान पर यहां राजकर्मचारियों की चहल-पहल थी।

'आप उस रास्ते से अन्दर जाइएगा, वहाँ महाराज मिलेंगे।' इतना कहकर विद्यार्थी लौट गया।

परन्तु आगे चलने का उत्साह उसमें नहीं था। एकबारगी वह फिर चौंका जब एक सैनिक ने आकर उससे पूछा 'भट्ट जी किसी से मिलना है ?'

'मुझे · · मुझे · · · दुर्गपाल महाशय से मिलना है।'

'अन्दर आइए।' नम्रवाणी में सैनिक ने कहा।

उस द्वार के अन्दर एक लिपा-पुता चबूतरा था और उस पर बैठे हुए कितने ही आदमी वार्तालाप में निमग्न थे। कुछ सैनिक सुभट भी थे।

वह सैनिक (भट) आम्रभट सहित एक प्रौढ़ सैनिक के निकट पहुंचा और पूछा, 'रुद्रमल जी महाराज क्या कर रहे हैं ?'

सोमनाथ पाटण से एक ब्राह्मण आया है, उससे बातें कर रहे हैं······।'

सोमनाथ पाटण का नाम सुनकर आम्रभट में चेतना जगी। पल मात्र में उसके निश्चेतन हृदय में चेतना आ गई।

रुद्रमल ने पूछा, 'यह भटजी कौन हैं ?' साथ ही उसने आम्रभट को नमस्कार किया।

'मुझे दुर्गपाल महाराज से मिलना है।'

'कहां से पधारे हैं ?'

'वनस्थली से ! 'महाराज की आज्ञानुसार।'

'महाराज आ गए क्यों ?'

'हां ! महाराज, मीनलदेवी—सब आ पहुंचे हैं।'

'आपका शुभ नाम ?'

'आम्रभट ! दुर्गपाल महाराज को कृपया सूचित करें कि उदा मेहता का पुत्र आम्रभट महाराज का संदेश लेकर आया है।'

'उदा मेहता ·· मंत्री महाराज ?' क्षणमात्र के लिए रुद्रमल ने शंका से आम्रभट को निहारा ! परन्तु दूसरे क्षण ही उसकी शंका विश्वास में परिणित हो गई। आम्रभट का रूप, आभूषण, संस्कारी और आकर्षक व्यक्तित्व उसके कथन की सत्यता का प्रमाण था। मान प्रदर्शित करते हुए बोला, 'पधारिए-पधारिए ! इस प्रकार अकेले ही क्यों, कब आना हुआ ?'

'मैं सीधा बन्दरगाह से आ रहा हूं। साथ के आदमियों की यहाँ कुछ उपयोगिता न थी इसलिए उन्हें नगर सेठ के यहाँ भेज दिया है।'

'आइए विराजिए ? मैं अभी स्वयं महाराज को आपके आगमन की सूचना देता हूं। एक पल का भी विलम्ब न होगा।'

आम्रभट पास ही रक्खे गए तकिए के सहारे बैठ गया और रुद्रमल शीघ्रता से अन्दर चला गया।

इससे पूर्व कि वह फिर उसी सुन्दरी की स्मृति में खो जाए रुद्रमल

लौट आया और बोला, 'पधारिये भट जी ?'

राजकीय जीवन ! एक अप्रिय निःश्वास छोड़कर आम्रभट उठा और मन को सावधान होने की सूचना दी। भृगुकच्छ के इस दुर्गपाल के शौर्य की बातें उसने बड़े-बड़े योद्धाओं के मुख से सुनी थीं। उसकी कुशल राजनीति के विषय में उसने अपने पिता जैसे राजनीतिज्ञ से 'सावधान' रहने का आदेश पाया था। सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध महामात्य मुंजाल जैसे महापुरुष भी इस दुर्गपाल की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे और त्रिभुवन को वश में करने वाले स्वयं जयसिंहदेव महाराज भी इस का नाम लेते समय किंचित भयभीत हो जाते थे।

उस मनुष्य के पास यह अनुभवहीन युवक आया था ऐसे काम के लिए जिसे करते जाने की बात से वहां के बड़े-बड़े महारथी भी कांप उठे थे। उसने अपने भय को दबाने का यत्न किया और सफल भी हुआ। वह महामात्य उदा मेहता का पुत्र था—कूटनीतिज्ञों से भेट और समागम उसकी नित्य दिनचर्या थी।

जिस कक्ष में उसने प्रवेश किया वहां खूब प्रकाश था, और इससे पूर्व कि वह उस प्रकाश में सामने ही झूले पर बैठे व्यक्ति को भली भांति देख सके, वह व्यक्ति झूले से उतरकर आगे बढ़ा, और आम्रभट के स्नेह से दोनों हाथ पकड़कर ममत्वपूर्ण वाणी में कहा, 'अरे' उदा मेहता का आँवड़ा ?'

इस वाक्य को कहने वाले का चेहरा वह भली-भाँति देख भी न पाया था कि उससे पूर्व ही उसकी दृष्टि खण्ड के पिछले द्वार की ओर जा पड़ी। वही परिचित एड़ी—केवल एड़ी देखकर उसने मन पर छा जाने वाली उस अज्ञात सुन्दरी को पहचान लिया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने आपको सम्भालते हुए अपने स्वागत करने वाले की ओर ध्यान दिया।

कंधे पर छूटी हुई मुक्त शिखा से सुशोभित मुख लम्बा और भरा हुआ बदन, छोटी-छोटी मूछें, गुरु महाराज की सी नुकीली नाक, चम-

करते हुए चंचल नेत्र, पल मात्र में आम्रभट ने उस व्यक्ति की सम्पूर्ण विशेषतायें देख लीं, अलबत्ता स्नेहमय स्वागत में समाया हुआ उत्साह देखकर उसे आश्चर्य हुआ।

'प्रणाम करता हू महाराज !'

'आयुष्मान हो आंबड़ ! शुभ दिन है आज, जो मेरे मित्र का पुत्र मेरे घर आया है। आओ बेटा !' काक ने आम्रभट को गले लगा लिया।

'कौन आँबड़ भाई !' काक की बाहों से मुक्त होते समय उसने परिचित स्वर सुना, देखा तो मणिभद्र महाराज मुंह फाड़े हंस रहा है।

आम्रभट चौंका, 'ओहो ब्रह्म देवता यहाँ ?'

'मैंने क्या कहा था ? यही तो है मेरी बहन का घर।'

इस हब्शी ब्राह्मण की बहन कैसे इस योद्धा का घर सुशोभित करती होगी। आम्रभट को विस्मय हुआ, तभी उस स्त्री की मोहकता पूर्ण छवि आँखों के सम्मुख नाच गई जिसकी एड़ी अभी-अभी उसने देखी थी।

काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से दोनों को देखा, 'क्या तुम दोनों एक ही जहाज से आए हो ?

'हाँ !' आम्रभट ने उत्तर दिया।

'अच्छा मणिभद्र जी, मैं जरा आंबड़ के साथ बातचीत कर लू। तब तक तुम स्नान आदि से निपट लो' कहकर काक ने आम्रभट को झूले पर अपने निकट ही बैठा लिया। रुद्रमल और मणिभद्र दोनों चले गए।

'क्यों भाई, तुम्हारे पिता वनस्थली से आ गए ?'

'जी हां !' बात आम्रभट के मुंह से निकल गई, परन्तु उसी क्षण उसे अपने आप पर खेद हुआ, अनजाने ही वह सच बात कह गया था, कूटनीति के नाते उसे यह बात नहीं कहनी चाहिए थी।

'महाराज और मीनलदेवी वनस्थली से कब आए ?'

'मेरे गमन से पांच दिन पूर्व ।'

'सब सकुशल हैं ?'

'जी हां, महाराज का संदेश आपकी सेवा में लेकर आया हूं ।'

आम्रभट ने कमर में बंधी पत्र-पेटिका खोली और उसमें से एक पत्र निकालकर काक को दे दिया ।

काक ने पत्र खोलकर पढ़ा—

अणहिलवाड़ से, समस्त राजा अलिविराजित बर्बर कतिपग परमभट्टार्क महाराजाधिराज जयसिंह देव वर्मा की आज्ञा है कि भृगुकच्छ के दुर्गपाल महाराज काक पत्र पाते ही जूनागढ़ के घेरे में शामिल होने के लिए वनस्थली पधारने के हेतु कूच करें और भृगुकच्छ पत्रवाहक को सौंप दें । विक्रमांक ११६९ चैत्र एकादशी ।

हस्ताक्षर
सोम मेहता

पत्र पढ़कर काक कुछ क्षण के लिए गम्भीर हो गया । वह सोचने लगा कि उसकी सहायता मांगने में निश्चय ही कोई रहस्य है । गत पन्द्रह वर्ष से महाराज उससे अप्रसन्न थे ।

उसने आम्रभट पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा, 'मुझे बुलाने का कुछ कारण जानते हो ?'

'महाराज अब बहुत अधीर हो गए हैं, आपके अतिरिक्त उन्होंने मेरे पिता तथा दादाक मेहता को भी बुलाया है ?'

पन्द्रह वर्ष हो गए, तब से यह सब क्यों नहीं किया ।

'एक कारण है ।'

'क्या ?'

'कुछ समय हुआ खेंगार ने वनस्थली से भट्टराज परशुराम को बाहर निकाल दिया तो महाराज बहुत क्रोधित हुए और खेंगार को दरबार में उपस्थित होने के लिए कहलवाया ।'

अच्छा · · · ।'

'तब खेंगार ने अपनी देवड़ी रानी की चोली की भेंट देकर चनिया महाराज को भेजा।'

'यह तो मुझे मालूम है। खेंगार बड़ा विनोदी है। परन्तु महाराज ने सायले से वनस्थली तक तो जीत ही लिया है—अब काक की क्या जरूरत है?'

'महाराज ने प्रतिज्ञा की है कि इस महीने के अंत तक या तो जूनागढ़ नहीं या फिर पाटण नहीं।'

काक मुस्कराया, 'मेहता मिले थे?'

'हाँ उन्होंने भी कहलवाया है कि श्रीमान् ने पन्द्रह वर्ष पहले जो वचन महाराज को दिया था, उसका पालन करें।'

'क्या?'

'यही कि अगर महाराज आज्ञा दें तो आप जाकर खेंगार को नीचा दिखायें।'

'वैसे मोर्चे का क्या हाल है?'

'जिस दिन मैं चला हूं उसी दिन खेंगार ने छापा मारा था। हमारे पाँच सौ आदमी मारे गए। परशुराम जी बाल-बाल बचे।'

'यह बात है, अच्छा और कुछ' कुछ सेना साथ मंगाई है?

'नहीं मुंजाल मेहता ने कहा है कि आप अकेले ही आवें—सेना की आवश्यकता नहीं और लीलादेवी…।'

'एं…?' काक चौंका।

'लीला देवी ने भी संदेश भेजा है।'

'क्या?'

'कि यदि आप नहीं आए तो वह स्वयं भृगुकच्छ आयेंगी?'

'किस लिए?'

'यह तो मैं नहीं कह सकता। जब मैं उनके सम्मुख पहुंचा तो वह बहुत ही चिन्तातुर थीं।'

लीलादेवी लाट के सोलंकियों की पूर्ण वंशज थीं। लाट को गुजरात

में मिलाने की राजनीतिक आवश्यकता के हेतु स्वयं काक ने लीलादेवी का विवाह जयसिंहदेव महाराज के साथ कराया था।

'लगता है मेरे प्रति भाव कुछ बढ़ गया है।'

'भाव कभी कम नहीं था।' यह कहकर आम्रभट ने काक को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा।

तलवार की धार जैसी तीक्ष्ण दृष्टि से काक ने आम्रभट को देखा।

'तुम्हारा सामान कहाँ है?'

'मैंने अपने आदमियों को नगर सेठ के यहाँ भेज दिया है।'

'अच्छा, ठीक बात है। तुम तो उनके जमाई होने वाले हो न? अच्छा जाओ, मैं जाने की तैयारी करता हूं। रुद्रमल··· आँबड़ मेहता के लिए पालकी मंगाओ।' यह आदेश देकर काक ने आम्रभट से विदा ली।

मन में एक ही प्रश्न था, 'क्या इस आदेश में उदा मेहता की चालाकी है?'

इसी गम्भीर सोच-विचार में व्यस्त भृगुकच्छ का दुर्गपाल धीमे-धीमे चलता हुआ अन्दर गया।

६

मंजरी से मिलने मणिभद्र अन्दर पहुंचे।

मंजरी से मणिभद्र का नाता यह था कि वह उनके गुरु की दौहित्री थी। एक बार वह किसी कारण से जूनागढ़ आई थी, तब इस शांत एवं सरस जीवन में एक खलबली सी मच गई थी। विवाहिता स्त्री पर दृष्टि न डालना धर्म का एक उचित सिद्धान्त है, और गुरु की पुत्री की पुत्री शिष्य के लिए भानजी के समान थी—यह शास्त्र वचन है। परन्तु

मन से कौन जीते । मंजरी को देखकर इन विप्रवर के हृदय में विचित्र भावनाओं का संचार हुआ । जीवन रसमय लगने लगा, भोग एवं मोदक से मन भर गया । सोते-जागते हर समय गुरु-दौहित्री के दर्शनों की इच्छा मन में रहने लगी ।

तब वह जैसे आई थी, वैसे ही अपने पति के साथ लौट गई । जिस प्रकार मेघों से आच्छादित आकाश के तिमिर में से ध्रुव तारा चमके उस प्रकार मणिभद्र के भोग और भूखग्रस्त जीवन में वह चमकती ही रही लोप न हो सकी ।

वह निशि-दिन भृगुकच्छ जाने के लिए तड़पते थे । नींद में बस भृगुकच्छ के ही स्वप्न आते थे । परन्तु बाधा यह थी कि यजमान सब जूनागढ़ में ही थे और वह कभी जूनागढ़ के अतिरिक्त कहीं और न गए थे, न रहे—इसलिए विदेश के नाम से उन्हें भय लगता था । दिन, मास और वर्ष—फिर वर्ष बीत गए । मंजरी का मुख-दर्शन प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करे या जूनागढ़ में ब्रह्म-भोज का विलास भोगे ? इन दो लक्ष्यों के बीच फँसी ब्राह्मण की बुभुक्षु आत्मा लक्ष्यों के विलास में ही आनन्दमय होगई ।

इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीते ।

पन्द्रह वर्ष बाद जूनागढ़ के खेंगार की रानी ने मणिभद्र को भृगुकच्छ जाने की आज्ञा दी । जिस प्रकार ध्रुव को सौतेली माँ के कटुबोल सुनकर ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाई दिया था उसी प्रकार यह आज्ञा पाकर उसे भी मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो गया । उनके गोल-मटोल शरीर को शोभा न दे, ऐसी शीघ्रता से रानी की आज्ञा सिर माथे पर चढ़ाकर उन्होंने जूनागढ़ छोड़कर भृगुकच्छ की यात्रा की ।

घर के भीतरी खण्ड में एक सात वर्षीय कन्या एक शिशु का पालना खींचकर उसे झुला रही थी । मणिभद्र ने पहले उसे देखा न था, परन्तु फिर भी यह पहचानने में असुविधा न हुई । कली ने फूल का रूप धारण किया है, कन्या की आकृति उसके हृदय में अंकित गुरु-दौहित्री के चित्र जैसी थी—वही नाक, वही आँखें—अन्तर था तनिक रंग का । मंजरी

स्वय गोरी थी, और कन्या तनिक सांवली। हर्षातिरेक से मणिभद्र ने सम्बोधित किया, 'बेटी तेरी माँ कहाँ है ?'

'कौन ?' लड़की चौंकी।

'मैं···मैं हूं तेरा मामा।' मणिभद्र हँसा और अपने स्वरूप से भय-भीत कन्या को उठाकर हृदय से लगा लिया।

'अरे, भाई जाग जाएगा।'

'अच्छा तो यह तेरा भाई है।' मणिभद्र ने कन्या को छोड़कर पालने में से बालक को उठा लिया

'अइयोरे राजा बेटा। इसका क्या नाम है बेटी ?'

'इसका नाम है वैसाई।' इस तवे जैसे श्याम वर्ण मामा से भयभीत सी कन्या-शनैः शनैः पीछे हटती हुई बोली।

'क्या ?'

'वैसाई।'

इस विचित्र नाम को मस्तिष्क में जमाने का प्रयत्न करता हुआ मणिभद्र धीरे से बोला, 'वौ—वौ—वा—स—रि।

इस नाम को धारण करने वाले शिशु में बहन जितना धीरज न था। आधी आँखें खोलकर उसने इस नए मामा को निहारा और उसमें पूर्व परिचय का कोई चिन्ह न पाकर ऊँची आवाज में रो पड़ा।

वातावरण में आनन्द भरकर उन्मुक्त हास्य से, अपने ही हाथ की झोली बना मणिभद्र बोलने लगा—'उल्लू—लू—भाई रे—'

वार्तालाप के आगे बढ़ने से पूर्व ही अन्दर से आवाज आई—'महादेवता, क्या हुआ ?'

मणिभद्र घूमा, और पन्द्रह वर्ष पश्चात् मंजरी को देखा। 'बहन ?' मंजरी पहले के समान ही तेजस्वी एवं सुन्दर थी। पन्द्रह वर्षों के प्रताप से उसकी रेखाएं भर आई थीं, उसके मुख का सौन्दर्य पूर्णिमा के चंद्रमा के समान सम्पूर्ण हो चुका था, और उसके गर्व-भरे नैनों से अमृत की वर्षा हो रही थी।

वह मणिभद्र को देखकर विस्मित हो गई, किन्तु उसके घूमने पर वह उसे पहचान गई।

'कौन ? भाई मणिभद्रजी ?'

'हाँ, मैं ही, मैं ही बहन, मैं ही।' इतना कहकर जल्दी से मणिभद्र ने बच्चे को मंजरी के हाथों में दे दिया।

'बैठो भाई।' मंजरी पाट बिछाने लगी, किन्तु मणिभद्र तो मान के भूखे न थे।

'बहन, रहने भी दे। हम तो यह बैठे।' और मणिभद्रजी पाँव-पर-पाँव चढ़ाकर बैठ गए।

'आओ बेटा, मेरे पास !'

बालिका तो अब भी मंजरी की साड़ी के पीछे छिपी आश्चर्य में भरकर इस नवागन्तुक मामा को देख रही थी।

'वह तो नहीं आयेगा, अभी तुम्हें पहचानता जो नहीं है। सब लोग अच्छे तो हैं ?'

'कुशल कैसी ? हर-हर भोलानाथ ? जूनागढ़ पर तो यमराज की छाया पड़ रही है, बहन !' मणिभद्र ने दुखित होकर गर्दन हिलाते हुए कहा, 'खेंगार महाराज को चारों ओर से घेर रखा है। बस जो भोलानाथ करे वही सही।'

'तो फिर यहीं चले आते न।'

'मन तो प्रतिदिन यही कहता था, परन्तु क्या करूँ ? जजमान-वृत्ति ही जो ठहरी, और युद्ध के कारण तेरहवीं और श्राद्ध का भी कोई पार नहीं। लो यह भट जी भी आ गए—'

'क्यों, मणिभद्रजी ! भेंट कर ली बहन से ?' काक ने पूछा।

'हाँ।' कहकर मणिभद्र ने कनटोपी उतार कर नीचे रख दी।

'मंजरी, मुझे तुरन्त जाना होगा।'

'कहाँ ?'

'वनस्ली।'

'क्यों ?'

काक ने चुपचाप महाराज का आज्ञापत्र बढ़ा दिया। मंजरी ने उसे पढ़ा और लौटा दिया। मूर्ख की भाँति मणिभद्र काक से मंजरी और मंजरी से काक की ओर देखने लगा और बड़ी शीघ्रता से प्रश्न किया—'आप वनस्थली जा रहे हैं ?'

तनिक कठोर होकर काक ने इस छिछोर ब्राह्मण की ओर देखा। दूसरों की बात में बात मिलाने की, मणिभद्र की आदत उसे अच्छी न लगी।

'क्यों ?' स्वर में उपेक्षा थी।

'तब तो बस हो चुका ?'

'क्या हो चुका ?'

'मैं भी बुलाने के लिए ही आया हूं भटराज !' मणिभद्र ने कहा। एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और वह भय से चारों ओर देखने लगा।

'यहां कोई नहीं सुनेगा, किसने भेजा है तुम्हें ?'

'राणकदेवी ने।' धीमे से वह बोला।

'राणक।' चकित होकर काक बोलते बोलते रुक गया। 'क्या, क्या ?'

'उन्होंने आपको जूनागढ़ बुलाया है।'

'घबराकर काक पीछे हटा—'हैं ?'

'हाँ, सब कुछ सुनाता हूं।'

काक ने आँखों-ही-आँखों में स्वीकृति दी।

'मुझे देवी ने चुपचाप बुलवा भेजा। जप करने के पश्चात् मैं ब्रह्म-भोज का न्यौता होते हुए भी महल में गया, जब पहुंचा तो महाराज और देवी किसी बात पर झगड़ रहे थे। महाराज की आंखें लाल हो रही थीं और देवी की आंखें सजल थीं। हर-हर भोलानाथ ! मैं तो ऐसा घबराया कि बस ! और फिर भंग भी तो नहीं पी थी।'

'अच्छा, फिर ?' काक ने अधीरता से पूछा।

'महाराज क्रोधित होकर चले गये और तब परिचारिका मुझे अन्दर ले गई। मैं तो थर-थर काँप रहा था। हर-हर भोलानाथ! मुझसे देवी ने पूछा—'तुम्हारा ही नाम मणिभद्र शुक्ल है न?' मैंने उत्तर दिया—'हाँ।' 'जटानाथ आचार्य के शिष्य हो न?' देवी ने प्रश्न किया। 'हाँ, देवी।' मैंने उत्तर दिया। 'उनकी नातिन के पति से परिचित हो?' उन्होंने पूछा। मुझे हँसी आ गई। हर-हर भोलानाथ! मैं भला अपने बहनोई को न पहचानूँ।'

'फिर?' काक ने बात आगे बढ़ाने का संकेत किया।

मैंने 'हाँ' कही। देवी ने कहा—'महाराज!' मुझे और 'महाराज?' महाराज! क्यों है न आश्चर्य की बात!'। वह बोली—'तुम चुपचाप उनके पास जा सकोगे?' मैं तो भाई घबरा गया। हर-हर भोलानाथ! जूनागढ़ का ब्राह्मण भृगुकच्छ कैसे जाय? 'शुक्ल जी! इतना-सा काम कर दो। यदि मैं सोरठ की रानी रही तो जन्म-भर तुम्हारा उपकार न भूलूँगी।' इतना कहते-कहते देवी की आँखों से आसू झरने लगे। हर-हर भोलानाथ! मुझे रुलाई आ गई। मैंने कहा—'मेरे प्राण तक अर्पित हैं।' हर-हर भोलानाथ! इतना कह ब्राह्मण ने अपनी आँखों के आँसू पोंछने का उपक्रम करके काक की ओर देखा। काक की आँखें स्थिर थीं। आँख की पलक ही से उसने मणिभद्र को बात पूरी करने को कहा। मंजरी की आँखें भी गीली हो गईं। गला साफ कर मणिभद्र ने फिर कहना आरम्भ किया—

'देवी ने कहा—शुक्ल जी! शीघ्र ही प्रभास होकर भृगुकच्छ जाओ। वहाँ जाकर काकभट से मिलकर एकान्त में कहना।'

'क्या?'

'काक भट जी! देवी ने कहलवाया है। तुमने मुझे अपनी बहन बनाया था। एक समय तुमने मेरी और अनेक बार मेरे 'रा' की भी लाज रखी थी। आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई सहारा नहीं है अतएव जहाँ भी हो शीघ्र मेरे पास चले आओ।' इसके बाद देवी ने

मेरे साथ एक सामंत कर दिया। वह मुझे प्रभास तक छोड़ गया और फिर मैं यहाँ तक आया।

मंजरी ने काक की ओर देखा। काक विचारमग्न था। दोनों में से कोई कुछ बोला नहीं। मणिभद्र समझ गया कि वहाँ से अब उसका जाना ही उचित है। अतः वह उठ खड़ा हुआ।

'और कुछ ?' काक ने पूछा।

'अरे हाँ—'

'क्या ?'

अन्त में देवी ने कहा था—'मैं पाटण से द्रोह नहीं करना चाहती।'

'मैं देवी से किस प्रकार भेंट कर सकता हूं ?'

'प्रभास के निकट चौखाड़ है न, जानते हो ?'

'हाँ।'

'वहाँ मोती अहीर नामक व्यक्ति रहता है। उससे कहना कि मैं मणिभद्र धवल का आदमी हूं, वह सब प्रबन्ध ठीक कर देगा।'

'अच्छी बात है तुम जाकर स्नान संध्या से निपट लो।'

इतना कहकर काक ने मणिभद्र को विदा किया।

मणिभद्र के जाने के बाद मंजरी ने शिशु को पुत्री की गोद में देकर उसे बाहर भेज दिया और स्वयं काक के पास आकर उसके बोलने की राह देखती हुई खड़ी हो गई।

मंजरी! लगता है दाल में कुछ काला अवश्य है।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।'

'नहीं तो एक ही साथ तीनों को काक की याद नहीं आती।

के सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिये निमन्त्रित किया था। तुमने उसे अस्वीकार कर मुझे पसन्द कर लिया, तो मुझे तुमको दण्डनायक तो बनाना ही चाहिए।' मंजरी की आँखें एक साथ गर्व और प्रशंसा से चमक उठीं।

'और न बन पाया तो ?' काक ने पूछा।

'तो समझ लेना कि पाटण की नारी में तेज नहीं रहा।'

'किन्तु तेरे प्रण का क्या होगा ?'

'मेरे प्रण की तो मैंने कभी से पूर्ति कर रक्खी है। तुम मेरे लिए दण्डनायक हो और सदा रहोगे।'

काक ने हँस कर मंजरी का हाथ दबा दिया।

'अच्छा अब मैं देवभद्र सूरि जी के उपाश्रम में हो आता हूं। वहाँ कुछ-न-कुछ पता लगेगा ही।'

उसने पगड़ी पहनी और तलवार बाँध कर बाहर आया। नमस्कार करते सुभटों को जय-जय कहता हुआ वह घोड़े पर चढ़ा और दो-चार घुड़सवारों के साथ देवभद्र सूरि जी के उपाश्रम की ओर मुड़ गया।

६

जब साम्बा बृहस्पति के बाड़े से पालकी में बैठकर नगर सेठ के घर की ओर प्रस्थान किया उस समय भी आम्रभट के मस्तिष्क के सामने वही अपरिचित सुन्दरी ही थी।

दुर्गपाल उसे भले लगे। उनके सोरठ प्रस्थान करने पर स्वयं भृगुकच्छ का दुर्गपाल बन कर वह निश्चिन्त होकर रह सकेगा, इसमें उसे कोई सन्देह न रह गया था, पिता का उसे बार-बार सावधान करना निरर्थक लगा, भृगुकच्छ की सत्ता को अपने हाथ में रखना क्यों

उन्हें इतना कठिन लग रहा था यह उसकी समझ में नहीं आया ।

अभी तो उस सुन्दरी की खोज निकालना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था । बाजार से निकलते हुए उसने चारों ओर देखा किन्तु उस शरीर-विन्यास की दूसरी स्त्री उसे न दिखाई पड़ी । वैसे उस अप्रतिम सौंदर्य की खोज निकालना इस गांव में सहज तो होगा ! किन्तु कठिन भी कम नहीं होगा ! वह, एकाएक महत्त्वशाली पुरुष जो हो गया था, नगरसेठ की पुत्री के साथ उसका सम्बन्ध भी हो चुका था, किन्तु भृगुकच्छ से अच्छी तरह परिचित कोई विश्वासपात्र मनुष्य उसके साथ न होने के कारण यह काम खासी कठिन दिखाई पड़ा ।

आंखें बंद कर सिर तकिए पर टिका वह उस रमणी के अंगलालित्य को अपनी आंखों के सम्मुख लाने की चेष्टा करने लगा । होठों में कैसा आकर्षक माधुर्य, नाक की कैसी मदभरी बनावट, आँखों में कैसी हृदय भेदक मोहनी ! आधी दीख पड़ती स्तनों की अपूर्व रेखाएँ, पांव तक की रेखाओं में बिखरी भव्यता, इस सब विशेषताओं का उसने आजन्म विलासी की दृष्टि से विश्लेषण किया । वह विक्षिप्त-सा हो गया ।

जन्मसे कभी किसी ने उसकी इच्छाओं का अनादर न किया था, जो मांगता था, वही वस्तु तुरन्त उसे मिलती थी । उदा मेहता की सम्पत्ति और सत्ता दिन प्रतिदिन इस प्रकार बढ़ रही थी कि किस की क्या मजाल जो पाटण में उसे कोई भी ना कर सके, यह तो विजित देश की छोटे नगर की राजधानी थी और वह स्वयं था उसका दुर्गपाल ! और क्या चाहिए ।

वह स्त्री विवाहिता अवश्य थी, तो हो ! उसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता इसलिए उसे खोजना तो पड़ेगा ही । वेश और स्नान से ब्राह्मणी लग रही थी । किस वेदपाठी के भाग्य से इस अप्सरा का निर्माण हुआ होगा ? जो भी हो, कौन ऐसा है जो दान और मोदक को देख न ललचा उठे ? ब्राह्मणों के प्रति उसका तिरस्कार श्रावक श्रेष्ठ के पुत्र के योग्य ही था । इन सब विचारों में मग्न होते हुए भी शहर

का व्यापार उसकी दृष्टि से बच न पाया। भृगुकच्छ में घर छोटे और मार्ग संकरे थे। मन्दिर बहुत और जीर्णावस्था में थे। उनमें न पाटण के मन्दिरों का सा ठाठ था, न सोरठ के मन्दिरों की सी भव्यता। फिर भी गुजरात के सभी नगरों से लाट की इस राजधानी में एक विशेषता दिखाई पड़ी। ऐसा लगता था कि सम्पूर्ण नगर बस छोटी-छोटी दूकानों का ही बना हुआ है।

हर चौक में व्यापारियों की ही बस्ती अधिक थी। मुनीम कान में कलम खोंसे, कन्धे पर पैसों की थैली लिए इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे, और माल भरी गाड़ियों की शृंखला चली जा रही थी। इस प्रकार का जीवन कुछ अंशों में खंभात में भी था, किन्तु इस नगर की रेल-पेल के सामने तो खंभात उजाड़ प्रतीत हुआ। इसी कारण आम्रभट की पालकी उठाने वाले वेग से न चल पा रहे थे, कहीं-कहीं तो उन्हें रुक जाना पड़ता था। इससे आम्रभट की विचार शृंखला बार-बार टूट पड़ती थी और उसका जी तिलमिला उठता था।

आम्रभट को इस नगर में कई बातें बड़ी विचित्र लगीं। उसके जैसा महत्वशाली व्यक्ति पालकी में बैठकर चला जा रहा था, किन्तु किसी को उसकी ओर ध्यान देने का भी अवकाश नहीं था, नमस्कार करने की बात तो अलग रही। नागरिक इतने विनयहीन थे कि अपने काम को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान तक नहीं दे सकते थे।

वह सोचने लगा कि खंभात में रुपया इतना है कि समाता नहीं, फिर भी उससे तिगुने बड़े इस बन्दरगाह में क्यों कुछ दिखाई नहीं पड़ता? कहाँ उसके पिता की दूकान का वैभव और कहाँ भृगुकच्छ के पट्टणी चौक की दूकानें! उसके पिता की बात अब उसकी समझ में आई। उसके पिता ने खंभात बन्दर पर अधिकार करके अतुलित सम्पत्ति एकत्रित की थी और अब उसे इस नए देश पर अधिकारी करने के लिए भेजा था। आम्रभट मन ही मन हंस दिया, वह भी

अपने पिता के समान समृद्ध और सत्तावान बनेगा।

हवाई किले बनाता हुआ आम्रभट तेजपाल नगर सेठ के यहाँ जा पहुंचा। सेठ बाहर गये हुए थे अतएव उनका पुत्र रेवापाल उसका स्वागत करने के लिए खड़ा हुआ था।

रेवापाल लगभग बीस वर्ष का था—सुन्दर, ठिगना, सशक्त। उसके मुख पर भरे हुए घावों के चिन्ह थे। उसके हाथ बता रहे थे कि उनमें शस्त्र चलाने की असीम शक्ति है। उसकी आँखें निश्चल और उसका मुख गम्भीर था। उसे देखते ही सभी का उत्साह ठण्डा पड़ जाता था।

आम्रभट के पालकी से उतरने पर रेवापाल ने उसका स्वागत किया।

'पधारिए आंबड़ सेठ! पिताजी अभी-अभी बाहर गये हैं।' उसकी आँखों में न स्नेह था न आदर, उसकी वाणी में हर्ष की लहरें भी न थीं। ऐसा लग रहा था मानों और कोई चारा न होने के कारण ही उसको यह करना पड़ रहा है।

आम्रभट तो उस होने वाले साले का व्यवहार देखकर ही ठण्डा पड़ गया।

'मेरे सैनिक आ गए?' उसने बड़े संकोच से हंसकर पूछा।

'हाँ' गम्भीर होकर रेवापाल ने उत्तर दिया।

'आप कुशल तो हैं?'

'हाँ,' कहकर एक शब्द भी अधिक कहे बिना वह आगे हो गया, आम्रभट उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह इस गांभीर्य और निःशब्द तिरस्कार का कारण इसलिए नहीं समझ पाया कि वह रेवापाल के स्वभाव से पूर्णतः परिचित न था।

रेवापाल लाट की नष्ट हुई सत्ता और स्वतन्त्रता का भक्त था, उनके नष्ट होते ही वह जीते जी मुर्दा सा हो गया था।

७

रेवापाल की गंभीर प्रकृति को समझने के लिए लाट के इतिहास के कई एक पिछले पृष्ठ खोलने होंगे।

लाट का अन्तिम प्रतापी राजा बारप था। लाट के दुर्भाग्य से पाटण की गद्दी पर उससे भी अधिक प्रतापी सोलंकी मूलराज बैठा। बारप ने मूलराज को पराजित किया और मूलराज ने बारप को मार कर चामुण्ड ने भृगुकच्छ लिया और लाट ने अनहिलवाड़ पाटण की सत्ता दी, किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। बारप के बाद मूलराज के पुत्र ने सत्ता स्थापित करना आरम्भ किया। चामुण्ड के बाद भीमदेव ने लाट की ओर अधिक ध्यान दिया किन्तु कर्णदेव के समय में पाटण ने लाट को अपने में सम्मिलित करने का विचार किया।

युवावस्था में मुंजाल ने लाट पर चढ़ाई की थी, और वहाँ के पद्मनाभ महाराज को भी मार डाला था। परन्तु इससे पाटण को कुछ भी लाभ न हुआ। पद्मनाभ महाराज का पुत्र युद्ध में खेत रहा फिर भी सेनापति ध्रुवसेन ने मही से कावेरी तक लाट की सत्ता बनाए रखी। अनेक बार भृगुकच्छ लिया और फिर खो दिया, हारे और हराया।

इसी काल में दो जनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। थे तो दोनों बच्चे किन्तु रूप और गुण में समान थे। दोनों युद्धकला में कुशल थे। एक था निर्धन ब्राह्मण और दूसरा था धनवान नगर सेठ का पुत्र। ब्राह्मण पाटण के दण्डनायक त्रिभुवनपाल की सेना में भर्ती हो गया, वणिक ध्रुवसेन की सेना में ही बना रहा। एक था काक, दूसरा था रेवापाल।

काक अधिक चतुर था। उसे विश्वास था कि ध्रुवसेन कुछ भी करलें फिर भी पाटण की सेना के आगे उसकी एक न चलेगी। पद्मनाभ महाराज की पुत्री मृणालकुंवर को ध्रुवसेन सदा अपने साथ रखता था। वह लाट की अस्त होती हुई सत्ता और स्वतन्त्रता की मूर्ति मानी

जाती थी, इसलिए प्रतिदिन घटती हुई सेना उसका मुख देखकर अपना साहस न खोती थी। फिर भी विजय की उसे कोई आशा नहीं थी। इस कठिनाई में काक को एक बात सूझी। यदि त्रिभुवनपाल सोलंकी मृणालकुँवर से विवाह कर लेते हैं तो वे स्वयं लाट के स्वतन्त्र राजा बन जायेंगे, लाट की महत्ता को आँच नहीं आएगी, ध्रुवसेन की प्रतिष्ठा बनी रहेगी और पाटण की कड़वाहट भी जाती रहेगी, किन्तु यह मार्ग तो बन्द था। त्रिभुवनपाल सोलंकी दूसरा ब्याह करना ही नहीं चाहते थे, और यदि वे स्वीकार भी कर लेते तो उनकी पत्नी काश्मीरा देवी उन्हें ऐसा कभी न करने देती। यदि यह भी हो जाता तो त्रिभुवनपाल में इतनी शक्ति न थी कि वह लाट की स्वतन्त्रता के झंडे को उठाए रख सकें। अगर वह ऐसा करने का प्रयत्न भी करता तो मुंजाल महेता कभी उसे सफल नहीं होने देते। वास्तविकता जानने के लिए काक ने पाटण जाने का काम अपने सिर लिया।

वहां उसे विश्वास हो गया कि एक न एक दिन लाट को गुजरात की सत्ता माननी ही होगी तभी उसके चतुर मस्तिष्क में यह बात समा गई कि लाट जितनी शीघ्र गुजरात में सम्मिलित हो जाए उतना ही अच्छा। वह अपनी सहज बुद्धि के द्वारा ध्रुवसेन की सत्ता को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगा।

लाट के तीन चौथाई नागरिकों ने पाटण की सत्ता स्वीकार कर ली थी। ध्रुवसेन की सेना पाटण की सेना के दशांश के बराबर थी और वह भी दिन-प्रतिदिन घटती जा रही थी। लाट का सम्पत्तिशाली व्यापारी वर्ग युद्ध से ऊबकर उदय होते हुए सूर्य के ताप में आनन्द कर रहा था। ध्रुवसेन ने परिश्रम करने में कुछ भी उठा न रक्खा। अपनी विगत भव्यता के सहारे दाढ़ी के कुछ बालों को दांतों के बीच में दबाकर वह ध्रुव की भांति अटल खड़ा रहा। उसकी छोटी-सी सेना ने मृणालकुँवर और अपनी राज्यलक्ष्मी के समान राजकन्या मृणालकुँवर पर अपना अधिकार बनाए ही रक्खा।

रेवापाल इस सेना का नायक था। वह लाट की स्वतन्त्रता में विश्वास करता था ; पाटण और पट्टणियों को अपना कट्टर शत्रु समझता था। भृगुकच्छ का अन्तिम कंगूरा जब तक उसके हाथ में रहा तब तक उसने युद्ध किया और जब वह भी हाथ से निकल गया तो ध्रुवसेन के साथ जंबूसर चला गया।

उसी दिन उसके हृदय में एक ज्वाला जल उठी। काक ने भृगु-कच्छ लेकर और उसके पिता तेजपाल को फुसला कर उससे देशद्रोह कर-वाया। बचपन से ही जिस काक को वह अपना मित्र मानता था वही उसके लिए देश द्रोहियों का शिरोमणि हो गया। इसी काक ने पट्टणियों का समर्थन किया था; त्रिभुवनपाल की विजय में इसी का हाथ था; भृगुकच्छ इसी ने लिया और तेजपाल नगरसेठ को फुसलाकर अपने हाथ में किया। देश के वैरी के प्रति उमड़े भयंकर क्रोध में मित्रता जलकर राख हो गई।

जंबूसर के घेरे का वर्णन पराक्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। ध्रुवसेन की सेना छोटी थी। लाट की स्वतन्त्रता में श्रद्धा रखने वाले भी इने-गिने ही थे। लाट के सोलंकियों के वंश में केवल एक लड़की थी। हाथ से निकली इस बाजी को भी खेलने वाले ध्रुव-सेन ने वर्षों तक जंबूसर को टिका रखा। हजारों घावों से सुशोभित उस वीर ने पाटण की संपूर्ण सेना के छक्के छुड़ा दिये और त्रिभुवनपाल और काक को छका मारा।

इस प्रकार भृगुकच्छ के घेरे में बचे सातसौ योद्धाओं में से कुल इकतालीस रह गए। इस छोटी किन्तु फौलादी सेना की स्थिति बड़ी गम्भीर थी। यमराज उसे ग्रसने की ताक में बैठा हुआ था। उनकी आशाएँ नष्ट हो गई थीं। ध्रुवसेन की एक विधवा, पुत्री और उनके साथ की आठ-दस स्त्रियों का क्या होगा यह किसी की समझ में न आया। मृत्यु के लिए तत्पर वीर की निश्चयात्मक बुद्धि का सहारा लेकर ध्रुवसेन ने उस परिस्थिति में इन सब बातों का विचार स्थगित कर

दिया। निपट अन्धकार में भी एक प्रकाश-किरण फिर-फिर दिखाई पड़ती थी। कामरेज और गांधार से सेना और खाद्य की सहायता मिलने वाली थी।

ध्रुवसेन से अधिक मृणालकुँवर दृढ़ थी। बड़े साहस के साथ वह बाला इस सेना को प्रेरित कर रही थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह लाट के सोलंकियों की कीर्ति अन्तिम समय तक बन्द न होने देगी। सम्पूर्ण लाट और गुजरात इस अडिग शौर्य को पागलपन मानते थे। दिन-प्रतिदिन ध्रुवसेन की मृत्यु—क्योंकि झुकने वाला वह नहीं था—निकट आती जा रही थी। और फिर वह इतना निर्बल हो गया था कि समझौता करने की इच्छा भी नहीं रह गई थी।

एकाएक दुर्गपाल काक घेरा छोड़कर पाटण गया। किसलिए गया यह कोई नहीं जान सका। जयसिंहदेव महाराज मालवे में थे। वह मुंजाल महेता और मीनलदेवी से भेंट करके लौट आया। दूसरे दिन ध्रुवसेन के पास संदेश गया कि काक और तेजपाल नगरसेठ मंत्रणा करने के लिए आना चाहते हैं।। ध्रुवसेन अपने पुराने शिष्य और दस वर्ष के शत्रुओं के नायक काक के शौर्य और बुद्धि से अपरिचित नहीं था। वह उसे कट्टर वैरी और देश-द्रोही मानता था। इस मंत्रणा वाली बात के पीछे छिपी हुई इस मनुष्य की क्या चाल हो सकती है यह उसकी समझ में न आया। जंजार तो थोड़ी ही देर में गिर जाएगा फिर किसलिए काक यहां आना चाहता है? परिस्थिति जैसी है उससे अधिक और बिगड़ने से तो रही यही, सोचकर ध्रुवसेन ने काक से भेंट करना स्वीकार कर लिया।

८

एक पुराने घर के चबूतरे पर फहराती स्वतन्त्र लाट की ध्वजा के नीचे इस हतभागे देश का अन्तिम सत्ताधीश एक पत्थर पर बैठा हुआ था। उसकी सफेद दाढ़ी के अस्त-व्यस्त केश मरते हुए सिंह की अस्त-व्यस्त अयाल की भाँति उसके वृद्ध मुख की भव्यता बढ़ा रहे थे। उसकी आँखें लाल और उसके सिकुड़े हुए भाल पर निराशा की रेखाएं थीं; किन्तु दोनों ही में विशाल एकाग्रता थी।

शरीर पर स्थान-स्थान पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं किन्तु फिर भी वह एक हाथ में एक बड़ा भाला लिये हुए था। समय-समय पर उसके होंठों से लाट का जयघोष—'जय गंगानाथ'—निकल पड़ता था। उसके चारों ओर बीसेक योद्धा सटकर खड़े हुए थे। उनके शरीरों पर भी पट्टियां बंधी थीं। उनकी आँखों में भी मरते हुए सिंह का ज्वलंत तेज था। सभी भूख, प्यास और विश्राम के अभाव में सूखकर क्षीण हो गए थे किन्तु फिर भी उनके अंग-अंग से अडिग शौर्य झलकता था।

शस्त्र रहित बालक तेजपाल को लेकर एक योद्धा के पीछे-पीछे वहाँ पहुंचा। चारों ओर शमशान से भी अधिक सन्नाटा था; केवल मरे हुए योद्धाओं के मुखों को चाटते श्वानों की भयावह भूँक दूर से सुनाई दे रही थी। जब उसने इस भयानक स्थान पर लाट की नष्ट होती राज-लक्ष्मी के अन्तिम रक्षक को—यमराज को—ललकार कर खड़े होते देखा तो उसके हृदय को आघात लगा। ध्रुवसेन से उसने शस्त्र-विद्या सीखी थी और रेवापाल के साथ खाना, खेलना—सभी तो हुआ था। वहाँ खड़े हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले सभी योद्धाओं से वह परिचित था। वह स्वयं विजयी, विदेशी सेना का नायक और विदेशी राजा का विश्वासपात्र था। वह स्वदेश के हित में लगा हुआ था या उसके साथ कपट कर रहा था? एकबारगी ही उसका माथा चकरा गया, व्यथा से उसने आँखें मूँद लीं। पल-भर के

लिए उसे कपकंपी छूट गई। फिर उसकी दृष्टि ऊपर फरफराती गंगा-नाथ की ध्वजा पर पड़ी। विजयघोषणा के परिचित शब्द भूलकर वह कह उठा, 'जैसी गंगानाथ महाराज की इच्छा।' दूसरे ही क्षण वह स्वस्थ होकर आगे बढ़ा और ध्रुवसेन के निकट जाकर साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा, 'गुरुदेव प्रणाम !' काक ने जिस योद्धा से शस्त्र-विद्या सीखी थी उसे उसके असली नाम से सम्बोधित किया। ध्रुवसेन ने बिना कुछ बोले गर्व से अपने पांव पीछे खींचकर काक को चरणस्पर्श करने से रोक दिया। चरण स्पर्श करने से वह दूषित हो जायगा यह भावना ध्रुवसेन ने छिपाई नहीं। काक सम्मान से झुककर एक ओर तनिक हटकर खड़ा हो गया।

'काक !' थोड़ी देर के बाद उपवास और निरन्तर बोलते रहने के कारण बैठे हुए गले से वृद्ध योद्धा ने कहा—'किस काम से आए हो, हमारी निर्बलता देखने ?'

'गुरुदेव, नम्र और सम्मानपूर्वक स्वर में काक ने कहा। 'महाराज, आप न कभी निर्बल थे और न कभी हो सकते हैं। मैं तो केवल एक प्रार्थना करने आया हूं।

'प्रार्थना ?' रेवापाल बीच ही में बोल उठा। उसके गाल बैठ गए थे। उसकी आंखें विक्षिप्त मनुष्य की आंखों के समान चमक रही थीं। 'हमें दास बनाने आया है ?'

'नहीं भाई,' अपमान पीकर स्नेह मिश्रित स्वर में काक ने कहा—'मैं तो लाट के अमर योद्धाओं के दर्शन कर कृतार्थ होने आया हूं और प्रार्थना करने आया हूं कि अब यह हठ छोड़ दो। जो आपने किया वह न तो कोई कर सकता था और न कोई करेगा; किन्तु जिस लाट और मृणालकुंवर के लिए यह सब किया अब उन्हीं की भलाई के लिए हठ त्याग दो।'

'अच्छा, हठ त्याग दें और वह भी तेरे कहने से ?' ध्रुवसेन ने तिरस्कार से हंसकर कठोर स्वर में पूछा—'तेरे कहने से ?' आश्चर्य है

कि तुझे मुँह दिखाने का साहस कैसे हुआ । मुझे मालूम है तू कौन है ? तू है विदेशी पट्टणियों का क्रीत सेवक ! देश की लगन, अपने अन्नदाता की लाज और भाइयों का स्नेह—कुछ भी तो तुझे बिकते न रोक सका । खुद बिक गया और भृगुकच्छ को भी बेच दिया, अब मुझे क्रय करने आया है ?'

काक इनके कठोर अभियोगों को आश्चर्यजनक धैर्य से सुनता रहा और पहले जैसी नम्रता से बोला—'गुरुदेव, आप जो कहें वही ठीक, किन्तु मेरी भी तो कुछ सुनिए । जब मैं पट्टणी सेना में सम्मिलित हुआ उस समय लाट की शक्ति और सत्ता थी कितनी ? आप समझते थे कि दोनों हैं किन्तु मुझे विश्वास था कि दोनों मृगतृष्णा के समान हैं ।'

'देश-द्रोह करने से मृगतृष्णा के पीछे प्राण दे देना हमें अधिक प्रिय है ।' रेवापाल अधीरता से बोल उठा ।

'रेवाभाई, तुम पट्टणियों से परिचित नहीं हो । मैं यदि पट्टणियों की ओर न होता तो भृगुकच्छ भूमिसात् हो जाता, तुम कभी के पिस जाते और लाट की सत्ता और गौरव को सुरक्षित रखने का जो अवसर मैं उपस्थित कर सका हूं वह कभी न आता ।' काक ने कठोर होकर कहा ।

'यह सत्ता और गौरव ?' काक के अन्तिम वाक्य को सुन चारों ओर हाथ से संकेत करते हुए ध्रुवसेन ने कहा ।

'हाँ, यही सत्ता और यही गौरव, आज छः महीने हो गए, आप कैसे टिके रह सके, आप स्वयं नहीं जानते ? गंधार से अनाज किसने भिजवाया, मालूम है ? कामरेज से आदमी भिजवाने का संदेशा किसने भेजा, इसकी भी कुछ खबर है ?'

'किसने ?' रेवापाल ने तिरस्कार से पूछा ।'

'मैंने,' काक ने गर्व से उत्तर दिया ।

'किसलिए ?'

'किसलिए ?' काक सहज भाव से बोला, 'आप मुझे शत्रु समझते हैं, यह आपकी भूल है। गुरुदेव ! लाट पाटण के हाथ हो जायेगा यह निश्चित है, तब एक निःसहाय बन्दी के सामन क्यों ? सम्मान के साथ क्यों नहीं ? और यह आप ही कर सकते हैं । इसलिए मैंने आपको टिकाये रखा है और इस समय भी यही प्रार्थना करने आया हूं।'

कोई कुछ नहीं बोला। काक डींग मार रहा है या सत्य कह रहा है कोई न समझ पाया। काक आगे बोला—'आप मृणालकुँवर को लाट के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं न ? मैं भी यही चाहता हूं। आपको लाट की सत्ता लेनी है न ? मेरी भी यही हार्दिक इच्छा है। आपको भृगुकच्छ का झण्डा चारों दिशाओं में फहराना है न ? मेरी कामना भी यही है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूं। काक उत्साहित होकर वेग में बोलता चला जा रहा था। उसकी आंखें चमक रही थीं।

'किस प्रकार ?'

जयसिंहदेव महाराज मृणालकुँवर से विवाह करने के लिए तैयार हैं, आपको दुर्गपाल नियुक्त किया है, और लाट की सेना रेवाभाई को सौंप देने का आज्ञा-पत्र यह रहा। आप इसे स्वीकार कर लें। तो त्रिभुवनपाल और मैं पट्टणी सेना सहित कल प्रातःकाल कूँच कर दूँगा।' कहकर काक ने पाटण का आज्ञा-पत्र सामने रख दिया।

ध्रुवसेन और उसके साथी चकित होने लगे।

'इसलिए क्या हम पाटण की दासता को स्वीकार कर लेंगे ? क्रोधित होकर रेवापाल ने कहा, 'मेरे पिता को विदेशियों के अनुग्रह का दास बनाया, अब मुझे भी बनाना है ? यह कभी न होगा !' दृढ़ता से रेवापाल बोला।

'रेवा भाई' काक बोला, 'यह व्यर्थ क्रोधित होने का समय नहीं। गुरुदेव !' काक विनती के स्वर में ध्रुवसेन कहने लगा, 'आप वृद्ध और अनुभवी हैं। मुझे देशद्रोही और कौन समझने से लाट का कुछ भला नहीं होगा।'

बिना कुछ कहे ध्रुवसेन ने सिर हिलाया। काक फिर कहने लगा--'आप मुट्ठी भर तो हैं ही, चाहूं तो कल प्रातःकाल जंदूसर ले लूँ। माना कि आप स्वयं तो भीष्म पितामह के समान स्वेच्छा से मृत्यु का आह्वान कर प्राण दे देंगे, किन्तु इसका परिणाम क्या होगा यह भी सोचा है? लाट का प्राचीन गौरव अस्त हो जायेगा, मृणालकुँवर निःसहाय हो जायेंगी, लाट के सोलंकियों का चिन्ह तक शेष न रहेगा।' काक तनिक रुक गया, बीच में बोलने को तत्पर रेवापाल को उसने टोका 'रेवा भाई, जब तक मैं बात समाप्त न कर लूँ तब तक शांत रहो। विचार करो! जितना तुम सोचते हो मैं उतना पापी या द्रोही नहीं हूं। गुरुदेव, आप मेरे पिता के समान हैं रेवा भाई मेरा छोटा भाई है। भृगुकच्छ में मैंने जन्म लिया और बार-बार वहीं जन्म लूँ यही मेरी कामना भी है। विचार तो कीजिए, आपकी ऐसी परिस्थिति में मैं कैसे पाटण से ये शर्तें ला सका? यदि देशद्रोही होता तो ऐसा क्यों करता? मैं आपकी पराजय नहीं चाहता। मृणालकुंवर का हित यदि मैं न चाहता तो उन्हें गुजरात की स्वामिनी बनाने का विचार ही क्यों करता? मैं तो लाट को गुजरात की सर्वश्रेष्ठ मणि देखना चाहता हूं।'

सभी स्तब्ध होकर खड़े थे, कोई नहीं बोल पाया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर ध्रुवसेन ने अपना पट्टी वाला हाथ कपाल पर रख लिया।

'बोलिए गुरुदेव! सेनापति महाराज! बोलिए! आपके शब्दों पर ही इस समय लाट का गौरव निर्भर रहता है।'

ध्रुवसेन ने धीरे से अपना सिर ऊपर उठाया, 'भाइयो! इस बात का सम्बन्ध केवल हमसे ही नहीं है। पाटण की चाकरी मैं तो कभी करूँगा नहीं, उससे पहले गला घोंटकर मर जाऊँगा। किन्तु मेरे स्वामी की पुत्री का क्या हाल होगा? उससे पूछे बिना मैं कुछ नहीं कह सकता। यदि उसने ना कह दिया तो फिर कल माथे पर केसरिया बाना ही होगा।' इतना कह वह उठ खड़ा हुआ।

'गुरुदेव तो क्या मृणालकुंवर से अभी पूछेंगे ?' काक ने पूछा ।

'मैं तो नहीं पूछूंगा । रेवापाल, तुम काक को देवी के पास ले जाओ ।'

'परन्तु यदि वह पूछें कि आपका क्या विचार है तो ?' रेवापाल ने पूछा ।

थोड़ी देर रुककर वृद्ध योद्धा ने सिर ऊंचा किया और कहा—'कह देना कि काक की बात ठीक मालूम होती है ।'

काक का हृदय हर्ष से उछल पड़ा, और लाट के योद्धा निराश होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे ।

६

रेवापाल के पीछे जाते समय काक के मन में कई प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हुईं । एक योद्धा को समझाना एक बात है; किन्तु बीस वर्ष की स्त्री के हठ पर विजय पा लेना बिल्कुल दूसरी बात है । वह यह भी जान चुका था कि इस युद्ध में जितने अडिग साहस से ध्रुवसेन पड़ा हुआ था, सोलंकी कुंआरि का साहस भी उससे कम न था ।

अंकुसर की श्मशान-सी सूनी गलियों को पार करते काक के मन में बीते युग की स्मृति जाग उठी । पद्मनाभ महाराज के समय में, जब वह और रेवापाल साथ-साथ पाठशाला जाते थे, उसका जन्मोत्सव मनाया गया था उसका उसे स्मरण हुआ । इसके बाद एक-दो बार उसे देखा था तब वह पांचेक वर्ष की गुड़िया सी नन्हीं बालिका थी । अब वह कैसी होगी ? कैसे-कैसे दुःख और कैसी-कैसी भयंकर परिस्थितियों का उसने सामना किया होगा ? और अभी पाटण का जो मुकुट लेकर वह उसे देने जा रहा है, क्या उसे वह स्वीकार कर सकेगी ?

काक ने रेवापाल की ओर देखा। होंठ पीसता हुआ वह आगे चल रहा था। उसने सुना था—कानों का अपराध है—कि लाट की स्वतंत्रता के लिए वह जितना परिश्रम करता था उससे कहीं अधिक बड़ी कठिनाइयों का सामना कुँअरी को प्रसन्न करने के लिए करता था। उसकी सेवा में जितना परमार्थ था उतना ही स्वार्थ भी था किन्तु यह तो लोगों द्वारा कही हुई बातें हैं।

थोड़ी देर पश्चात् वे एक खंडहर में परिणित हो चुके प्रासाद के निकट आए। वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था।

'जय गगानाथ, भोला!' रेवापाल बोला।

'जय गंगानाथ, बापू।' सैनिक ने उत्तर दिया।, 'क्या आज्ञा है?'

'देवी क्या कर रही हैं?'

'बैठी होंगी।'

जा और सूचित कर कि रेवापाल और पाटण के भटराज काक देवी से भेंट करना चाहते हैं।' रेवापाल के शब्द-शब्द में अंगार थे, काक ने बिना कुछ बोले सब सहन कर लिया। थोड़ी ही देर पश्चात् भोले आया।

'बापू चलिए देवी बोलती हैं।

मैले कुचैले दालान और निपट अंधेरी जगह में से होकर भोला उसे और रेवापाल को पीछे की ओर के एक कमरे में ले गया। एक हिंडोले पर काली ओढनी ओढ़े मृणालकुंवर बैठी हुई थी। दो छिद्रों में से आते नाममात्र प्रकाश में काक ने सोलंकियों की राज्य-लक्ष्मी को देखा। वह छोटी और कोमल दीख पड़ती थी। भाग्य से ही कोई उसे सोलह वर्ष की कहे। उसके पतले और सुन्दर होंठ बड़ी कठोरता से एक दूसरे से सटे हुए थे और उनकी आँखों में गहन एवं निश्छल तेज चमक रहा था, छोटी किन्तु झुकी हुई नाक और उसकी मोहक किन्तु हठीली ठोड़ी से उसके प्रभाव की कुछ-कुछ कल्पना की जा सकती थी। उसने दोनों पाँव धरती पर रखकर एक दम हिंडोला रोक

लिया और उन दोनों की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

'यही है काक भट ?' उसने पूछा। उसकी वाणी में विचित्र शांति और निश्चयात्मकता थी। रेवापाल ने गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा।

'आइए, कैसे आए ?' उसकी वाणी में किंचित् मात्र भी भावावेश न था।

'देवी' रेवापाल बोला—'काक भट पट्टणी दण्डनायक का संदेशा लाए हैं।'

'कैसा संदेशा ?'

'यदि गुरुदेव समझौता कर लें तो पाटण का राजा आपसे विवाह करने और गुरुदेव को दुर्गपाल नियुक्त करने के लिए तैयार है।' रेवा-पाल ने तिरस्कार-भरे स्वर में काक का संदेशा कह सुनाया।

'अच्छा !' मृणाल ने इस प्रकार कहा मानो बात किसी और के सम्बन्ध में हो रही हो—'गुरुदेव का क्या विचार है ?'

'कहते हैं कि उन्हें यह बात ठीक जंचती है, फिर जैसी आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा हो तो हम तो कल ही केसरिया पहनकर निकल पड़ने के लिए तैयार हैं।'

कुँअरी एकाएक काक की ओर मुड़ी, और इस प्रकार बोली मानो वह निष्प्राण हो—

'आप ही हैं काकभट ? वही जिनके विषय में कहा जाता है कि लाट उन्होंने विजय की ?'

'हाँ, देवी !' काक ने नमस्कार किया।

'आप मुझे पाटण की रानी बनाना चाहते हैं ?'

'जी !'

'कारण ?'

'मेरे इस सुझाव में लाट का सुख और गौरव सन्निहित है।'

'और यदि मैं अस्वीकार कर दूँ तो ?' कुँअरी ने प्रश्न किया।

'तो कल जंबूसर हार जायगा; मेरे सदा विजयी रहने वाले गुरुदेव

पराजित होंगे और पद्मनाभ महाराज की पौत्री भटकती फिरेगी।' काक ने भी कुछ कठोर होकर उत्तर दिया। जाने क्यों, इस बालिका का उद्देश्य उसकी समझ में नहीं आया।

'तुम्हारी क्या राय है ?' कुँअरी ने रेवापाल से पूछा।

'जैसी आपकी आज्ञा हो ?' क्रोध से भरे रेवापाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'तुम्हें यह योजना ठीक लगती है ?'

'लाट विदेशी के हाथ में जा रहा है इसमें मुझे तो कुछ भी ठीक नही दिखाई पड़ता।'

मृणाल कुछ समय तक चुप रही।

'रेवापाल, गुरुदेव चौपाल में हैं ?'

'हाँ'

'जाओ, बुला लाओ।'

'जो आज्ञा।' कहकर रेवापाल चला गया। काक इस छोटी-सी बालिका का दबदबा और संयत व्यवहार देखकर चकित हो गया। मीनलदेवी में भी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि और इतनी एकाग्रता न देखी थी। जैसे ही रेवापाल गया वैसे ही वह काक की ओर मुड़ी; उसके होंठ और भी कठोर हो गए।

'तुम मुझसे क्या करवाना चाहते हो, यह भी मालूम है ?'

'हाँ !'

'नहीं।' तलवार से हमला करने वाले अनुभवी योद्धा के-से आत्म-विश्वास से युवती ने कहा, 'प्रातःकाल अपने दादा का मुकुट पहन और हाथ में तलवार लेकर मृत्यु का आलिंगन करने मैं तुम पर टूट पड़ूँगी। मेरा सिर कट जायगा और मैं अमर हो जाऊँगी। मेरे शौर्य से पृथ्वी गूँज उठेगी, और भविष्य में लोग मुझे अम्बिका के समान पूजनीय मानेंगे।' उसके स्वर में कम्पन न था और न ही उसकी आँखों में असाधारण तेज; थी केवल उसकी अस्वाभाविक निश्चयात्मकता और उदासीन

शान्ति । काक के आश्चर्य की सीमा न रही ।

'तू चाहता है मैं ऐसा अवसर खो दूं ?'

'हाँ'

'क्यों ?'

'गुजरात की राजमाता बनने के लिए ।'

'तुम्हारे राजा की कितनी रानियां हैं ?'

'तीन ।'

'और मैं चौथी ? इनमें पटरानी कौन है ?'

'मीनलदेवी ने वचन दिया है कि आप ही पटरानी बनेंगी ।'

'काक, मेरी इच्छा तो स्वयंवर रीति से विवाह करने की है ।'

'जयसिंहदेव सोलंकी से बढ़कर योग्य वर कहाँ मिलेगा ?' काक ने प्रश्न किया ।

'जो गुजरात पर विजय प्राप्त करे, वही ।'

'ऐसा किससे हो सकता है ?'

'बताऊँ ?' उसने नीचे झुक, होंठ दबाकर, धीमी किन्तु स्वस्थ आवाज में कहा । काक को कंपकंपी छूट गयी । यह लड़की तो अनुभवी स्त्री की चतुराई से बात कर रही थी ।

'एक व्यक्ति, जिसकी मैंने बहुत ख्याति सुनी है । उसने मुंजाल को मात दी; खेंगार के छक्के छुड़ा दिये; अकेले नवघण को पकड़ा; उदा की रानी को ले आया; और आज त्रिभुवन को अपनी मुट्ठी में किये हुए है । उसको देखने के लिए मैं इतने वर्षों से तड़प रही थी । बोलो, उससे तो यह हो सकेगा ?'

काक काँप उठा । कितना भयंकर प्रश्न था ? कितना आवेश ? क्षणभर के लिए वह बिल्कुल अस्थिर सा हो गया ।

'बोलो, यह सब पराक्रम सच है, या झूठ ?'

'किन्तु मैं—मैं—'

'हाँ, तुम गुजरात ले सकते हो ।'

'क्या कहती हो ? उन्मादिनी जैसी बात है ?'

'नहीं। बताओ, अभी तुम्हारे पास लाट की कितनी सेना है ? पाँच-छः हजार ?'

'हाँ।'

त्रिभुवनपाल को बात-की-बात में जीता जा सकता है। कल प्रातः-काल ही तुम्हारी सेना भृगुकच्छ पर अधिकार कर सकती है। परसों मही से तापी तक लाट तैयार हो जायेगा। किन्तु पद्मनाभ महाराज का सिंहासन सूना है। हम दोनों उस पर बैठेंगे। फिर गुजरात कौन बड़ी बात है ?' उसने शांत होकर प्रश्न किया। उसके लिए तो मानो यह मात्र लेन-देन का प्रश्न था।

पाँव के निकट साँप दिखाई देने पर जो अवस्था होती है वही अवस्था काक की हो गई। यह गहन विचार शक्ति यह निर्मम योजना, कैसी दृढ़ता और कितना साहस; और वह भी इस बालिका में।

कुछ क्षण तक काक को कोई उत्तर न सूझा।

'देवी' क्षोभ-भरी आवाज में काक बोला—'आप मुझसे चाहती क्या हैं ?'

'धरती पर सर्वश्रेष्ठ वस्तु राज्यपद है, वही देना चाहती हूं।'

'नहीं, मित्र-द्रोह करूँ, स्वामी द्रोह करूँ, पत्नी-द्रोह करूँ और वर्ण-भ्रष्ट होऊँ ? मुझसे यह न होगा।' काक धीरे-से बोला।

'तुमसे केवल देश-द्रोह ही हो सकता है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम कायर हो !' तिरस्कार पूर्वक वह बोली। प्रथम बार उसकी वाणी में निराशा झलकी।

'ऐसा ही समझ लो कि मुझ में इतना साहस नहीं है। हाँ, जयसिंह देव से ब्याह करो तो मैं तुम्हें संसार की महारानी बना दूँगा, पद्मनाभ महाराज की कुँअरी की आज्ञा दसों दिशाओं में मान्य होगी। और क्या चाहिए ?'

'यह सब तो बातें हैं। मुझे पाटण की महारानी बनने में कोई

तथ्य नहीं दिखाई देता ।'

'दूसरा रास्ता तो केवल मृत्यु का है ।'

'तुम्हारा जी नहीं ललचाता ?' कुँअरी ने प्रश्न किया ।

'अपना संकल्प मैंने बता दिया । जितना कर पाया हूं किया, अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता ।'

तब मैं भी दूसरा मार्ग ग्रहण नहीं कर सकती, मुझे तुम्हारी चिंता क्यों हो ।' शांति से मृणाल ने कहा ।

'जी,' काक ने उत्तर दिया, 'लीजिए, गुरुदेव पधार गये ।'

इतना कहने के साथ ही ध्रुवसेन और रेवापाल आ गये । सभी चिंतातुर मुख से कुँअरी की ओर देखते रहे । उसने एक-एक कर तीनों की ओर देखा और फिर शांति से कहा—

'गुरुदेव ! जयसिंहदेव से विवाह करने के लिए मैं तैयार हूं ।'

रेवापाल चकित हो गया । काक ने सुख की सांस ली ।

'आप क्या करेंगे ?'

'मैं ?' ध्रुवसेन बोला,'मैं कल संन्यास ले लूँगा । रेवापाल को दुर्ग-पाल नियुक्त करना पड़ेगा ।' ध्रुवसेन ने काक से कहा ।

'जी ।' काक बोला ।

'रेवापाल कभी विदेशियों की दासता स्वीकार नहीं करेगा ।' दांत पीसते हुए रेवापाल बोला ।

'तो आप यह स्वीकार करते हैं ?' काक ने अन्तिम प्रश्न किया ।

'हां ।' ध्रुवसेन ने कहा । कुँअरी शांति से और रेवापाल क्रोध से देखते रहे ।

फिर यह हुआ कि ध्रुवसेन ने संन्यास ले लिया, कुँअरी जयसिंहदेव की विवाहिता होकर लीलादेवी हो गई और रेवापाल के लिए संसार में बिल्कुल रस न रहा ।

इस बात को चार वर्ष बीत गये ।

१०

काक शीघ्र ही देवभद्रसूरि के उपाश्रम में जा पहुंचा।

कई वर्ष पहले देवभद्रसूरि ने भृगुकच्छ में अपने चतुर्मास किये थे। दुर्बल स्वास्थ्य के कारण अन्य ऋतुओं में भी अधिक दूर विहार नहीं करते थे। आवश्यकता पड़ने पर वह यहां पहुंचते थे।

इन सूरि की ख्याति देश-विदेश में फैली हुई थी। जब से—संवत् ११५८ में—उन्होंने कथारत्नकोष लिखा तब से इनकी विद्वत्ता की इतनी धाक बैठ गई थी कि चारों ओर से जैन साधु और पंडित इनके वचनामृतों का आस्वादन करने के लिए भृगुकच्छ खिंचे हुए चले आते थे।

वे जितने अप्रतिभ विद्वान् थे उतने ही हृदय के विशाल भी थे। भूतदया के वे भक्त थे; उनकी प्रवृति का एक मात्र लक्ष्य था मानव-समाज का उद्धार। जैन और अजैन मतों के वाद-विवाद अथवा राज पुरुषों के षड्यन्त्रों में उन्हें कोई रस नहीं था। उसके उपाश्रम में साधु और ब्राह्मण दोनों का स्वागत होता था। उनके उपदेश संसारी और विरागी दोनों के काम के होते थे। वह अन्य साधुओं के समान राजनीति में दिलचस्पी नहीं लेते थे।

शरीर अस्वस्थ होने के कारण आजकल वह भृगुकच्छ में थे। त्रिभुवनपाल की उदारता से निर्मित हुए उनके उपाश्रम में लोगों का आवागमन अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक था।

जिस कमरे में देवभद्र था उसी में काक गया। दुर्गपाल ब्राह्मण होते हुए भी अक्सर इधर चला आता था। इस समय उसे वहां देखकर लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ।

एक कमरे में देवभद्र जी अपने अस्वस्थ शरीर को हाथ पर टेक कर बैठे हुए थे। पास ही में नगर के एक दो श्रावक बैठे हुए थे। थोड़ी दूर तक एक व्यक्ति सूरिजी के विरचित नए लिखे हुए 'पार्श्वनाथ चरित्र' की प्रतिलिपि कर रहा था।

उनका मुख क्षीण और साधारण दर्शक की दृष्टि से निस्तेज था परन्तु उनकी आंखों में मिठास थी। वाद-विवाद में भी उनकी दृष्टि कठोर नहीं होती थी। उनकी हँसी अल्प किन्तु मीठी होती थी; और विद्वता या विजय का अभिमान तो मन में था ही नहीं। उनका शरीर ठिगना था; कई बार तो बोलते-बोलते रुक जाना पड़ता था।

जिस समय काक उस कमरे की सीढ़ियां चढ़ रहा था उस समय देवभद्र सूरि शिक्षा-शास्त्र के अनुभवी अध्यापक की भांति उंगलियां हिला कर कह रहे थे—

'अहिंसा और राज्यपद इन दोनों में विरोधाभास है। राज्याधिकारी या तो अहिंसक होता है या हिंसा से रक्षा करने का साधन होता है। फिर अहिंसा के उपासक के लिए अधिकारी का क्या उपयोग हो सकता है? सूरि ने सामने बैठे हुए साधु से प्रश्न किया और काक को देखकर उसकी ओर आमुख हुए, 'यह हमारे दुर्गपाल हैं। यदि हम अहिंसा का ही प्रचार करें तो फिर इनका हमारी रक्षा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर हंस कर सूरि जी ने बात पलटी, 'महाराज! इन सूरि-जी से परिचित हो?'

काक ने देवभद्र से साधु की ओर दृष्टि फेरी उसे उसका मुख परिचित सा लगा किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी ठीक से पहचान न सका। इस साधु का शरीर- विन्यास देवभद्र के शरीर-विन्यास से एक दम विपरीत था। वह युवक और तेजस्वी था; उसकी आंखों में निराला आकर्षण था; और उसके हास्य में वैचित्र्य था। उसका शरीर क्षीण होते हुए भी निर्वीर्य नहीं था।

इस युवक साधु को कहां और किस अवस्था में देखा था यह काक को स्मरण नहीं हो सका। मन ही मन स्मरण करने की चेष्टा करते हुए वह नमस्कार कर बैठ गया।

'यह महराज कौन हैं?' काकने पूछा।

'यह महाराज नहीं, सूरि हैं।' तनिक हँस कर देवभद्र ने उत्तर दिया। 'इनका नाम हेमचन्द्र सूरि है। आज ही विहार करते हुए यहां पहुंचे हैं,' देवभद्र सूरि ने कहा। उम्र में जितने छोटे हैं, ज्ञान और तप में उतने ही बड़े हैं।'

'मेरा सौभाग्य कि दर्शन करने आया एक महात्मा के, भेंट हो गई दो से। मैं वंथली जाने वाला हूं।

'क्यों?'

'जयसिंहदेव महाराज की आज्ञा है।' काक ने हेमचन्द्र की ओर देखकर कहा। उसका मुख भावहीन था।

'एकाएक?' देवभद्रसूरि ने प्रश्न किया।

'कुछ समझ में नहीं आता। उदा मेहता का आंबड़ आज्ञा लेकर आया है।'

'ऐसा? कब?'

'आज ही प्रातःकाल।'

'अवश्य कोई विशेष कारण होगा।'

'लगता है महाराज जूनागढ़ लेने के लिए आतुर हो उठे हैं।'

'अरे रे!' देवभद्र सूरि ने कहा, राजा सबसे बड़े हिंसक होते हैं। सूरि जी से मैं यही कह रहा था कि राजाओं को समझावें। अहिंसा सरल नहीं। उनका अस्तित्व, उनके ठाट-बाट, उनका वैभव सभी कुछ हिंसा पर निर्भर है।'

'और इन भाई जैसे भट उसमें सहायता कर रहे हैं।' हंसकर हेम-चन्द्र बोला।

काक सावधान था उसने धीरे से एक दाव खेला।

'जब उदा मेहता जैसे श्रावक शिरोमणि तो हिंसा त्याग नहीं सकते तो मुझ जैसे साधारण सैनिक की क्या बिसात।'

किन्तु उस साधु की मुखमुद्रा में कोई परिवर्तन न हुआ। उसने कहा—'सभी राजपुरुष उलटे मार्ग पर चल रहे हैं। न जाने कब सीधे

मार्ग पर लगेंगे ?'

'जब हमारी समस्या खरी होगी तभी ।' देवभद्र सूरि ने कहा।

'महाराज !' काक बोला, 'मैं आजकल में चला जाऊँगा कोई आदेश अथवा सन्देश हो तो कहें।'

'हाँ ! मीनलदेवी को मेरा धर्मलाभ कहना ! लौटकर कब आओगे ?

'जितना शीघ्र हो सकेगा। सोमनाथ भगवान का मन्दिर—पूरा होने आया है. बन सका तो जयसिंहदेव महाराज को भी जूनागढ़ लेते ही कलश चढ़ाने के लिए यहाँ बुला लाऊँगा।

'तब तो बहुत अच्छा होगा !'

'महाराज ने अब तक भृगुकच्छ को पावन नहीं किया ?' हेमचन्द्र ने पूछा।

'नहीं,' काक ने उत्तर दिया। 'इसलिए इच्छा है कि इस बार उन्हें यहाँ ले आऊँ। आप तब तक यहीं रहेंगे न ?'

'यह तो आपके लौटने में कितना समय लगेगा इसी पर निर्भर है।'

काक हँस दिया। उसे लगा कि या तो मनुष्य सर्वथा भोला है या पक्का धूर्त है। उसका पाटण से क्या सम्बन्ध है यह जानने के लिए वह उत्सुक हो उठा; आम्रभट से वार्तालाप करते समय जो उचित-अनुचित विचार उसके मन में उठते थे वह पुनः जागृत हुए।

'सम्भवतः बहुत समय लगे। खेंगार की आपसे भेंट हुई ?' काक ने देवभद्र और हेमचन्द्र की ओर देखकर पूछा।

'नहीं' देवभद्र ने कहा—'नगरसेठ अभी घर गये हैं।'

'तो मैं भी जाऊँ। मुझे उनसे मिलना है।' कहकर काक उठ खड़ा हुआ।

'मैं भी थोड़े समय के लिए हो आऊँ। आज्ञा है ?' इतना कह हेमचन्द्र भी उठ खड़ा हुआ।

'महाराज ! आज्ञा ?' काक ने प्रणाम कर पूछा।

'बेटा ! धर्मलाभ।' देवभद्र बोले।

हेमचन्द्र भी देवभद्र को प्रणाम करके काक के साथ हो लिया।

११

जब काक हेमचन्द्र के साथ कमरे की सीढ़ियां उतर रहा था तभी उसे लगा कि दोनों ही एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देख रहे हैं। शिष्टाचारी सैनिक चतुराई से बात कर रहा था; त्यागी साधु नम्रता से उत्तर दे रहा था। दोनों के मुख भाव-विहीन थे फिर भी दोनों एक-दूसरे की थाह लेने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

काक ने बहुत सिर मारा; मुख परिचित था, स्वर की भंगिमा भी कुछ-कुछ परिचित जान पड़ी, परन्तु इस साधु को किस स्थान पर देखा था यह याद नहीं आता।

सूरि भी काक के साथ सावधान होकर व्यवहार कर रहा था, उसके मुख पर भोलापन इतना स्पष्ट था कि काक की शंका लगभग जाती रही।

'आपमें और सूरिजी में क्या विवाद चल रहा था?'

'कोई विशेष नहीं। सूरिजी का दृढ़ विचार है कि राज्यकार्य में अहिंसा का कोई स्थान नहीं।'

'हो भी कैसे सकता है? राज्यकार्य ईर्ष्या, सत्ता की इच्छा और कपट से ही चलता है। वहां अहिंसा कैसे सम्भव है?'

'वास्तव में यह आपकी भूल है।' नवयुवक साधु ने तेज-भरे स्वर में कहा।

'कैसे?'

'जब राज्य-कार्य में धर्म का शासन होगा तभी इन पापाचारों का दमन होगा।'

'मुझे तो लगता है कि ऐसी स्थिति में धर्मराज स्वयं बदल जायेंगे।'

'तो वह धर्मराज ही क्या?'

'पाटण में चन्द्रावती से एक यती आए थे। आपने सम्भवतः उनकी बात सुनी थी?'

'दस हजार महात्माओं का तेज पाने पर एक वीतरागी का जन्म होता है।' साधु ने कहा।

'वीतराग' शब्द सुनकर काक के मस्तिष्क में कई एक तार झनझना उठे। एकाएक प्रसंग याद आया—एक नन्हें बच्चे का सुन्दर मुख उनकी दृष्टि के सम्मुख आया। वह मन ही मन हँस दिया। अन्त में उसने इस साधु को पहचान ही लिया।

'देखा जायेगा।' मन ही मन कह काक ने अपना दाव खेला—

'सूरिजी ! बहुत वर्ष हुए हमारी एक दूसरे से भेंट हुई थी। याद है न ?'

हेमचन्द्र चौंका, उसके मुख पर तनिक क्षोभ झलक आया। 'हमारी ?'

'हाँ' काक हँसा। 'आपको उदा महेता ने दीक्षा दिलवाई थी। याद है ? तब आप छोटे थे और मैं एक मामूली सैनिक था। आपके दादा के कहने से मैं पिछली रात को आपको उठा लाने के लिए आया था—याद आया ?'

आश्चर्यचकित होकर हेमचन्द्र ने कपाल कर हाथ फेरा। पन्द्रह वर्ष पहले का प्रसंग निःसन्देह उन्हें अच्छी तरह याद था—आज एक बार फिर आँखों के सम्मुख वह दृश्य खड़ा हो गया। साधु ने गर्व से काक की ओर देखा। यह परिवर्तन देखकर काक हँस दिया।

'सूरिजी ! आपने मुझसे क्या कहा था, याद है ? मैं तो वीतरागी बनूँगा। आपका लक्ष्य सिद्ध हुआ ?' काक ने तनिक विनोद में पूछा।

'भटराज ! वीतरागी बनने की बात करना सरल है ; किन्तु बन जाना सरल नहीं है।'

'उदा मेहता कैसे हैं ?' काक ने नितान्त, निर्दोष और स्नेह भरे स्वर में पूछा।

'बहुत समय हुआ उनसे भेंट किये।' हेमचन्द्र ने भी वैसे ही निर्दोष स्वर में कहा।

'आज प्रातःकाल आम्रभट आया है। उससे तो आपकी भेंट हुई होगी ? हँसकर काक ने पूछा।

'वह यहाँ मिलने नहीं आये। भेंट हो तो कहियेगा मुझसे आकर मिलें।'

'अच्छी बात है। अब तो वह भृगुकच्छ का दुर्गपाल बनने वाला है।

'ऐसा ? वह तो बेचारा अल्हड़ आदमी है।'

'फिर भी उदा मेहता का पुत्र है। मोर के अंडों को भी क्या परखने की आवश्यकता होती है ?'

'अच्छा यह है कि भृगुकच्छ में शान्ति है, नहीं तो बिचारे के लिए बड़ा भारी पड़ता।'

काक ने देखा कि बात में कुछ सार है, अतः उसने कहा—'गुरुजी! मेरी नीति पर चलेगा तो सब ठीक होगा।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो अब लाट को वश में रखना कठिन होगा। आप उसे सलाह दीजियेगा —आपका तो अच्छा परिचय है न ?' कहकर काक ने बात बदल दी।

'अब मैं जाऊँगा। आज्ञा ?'

'धर्मलाभ, जिन भगवान् आपको विजय दें।' वृद्ध साधु की गंभीरता से हेमचन्द्र ने कहा। काक मन ही मन हँसा।

हेमचन्द्र दूसरी ओर चला गया। काक जाकर अपने घोड़े पर बैठ गया।

थोड़ी दूर जाकर काक ने अपने भट को अपने निकट चलने के लिए कहा।

'सोमेश्वर भट !'

'जी।'

'उस नवयुवक साधु को देख रहे हो।'

'जी हाँ।'

'यह बहुत विद्वान् और वीतरागी हैं। उदा मेहता के परम मित्र भी हैं। कुछ समय तक ये यहीं 'विहार' करेंगे। प्रतिदिन इनकी सेवा में उपस्थित रहना—सावधानी से।' काक ने धीरे से कहा। सोमभट चतुर था। काक का शब्द-चातुर्य उसके लिए जाना-पहिचाना था। उसने एक बार पीछे दृष्टि डालकर हेमचन्द्र को देखा और उसका मुख अच्छी तरह हृदय में जमा लिया।

१२

आम्रभट के मन को चैन नहीं था। वह चंचल हो, उठा, और उस सुन्दरी को खोजने के लिये व्याकुल हो उठा। भृगुकच्छ का अधिकार, तेजपाल सेठ की पुत्री, पद और भावी पत्नी यह सब सोच विचार उसके लिये अर्थहीन हो गया।

आंबड़ ने संयम तो सीखा ही नहीं था, राजदरबार के शिष्टाचार भी वह पूरे-पूरे न सीख सका था। उसने गण को बुलाया।

'हमीर भट।'

'बापू।'

'तू पहले भृगुकच्छ आ चुका है न?'

'हाँ।'

'एक अत्यन्त आवश्यक काम है।' चारों ओर देखते हुए आम्रभट ने कहा।

'क्या?'

'साम्बा बृहस्पति का प्राचीन बाड़ा तो देखा है?'

'हाँ वही न, जहाँ कुमारपाल महाराज पहले निवास करते थे?'

'हाँ, वही। वहाँ मैंने एक स्त्री देखी थी।'

'हाँ।' अमीर ने मूँछों ही में मुस्कराते हुए कहा।

'उसका नाम और निवास-स्थान का पता मुझे चाहिए।'

'किन्तु वहाँ तो तीन सौ स्त्रियाँ रहती हैं।'

'तुम उन तीन सौ में से उसे तुरन्त पहचान जाओगे।'

'किस प्रकार?'

'युवती है, सुन्दर है—।' आम्रभट रुक गया।

'बापू! सभी युवतियां सुन्दर लगती हैं और सभी सुन्दर स्त्रियां युवती! ऐसे काम चलेगा?'

'मूर्ख! वह तो अप्सरा के समान है। लम्बी और संगमरमर के समान अद्भुत है। जहाँ महादेव मन्दिर है न, वहीं कहीं रहती है।'

'बापू मुझ गरीब की मानोगे?'

'क्या?' अधीर होकर आम्रभट ने पूछा।

'हम अभी तो आये हैं और उस पर मेहता जी ने आवश्यक काम से भेजा है। इस 'पंचायत' में पड़ेंगे तो मरेंगे।'

आम्रभट ने हमीर की ओर आँखें तरेरकर देखा, 'तुझे सलाह देने का व्यसन कब से लगा?'

हमीर चुप रहा। उसने नतमस्तक होकर हाथ जोड़ लिए, 'जो आज्ञा।'

'मुझे संध्या तक उसका नाम, स्थान, उसके पति का नाम, पिता का नाम आदि पूरा विवरण चाहिए।

'हो सके तो परिचय भी करवा आऊँ!' तनिक कटाक्ष से हमीर ने कहा।

'इसका तो मुझे विश्वास है।' हँसकर आम्रभट बोला, 'हाँ देख. कोई जान न पाये।'

'जान भी लें तो क्या? ये लाटिये कर भी क्या सकेंगे?'

'वह तो भला क्या कर सकते हैं।' गर्व से आम्रभट ने कहा।

'केवल, तेजपाल सेठ जान जायें तो अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा! तो समझ गये हो न?'

'परन्तु आप तो ऐसे चिन्ह बताते हैं कि काम बन ही नहीं सकता।'

'पागल! वैसी दूसरी स्त्री तो मैंने देखी ही नहीं।' आंबड़ बोला।

'आप हर बार ऐसा ही कहते हैं।'

'इस बार तो तू भी मान जाएगा। कैसा वर्णन है उसका? मानो मोगरे की कली हो।' बोलते-बोलते आम्रभट के मुँह में पानी आगया।

'किस जाति की है?'

'ब्राह्मण। उस वाड़े में और क्या जाति मिल सकती है? जा, अब देर मत कर।'

'काम होते ही आता हूं।' हमीर ने कहा और तलवार बांधकर बाहर निकल पड़ा।

हमीर अपने स्वामी की विशेषतायें जानता था। ऐसे अनेक प्रसंगों में उसने आंबड़ की सहायता की थी और अनेक विपत्तियों से उसने उसकी रक्षा भी की थी। वह समझ गया था कि इस समय उसके स्वामी हठ पर चढ़े हुए हैं और ना कहने से कोई लाभ नहीं होगा। यह विचार करता हुआ वह बाहर निकला। नाम धाम का पता लगाना कुछ कठिन नहीं था। किन्तु, उसे लगा, ये सब बहुत सावधानी से करने पर भी कुछ हाथ न लगेगा।

चतुर होने के साथ ही हमीर अभिमानी भी था। संसार का स्वामी पाटण, पाटण का स्वामी जयसिंहदेव, और उदा महता जयसिंहदेव के एक प्रकार से स्वामी ही थे—यह हमीर के सिद्धान्त थे। स्वयं उदा महता का विश्वासपात्र सुभट और उनके प्रिय पुत्र का घनिष्ठ मित्र होने के कारण वह सम्पूर्ण संसार को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था। उसने लाट के साथ हुए कई युद्धों में भाग लिया था, और लाट पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी वह एक दो वर्ष पट्टणी सेना में रहा था। इसी कारण से लाट के निवासियों को वह बड़ी तिरस्कार

की दृष्टि से देखता था।

सीधे साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाना उसे ठीक नहीं लगा, अतएव उसने अपने एक पुराने मित्र को खोज निकालने का निश्चय किया।

उसके मित्र नेरा तोतला को पट्टणी सेना में कोई न जानता हो, ऐसी बात नहीं। वह गप्पी था और पराक्रम का मूल्य जानता था। आराम और आनन्द को छोड़ और उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। भोजन और हास्य-विनोद के बिना तो उसका जीना असम्भव था। जहाँ रहता वहीं गाँव भर के व्यक्तियों से, विशेषकर स्त्रियों से परिचय करना कभी न चूकता था। तब जिस-जिस स्थान पर पट्टणी सेना पड़ाव डालती थी वहाँ एक दो स्त्रियों से विवाह करके घर बसाना भी वह कभी न चूकता था।

हमीर समझ गया था कि इस महारथी की सहायता के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं है। अतः उसने चौकी पर आकर नेरा तोतला का पता पूछा। त्रिभुवनपाल सोलंकी का पता लगाने में कठिनाई पड़ सकती थी किन्तु नेरा तोतला का झोंपड़ा ढूँढ़ने में कभी परिश्रम नहीं उठाना पड़ता था। तेलियों के मुहल्ले के नुक्कड़ पर एक नव परणीता के घर में वह रहता था, हमीर उस ओर मुड़ा।

घर छोटा और मैला था। एक ओर कोल्हू चक्कर काट रहा था। और दूसरी ओर एक तेलन बैठी गन्दी, पीली रेवड़ियाँ बेच रही थी। गन्दे पथ में हर प्रकार की सड़ी गली वस्तुएं दृष्टिगोचर हो रही थीं।

हमीर ने जाकर द्वार की साँकल खड़खड़ाई, परन्तु कोई उत्तर न मिला। आवाज भी दी किन्तु किसी ने द्वार नहीं खोला। अन्त में उसने निकट की दूकान पर बैठी हुई तेलन से पूछा।

'नेरा भाई यहीं रहते हैं?'

'हाँ।'

'तो उत्तर क्यों नहीं देता!'

'लुगाई को निकाल कर प्रातःकाल से अन्दर ही बैठे हैं।'

तो अब क्या करूँ ?'

'पीछे से जा देखो, बाड़े का द्वार खुला होगा।'

'किधर से जाऊँ ?'

'इस ओर होकर निकल जाओ।'

हमीर शीघ्रता से उस ओर गया। पड़ोसिन के कहे अनुसार पिछला द्वार खुला हुआ था। उसे धकेल कर हमीर बाड़े में गया और वहाँ से घर में घुसा।

उसकी पदध्वनि सुनकर निकट ही के कमरे से आवाज आई।

'बा···बा···ए···म'—ऐसा लगा मानो कोई मुँह में कुछ भरकर बोल रहा है। हमीर ने स्वर पहचान लिया।

'अरे, ए तोतला! भाई किधर है?' हमीर प्रश्न करता हुआ अन्दर घुसा।

'कौ···ओ···कौ' ओ बड़ी कठिनाई से गले के नीचे कुछ उतारते हुए तोतले का स्वर आया।

'अकेला बैठा क्या कर रहा है रे? अनाज देते-देते मेरा तो गला ही बैठ गया।' हमीर ने अन्दर पहुँच कर कहा।

अन्दर का दृश्य बड़ों-बड़ों को चकित कर देने वाला था।

भेरा को विधाता ने मनुष्य तो गढ़ा ही न था, हाथी बनाते समय वह भूल से आदमी के रूप का बन गया था। वह लम्बा था और कल्पनातीत विपुलाकार था उसका शरीर। उसकी नाक नुकीली तथा झुकी हुई थी; उसके नेत्र शीतल के समान विशाल थे। तोंद इतनी गोलाकार थी कि मोटी गागर भी उसके सामने पानी भरे। उसके हाथ और पाँव मोटे और गोल थे। उसको देखकर अर्द्ध-निपुण कारीगर द्वारा मनुष्य शरीर की लम्बाई के नाप के बनाए गणपति का स्मरण हो आता था।

यह वीर पुरुष उकड़ूँ बैठे थे, और बड़ी कठिनाई से वह सामने पड़ी थाली में पड़े लड्डू उठा-उठाकर मुँह में रखते चले जा रहे थे। यह

प्रयोग इतनी शीघ्रता और सफाई से हो रहा था कि कब वह मुंह में पड़ते और कब गले के नीचे उतरते यह निश्चय करना सरल नहीं था। यह उत्तावला वीर इस तरह हांप रहा था मानो धमनी चल रही हो।

उसने आंखें फाड़ कर हमीर की ओर देखा और उसे पहचाना। एकाएक उसकी जल्दबाजी जाती रही। उसके चिन्तातुर मुख पर हास्य फैल गया। उसने घटती हुई धमनी की तरह एक निःश्वास लेते हुआ कहा—

'कौ···कौ न ह···मी··· ।'

'हा—हा—हा' नेरा बोला—हो—अ··अच्छा हुआ कि तुम पहले आ गए। मैं तो समझा कि मेरी वह बहू है। मारने के लिए मैं यह कलछी उठाने वाला ही थी।'

'अरे बैठ बैठ ! यों कह न लुगाई के आने से पहले सारे लड्डू उड़ा जाने का विचार कर रहा था।'

'ही—हो—हो !' हास्य से घर गूंज उठा, 'तो क्या करूं ? दो दिन तक उसने मुझे भूखों मारा और आज प्रातःकाल क्रोधित होकर पीहर चली तो मैंने यह किया। हमीर तुझे आए कितने दिन हो गये ? ले एक लड्डू तो खा···खा।' कह नेरा ने बचे हुये ग्यारह लड्डुओं में से एक हमीर को दे दिया।'

'मुझे नहीं खाना है; तू भूखा है, तूही खा ले।' हमीर ने उदारता दिखाई। बिना और आग्रह के नेरा ने वह लड्डू अपने मुंह में रख लिया।

'मैं आज प्रातःकाल ही आया हूं। मित्र, तुमसे एक काम है।'

'खा···खा···खा···लेने दे।' नेरा हकलाता नहीं था, केवल अटकता-भर था और वह भी प्रथम शब्द पर। एक बार उसकी जीभ चल पड़ती तो फिर उसे रोकना बहुत कठिन होता था।

'अच्छा, खा ले।'

नेरा ने मोदकों को शीघ्रातिशीघ्र गति से मुंह या गले में रोके बिना पेट में पहुंचाना आरम्भ किया। ग्यारह के ग्यारह लड्डू समाप्त कर, हाथ धो हमीर के निकट आ उसने 'क···क···क्यों दोस्त, कहकर हमीर की जंघा पर हाथ मारा। मित्रता का प्रमाण नेरा ने इतने कठोर ढंग से दिया कि हमीर को क्रोध आ गया किन्तु स्वार्थ होने के कारण कुछ कह न सका।

'देख, मुझे एक स्त्री की खोज करनी है।'

'ब्या···ब्या···ब्याहना है ? मेरी लुगाई की एक बहन—'

'नहीं—नहीं। सुन तो सही। एक स्त्री का पता चाहिए।'

'तू···तू ऐसी बात मत कर भाई।'

'क्यों ?'

'मैं···मैंने तो व्रत ले लिया है।'

'अरे कैसा व्रत ?'

'पराई स्त्रियों से बात न करने का।' नेरा बोला।

'अरे पागल ! मुझे स्त्री की बात नहीं करनी है, सिर्फ दिखानी है। देख, हम सभी भट बन गए, बस तू यूं ही रह गया।'

'तु···तु···तुम्हीं सबने मुझे इस तरह रखा है। मैं युद्ध में होता तो भी तुम जाकर चुगली करते कि मैं पीछे रह गया हूं और भाग गया हूं।'

'अब भी इच्छा है !'

'कि···कि···कि···किस प्रकार ?'

'एक स्त्री का पता बता दे तो आम्रभट निश्चय ही तुझे भट बना दें।

'आ···आम्रभट ?'

'मूर्ख ! उदा मेहता के पुत्र और भृगुकच्छ के भावी दुर्गपाल।'

'है !' मुंह फाड़ कर नेरा ने पूछा, 'काक का क्या हुआ ?'

'वह तो वंथली जा रहे हैं। क्यों उनसे घबराता है ?'

'मैं···मैं···घबरा···ऊं ?' छाती फुलाकर नेरा ने कहा, 'मैं कभी किसी से घबराया हूं ?'

'नहीं रे, बोल मेरी सहायता करेगा अथवा नहीं ?'

'क्या···क्या···करूँ ? मेरे जैसे योद्धा को कोई भट नहीं बनाता। कितने युद्धों मे मैंने भाग लिया—कितने घाव सहे ! फिर भी मैं भट नहीं।'

मैंने आम्रभट से वचन ले लिया है। मैं तेरा परिचय करवा दूंगा। इतना-सा काम पार लगा दे।'

'अ···अ···अभी लो।' चुटकी बजाते हुए नेरा ने कहा और खड़ा होकर तलवार बाँधने लगा।

'वह है कौन ?'

'साम्बा वृहस्पति के बाड़े में रहती है।'

'सा···सा साम्बा' कहते हुए वह तलवार खोलने लगा—उधर तो दुर्गपाल, काक निवास करते हैं।

'हाँ। परन्तु इसमें डरने की क्या बात है ? हमें तो नाम मात्र जानना है।'

'प···पर जाना कैसे जाय ? किसकी लड़की है ?'

'यही तो खोजना पड़ेगा।'

'प···प···परन्तु काक जान जायेंगे तो ?'

'जानेंगे कैसे ? हम पट्टणी योद्धा हैं। यों ही थोड़े डर जायेंगे ?'

'अ···अरे ! ड···डरने की तो बात ही क्या है ?'

'और तू तो बड़ों-बड़ों के होश ठिकाने लगा देने वाला है।'

'तो···तो मैं 'ना' थोड़े ही कहता हूं।

'फिर अब तैयार हो जा।'

नेरा तलवार बाँधने लगा। 'किन्तु किस प्रकार खोजूंगा ?'

'य···यह काम मेरा ! वहाँ—वहाँ अविमुक्तनेश्वर का देवल है—'

'वहीं।' हँस कर हमीर ने कहा।

'वाह मित्र ! अब भी तेरी बुद्धि वैसी-की-वैसी है ।'

'परन्तु लोग तो कहते हैं मेरी बुद्धि निरन्तर तीव्र होती जा रही है ।'

'ठीक ही तो है । मोटा तो केवल शरीर होता है ।'

'हो—हो—हो—' कह नेरा ने पगड़ी सिर पर रखी और दोनों सैनिक वहाँ से चल पड़े ।

१३

हाथ-में-हाथ लिये, हँसते हुए, पथ में आते-जाते लोगों की हँसी उड़ाते हुए दोनों चले जा रहे थे । इनके विचार से वे सभी स्त्री-पुरुष पाटण के और साथ ही इनके भी दास थे, इनको प्रसन्न करने के लिये ही उन सभी ने जन्म लिया था ।

जनता में भी आज कुछ-कुछ क्षोभ फैल गया था । उड़ती गप सारे बाजार में फैली थी कि भृगुकच्छ के दुर्गपाल के पद पर काक के स्थान पर कोई पट्टर्णी आने वाला है । सभी चारों ओर शंका और भय से देख रहे थे । नेरा के गजानन से तो सभी परिचित थे किन्तु उसके साथ स्वच्छ पारधान धारण किये नए पट्टर्णी को देख कर लोग और भी चक्कर में पड़ गए ।

हमीर वैसे तो व्यवहार-कुशल था, किन्तु उसने एक विजित नगर के निःसहाय स्त्री-पुरुषों के बीच तड़क-भड़क या अकड़ कर चलने में लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और शिष्ट वर्ग के मुहल्ले में जाकर स्त्रियों की ओर घूरने में भी उसे कोई बुराई न दिखाई दी । पाटण या खम्भात में वह ऐसा करने का स्वप्न में भी साहस न कर सकता था । किन्तु यह तो बेचारा, पराजित भृगुकच्छ था । यहां तो

पट्टणी मनचाही कर सकता है। सभ्य पाटण के नियम यहां कैसे लागू हो सकते हैं ?

हमीर और नेरा दोनों टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर निर्विघ्न साम्बा वृहस्पति के पुराने बाड़े में स्थित अविमुक्तेश्वर मन्दिर के सामने आ पहुंचे। प्रातःकाल आम्रभट के आने के समय यहाँ जैसी नीरवता थी वैसी इस समय न थी। वह मन्दिर प्राचीन, पूजनीय और माननीय था। फलस्वरूप लोगों की हलचल थी और उसके पीछे के कुएं पर कई स्त्रियाँ पानी भर रही थीं।

हमीर और नेरा दोनों ने देवालय में जाकर दर्शन किए और फिर उसके पीछे के चबूतरे पर पानी भरनेवालियों को देखने के लिए बैठ गए। बेकार बैठकर आती जाती स्त्रियों को बस देखते ही रहना इन दोनों में से एक की भी प्रकृति से मेल नहीं खाता था; फिर लम्बी और अप्सरा के समान तो कोई स्त्री आ ही नहीं रही थी। ;अतः वह बैठे-बैठे उकता गए। उनकी अधीरता ने एक नया रूप धारण किया।

नेरा पालथी मारकर बैठ गया, और चारों ओर भयंकर कटाक्षों की वर्षा करने लगा, हर आने जाने वाली के साथ ठिठौली करने और हँसने लगा। उसका जीवन निम्न वर्ग के लोगों में ही व्यतीत हुआ था। अतः उनसे सीखी रीतियों की वह यहाँ भी परीक्षा करने लगा।

अन्त में हमीर ने भी आते-जाते पर टीका करना आरम्भ कर दिया; टीका करने के साथ ही ठट्टा करना भी आरम्भ कर दिया; ठट्ठा आरम्भ होते ही नेरा अपना नियन्त्रण खो बैठा। वह जोर-जोर से पानी भरती हुई स्त्रियों के लक्षणों का विश्लेषण करने लगा।

इन दो अपरिचित पुरुषों को इस प्रकार व्यवहार करते देखकर कुएँ पर पानी भरने वाली स्त्रियों में घबराहट फैल गई ; कुछ ने पानी भरा और कुछ बिना भरे ही वहाँ से चलने लगीं।

'ये ...ये तो सब चलीं—' नेरा बोला।

'जाने दे ।' उकता कर हमीर ने उत्तर दिया ।

'कि····कि····किन्तु तेरी अप्सरा तो आई नहीं ।'

'कौन जाने कब आयेगी, आयेगी भी अथवा नहीं ।'

'आ····ई ई ई । ठुमक—' कहकर नेरा ने एक युवती की ओर देखकर आँखें मींच दीं । वह युवती गर्व से ठुमककर रुक गई और क्रोध से पीछे घूमी ।

'क्या—हुआ ?' नेरा बोला ।

वह युवती घबराई और वैसे ही क्रोध से पीछे घूमी । सामने शिव-स्तुति करके मन्दिर से निकलते हुए मणिभद्र महाराज मिल गए । वह दुर्गपाल के एक आश्रित की पत्नी थी । अतः मणिभद्र को देखकर उसमें साहस आया; वह खड़ी हो गई । थोड़ी दूर पर लौटती हुई एक दो स्त्रियाँ भी खड़ी हो गईं ।

'भाई ! उधर दो हरामखोर बैठे हुए हैं उन्हें यहाँ से निकाल बाहर करो । वे हमारे साथ ठट्ठा कर रहे हैं ।'

'अच्छा ?' मणिभद्र ने कहा ।

'हाँ । देखो तो किसी को पानी भरने ही नहीं देते ।' दूर खड़ी हुई स्त्रियों में से एक ने निकट आकर कहा ।

'ठहरो, मैं अभी निकालता हूं ।' कहकर मणिभद्र धीरे-धीरे चबूतरे पर होकर पीछे की ओर गया । 'ऐ भाई ! कौन हो तुम लोग ? यहाँ किस काम से बैठे हो ?'

हमीर ने मणिभद्र को पहचान लिया और ओछे स्वर में पूछा—'ऐ महाराज, तू कहाँ से आ टपका ?'

'कौन आँबड़ भाई का गण, यहाँ कैसे बैठा है ? और इन सबकी हँसी क्यों उड़ा रहा है ?'

अपने स्वामी के सामने हमीर मणिभद्र का सम्मान करता था, किन्तु इस समय वह आपे से बाहर हो गया ।

'ऐ भूदेव ! तू अपना काम कर न, हमारे बीच में क्यों पड़ता

है ?' हमीर ने कहा।

'तुम इन सभी को छेड़ रहे हो इसलिए।'

'ब···ब्राह्मण ! यह सभी हमें छे···छे··· छेड़ती हैं सो ?' नेरा बोला।

साधारणतः मणिभद्र घी के समान नम्र था किन्तु भटराज काक का साला होने के कारण उसे अपने सम्मान की रक्षा करने के लिए विवश होना पड़ा।

'सावधान।' मणिभद्र क्रोधित होकर दहाड़ा, स्त्रियों के सम्मुख यदि निर्लज्जता दिखाई तो !

हमीर अधीर तो था ही, बड़ी कठिनाई से वह अपने आपको शांत रख रहा था; किन्तु इस बार वह फट पड़ा। वह एकदम उठा और मणिभद्र की कनपटी पकड़ कर कहा—'जाता है कि नहीं बामणा !'

हमीर की चौड़ी छाती और मणिभद्र के प्रति होता हुआ अन्याय देखकर स्त्रियाँ चीख-चीख कर भागने लगीं। नेरा खड़ा-खड़ा जोर-जोर से हँसने लगा।

मणिभद्र उबल पड़ा। उसने दांत कटकटा कर हमीर की नाक पर जोर से मुक्का चला दिया।

हमीर सशक्त योद्धा था। उसने धक्का मारकर मणिभद्र को चबूतरे के नीचे गिरा दिया और धरती पर खड़े हुए मणिभद्र को ठोकर मारने लगा। मुँह से गालियां भी देता जा रहा था और पीछे नेरा खड़ा-खड़ा जोर-जोर से हँस रहा था।

इस गड़बड़ से आस-पास के लोग इकठ्ठे हो गये।

भूमि में खड़े हुए मणिभद्र को हमीर ने तीसरी ठोकर मारी ही थी कि अविमुक्तेश्वर के दर्शन करके रेवापाल बाहर आया और उसकी दृष्टि भागती हुई स्त्रियों पर पड़ी। द्वार में खड़े, घबराए हुए नागरिकों को देखा, भूमि पर रौंदते हुए ब्राह्मण को देखा और विदेशी पट्टणी सैनिक को पद-प्रहार करते देखा।

उसकी कठोर मुख-मुद्रा और भी कठोर हो गई, उसकी आँखों में विजली चमक उठी और पलक मारते वह दौड़ पड़ा। उसके हाथ में तलवार चमक उठी और हमीर की टाँग इस प्रकार कटकर दो टुकड़े हो गई जिस प्रकार केला कटकर दो टूक हुआ हो। हमीर चक्कर खाकर भूमिसात् हो गया। दर्शकों में हाहाकार मच गया। नेरा पिछली गली से सिर पर पाँव रखकर भागा।

'महाराज, आप कौन हैं?' रेवापाल ने मणिभद्र से पूछा।

'बापू!' पिटाई से हांपते हुए मणिभद्र ने उत्तर दिया, 'दुर्गपाल महाराज के यहाँ रहता हूं।'

'अपने दुर्गपाल से कहना कि इन विदेशी हरामियों को घुसाकर क्या लाभ उठाया?' कड़वाहट से रेवापाल बोला—'और उसके सैनिकों से कहना कि इसे उठाकर मेरे यहाँ ले आएँ।'

'किस के यहाँ ?'

'तेजपाल नगरसेठ के यहाँ।'

इतना कहकर रेवापाल मन्दिर में चला गया।

१४

नेरा तोतला गली में बहुत दूर नहीं गया था, अतः जब गड़बड़ी कम हो गई तो वह धीरे-धीरे लौटकर आया और गर्दन लम्बी करके देखने लगा। रेवापाल को मन्दिर से दर्शन करके लौटते हुए देखकर उसमें साहस आया।

रेवापाल के अन्तिम शब्दों से वह समझ गया था कि आम्रभट नगरसेठ के यहाँ ही ठहरे होंगे। उसने सोच लिया था कि भट की पदवी तो हाथ से निकल चुकी किन्तु रेवापाल के अन्तिम शब्दों ने

उसमें पुनः आशा का संचार कर दिया। हमीर आम्रभट का विश्वासपात्र सैनिक था। उसकी रक्षा करने में निस्सन्देह आम्रभट प्रसन्न होंगे। अवसर भी है, और उसके जैसे समर्थ योद्धा को वह अपने ही पास रख लें यह भी सम्भव है। इतना यदि हो जाय तो फिर भट बनना तो बहुत ही सरल है। यह विचार कर उसने अपनी पगड़ी उतारकर एक पट्टी फाड़कर हमीर के कटे हुए पांव में बांधी और उस बेसुध सैनिक को कन्धे पर रख कर वह पिछले मार्ग से, स्थूल शरीर से जितनी गति बन सकती थी उससे, तेजपाल सेठ के निवास-स्थान की ओर चला।

उधर आम्रभट की अकुलाहट का पार नहीं था। अभी तेजपाल सेठ लौटे नहीं थे, रेवापाल का मुंह तक उसे अच्छा न लगता था किन्तु वह भी बाहर गया हुआ था। उदा मेहता का पुत्र और भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल इस प्रकार प्रतीक्षा करता रहे। घर में सिवा नौकरों के कोई आवभगत करने वाला न था—इस विचार से उसके आत्म-सम्मान को आघात पहुंचा। हमीर भी अब तक न लौटा था। साम्बा बृहस्पति के बाड़े में एक अलौकिक सुन्दरी की खोज कर लेना उसके विचार से एक साधारण बात थी, उस पर हमीर ने इतना समय लगा दिया इससे उसके क्रोध का पारावार न रहा।

वह तकिए के सहारे लेटा, झूले पर बैठा, खिड़की में खड़ा हुआ, किन्तु हमीर नहीं लौटा। अन्त में उस सुन्दरी के मुखारविन्द को अपनी आंखों के सामने लाने की चेष्टा की, किन्तु जैसे-जैसे धीरज घटता जाता था वैसे-वैसे यह चेष्टा भी निष्फल होती जाती थी।

अन्त में सोते-सोते वह अधीर होकर करवटें बदलने लगा।

'आ···आ···आम्रभट महाराज हैं ?' एक अपरिचित स्वर उसके कानों से टकराया। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और खिड़की से बाहर एक अत्यन्त मोटे पुरुष के कन्धों पर पड़े बेसुध हमीर को देखा। वह फीका पड़ गया। एकदम सीढ़ियां उतरकर वह सेरा के निकट गया।

'क्या हुआ ? कैसे हो गया ?' उसने अधीरता से पूछा।

नेरा समझ गया कि यही आम्रभट हैं। उसने हमीर को कंधे पर से उतारकर धरती पर लिटा दिया और झुक-झुककर प्रणाम करने लगा।

'भ भ··· भटजी महाराज की जय हो !' बा·· बापू ! मैं नेरा हूं—पाटण की सेना का।'

'हमीर को क्या हुआ ?'

नेरा को लगा कि यहां चतुराई से काम लेना अत्यन्त आवश्यक है। बात बनाकर उसे सत्य का रंग दे देने में तो वह कुशल था।

'म··· म··· महाराज ! लाट और पाटण के कुछ मनुष्यों में झगड़ा हो गया। ऐ··· ऐसा हुआ कि बस कुछ कहना नहीं ! बेचारा हमीर भाई उसकी लपेट में आ गया। म··· महाराज ! यह तो मैं जा पहुंचा नहीं तो हमीर भाई कभी के यम के द्वार पहुंच गए होते। हा-हा-हा।' वह बड़ा प्रसन्न होकर हंसते मुंह खड़ा रहा।

आम्रभट की भवें तन गईं। उसकी आंखों में रक्त उभर आया।

'लाट के सैनिकों ने मेरे हमीर पर हाथ उठाया ?' उसने क्रोधित होकर पूछा।

'बा··· बा··· पू, हंसी-हंसी में निरर्थक ही, बस हंसते बोलते ही बात बढ़ गई।'

'कहाँ ?'

'सां··· सां··· बा—' नेरा इतना ही बोल पाया।

'सांबा बृहस्पति के बाड़े में ?' मुट्ठी भींच कर आम्रभट ने प्रश्न किया।

'व··· व··· हीं··· तनिक दूर··· नगर के उस ओर।

'सावधान, झूठ बोला तो !' पांव पटककर आम्रभट बोला, 'मेरे सैनिक पर किसने हाथ उठाया ?'

'बा··· बापू' नेरा ने हाथ जोड़कर कहा।

'उत्तर दे, किसने हाथ उठाया ?'

अन्दर आते हुए रेवापाल का कठोर स्वर आया—'मैंने।'

बेचारा नेरा कांपकर दो पग पीछे हट गया। आम्रभट चकित हो गया। प्रातःकाल वह रेवापाल को समझ नहीं पाया था; और इस समय उसके मुँह से ये शब्द सुनकर उसकी क्रोधी प्रकृति को आघात-सा लगा। इस शांत और कम बोलने वाले पुरुष के रूखेपन से उसे क्षोभ होता था।

'तुमने ?'

नेरा रेवापाल को देखकर मुँह बाए दूर खिसकने लगा।

'हाँ।'

'क्यों ?'

'आपके सैनिक ने एक ब्राह्मण का अपमान किया था। कहकर रेवापाल जाने को उद्यत हुआ। आम्रभट के अन्तर में ज्वाला भभक उठी। उदा मेहता का पुत्र, भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल; और अपमान भर कर देने के कारण उसके सैनिक की यह दशा ! वह वेग से रेवापाल के पास गया और मार्ग रोककर उसके सामने खड़ा हो गया।

रेवापाल ने शांति से कुछ समय तक कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर तिरस्कार से कहा—'आम्रभट जी ! मुझसे भिड़ने से कोई लाभ नहीं होगा।' आम्रभट समझ न पाया कि क्या कहे। ऐसा मालूम होता था मानो निष्फल क्रोध के कारण उसके मुँह में झाग भर आयेंगे।

'जानते हो तुमने मेरे''''मेरे''''नौकर की टाँग काट दी।' कुछ समय पश्चात् वह बोला।

'पांव ?' रेवापाल ने कठोर और अपमान भरे स्वर में कहा 'पट्टणी उच्छृंखल बनेंगे तो सिर भी काटना पड़ेगा।' रेवापाल के होंठ और भी कठोर हो गए।

आम्रभट ने चारों ओर रक्त-पिपासित दृष्टि से देखा। उसे ध्यान

आया कि उसके हाथ में हथियार भी नहीं है। लाट के नगरसेठ के पुत्र के साथ संभलकर व्यवहार करने की उनके पिता की चेतावनी स्मरण आई; वह कुछ ठंडा पड़ा।

'भटजी' रेवापाल ने बात पूरी की, आप मेरे पिता के अतिथि हैं; मेरा मार्ग छोड़ दीजिए।'

आम्रभट को कुछ भी न सूझ पड़ा। अन्त में वह बोला, 'मैं लाट का दुर्गपाल हूं। मैं तुम्हारी धमकियों से डरूँगा नहीं।'

'पाटण के दुर्गपाल की धमकी में भूलूँगा नहीं।' चमकती हुई आँखों से रेवापाल ने कहा और तिरस्कार से आगे बढ़ गया। आगे बढ़ कर जैसे ही वह घूमा वैसे ही उसे और आम्रभट, दोनों को एक साथ ही चुपचाप खड़ा सुनता हुआ काक दिखाई पड़ा। उसका मुख गम्भीर था।

'रेवा भाई !' उसने बड़ी मिठास से पूछा, 'क्या हुआ ?'

'भटराज !' आम्रभट शीघ्रता से बोला। उसमें साहस का संचार हुआ।

भृगुकच्छ आते ही मेरा—मेरे पाटण का अपमान हुआ है। मेरे हमीर का पाँव काट डाला !'

'रेवा भाई ने।'

'हाँ। यह आपमान मैं कैसे सहन कर लूं ?' उछलकर लौटते हुए क्रोध से आम्रभट ने कहा। काक ने दृष्टि फेरकर रेवापाल को देखा।

'पूछो अपने मुहल्ले की स्त्रियों से और अपने मणिभद्र से !' तिरस्कार से रेवापाल बोला।

काक की आँखें दमक उठीं। आम्रभट फीका पड़ा। उसे नेरा की बात याद आई। अवश्य उस स्त्री की खोज करते हुए ही हमीर को यह शिक्षा मिली है। तुरन्त उसने इस सबको ढंक देने का निश्चय किया। पूछा, 'हैं ?'

अनायास ही काक की दृष्टि नेरा तोतले पर पड़ी। उसने कठोरता

से पूछा, 'तू वहाँ क्या कर रहा है ?'

नेरा काँप उठा। वह दुर्गपाल से भलि भाँति परिचित था। उसने हाथ जोड़ लिए, 'बा····बा····पू, म····म—'

'भटराज !' आम्रभट ने कहा, हमीर को उठाकर यही लाया है।' काक ने रेवापाल की ओर देखा।

'यह भी वहीं था।' उसने उत्तर दिया।

एक छलाँग मारकर काक नेरा के निकट गया और उसका कान पकड़कर मसल दिया।

'नेरा !' काक ने पूछा, 'क्या हुआ था ?'

बा····पू !' उसने निःसहाय सी दृष्टि से आम्रभट की ओर देखा। किन्तु उधर से कुछ होता न देखकर पुनः काक की ओर देखा। काक की आँखों में अंगार भड़क रहे थे।

'म····म····महाराज !' नेरा बोला, 'हमीरभट ने····। एक ब्राह्मण को ठो····ठो···· ठोकर मारी और रे····रेवा भाई ने उसकी टांग काट दी।

'ठोकर क्यों मारी ?'

'ब्राह्मण ने हमीर को गाली दी।'

काक ने कठोर होकर रेवापाल की ओर देखा।

'रेवाभाई ! क्या सच्ची बात है ?'

'हमीर पानी भरनेवालियों के साथ ठट्ठा कर रहा था।'

आम्रभट का हृदय कांप उठा।

'और तू भी ?' काक ने नेरा से प्रश्न किया।

'नहीं—नहीं—नहीं—बा—।'

'नेरा !' काक की वाणी में भरी रौद्रता से आम्रभट भी सहम गया। 'जो फिर मेरे हाथ पड़ा तो यह सिर धड़ पर नहीं रहने का। सोमेश्वर है !'

'जी।' कहकर बाहर खड़ा हुआ सुभट अन्दर आया।

'इस बदजात को लात मार बाहर निकाल दो।'

'जो आज्ञा !' कह सोमेश्वर ने आँखों से ही नेरा को आज्ञा दी। नेरा धीरे-धीरे बाहर चला गया।

'भटराज !' धीरे से आम्रभट ने काक से कहा,'इस बिचारे को—'

काक आम्रभट की ओर घूमा, 'आम्रभट, मालूम है यह कौन है ? वह पाटण का नीच-से-नीच सैनिक है।'

'किन्तु मेरे हमीर को यही लाया था'।'

'नहीं लाता तो क्या कोई अनर्थ हो जाता। रेवा भाई ने तो टांग काटी; मैं होता तो सिर काट देता।'

आम्रभट कुछ भी न बोल सका। काक कुछ नरम पड़ा, 'भाई ! इस देश में तुम विदेशी हो। यहां के लोगों में ऐसी दुर्भावना न फैलने देनी चाहिये।'

रेवापाल ने तिरस्कार से एक बार काक की ओर देखा और घर में चला गया। काक आम्रभट को लेकर ऊपर गया।

'आम्रभट ! प्रस्थान करने से पहले एक सलाह दूं ?'

'हां !' लज्जित होकर आम्रभट बोला।

'लाट और गुजरात भिन्न हैं, यह बात यहाँ के लोगों के हृदय से निकाल देनी है। नहीं तो···।'

'नहीं तो····?'

'नहीं तो ! तुम्हें मालूम नहीं कि त्र्यंबसेन के अनुयायी केवल अवसर की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं।'

'क्या कह रहे हैं आप ?' हँसकर आम्रभट बोला।

काक के मुख पर रुद्रलिंग जैसी गम्भीरता छा गई।

'आवड़ भाई, ऐसी बातों में हँसोगे तो किसी दिन पाटण को रोना पड़ेगा। तुमने आज तो रेवा भाई का अपमान किया। यह एक गलत काम है। जानते हो यह कौन है।'

'हां।'

'नहीं, तुम नहीं जानते। जानते होते तो इतनी छोटी-सी बात पर इससे

भिड़ न पड़ते। आम्रभट ! यह जितना सीधा है उतना निर्जीव नहीं है। लाट की राजसत्ता अवश्य जयसिंहदेव महाराज के हाथ में है; किन्तु उसकी आत्मा और उसका उत्साह दोनों रेवापाल में निहित हैं। वह लाट के गौरव का अवतार माना जाता है। इसका अपमान होने पर सम्पूर्ण देश गरज उठेगा।'

'इसका अर्थ यह हुआ कि यह पाटण का शत्रु है ?'

'चाहो तो यही मान लो। किन्तु उसे छेड़ने जाओगे तो लाट खो बैठोगे। इससे बिगाड़ना मत। नहीं तो इतने वर्षों का सब किया-कराया धूल में मिल जायगा।' काक ने कहा, 'अब मैं जाऊँगा। तुम्हें और नगरसेठ को मेरे यहाँ भोजन करना है इसलिए नगरसेठ के आते ही चले आना।'

१५

काक ने अपनी स्वाभाविक विचक्षणता से अनुभवहीन आम्रभट का लड़कपन और अपना और रेवापाल का तिरस्कार देख लिया था। उसके भृगुकच्छ छोड़ देने पर पीछे क्या-क्या होगा उसकी एक हल्की झांकी उसे प्रस्थान से पूर्व ही दिखाई दे गई। उसके दूरदर्शी मस्तिष्क में एक चिंता घर कर गयी।

इस चिंता ने एक भयंकर चित्र उसकी चेतना में चित्रित कर दिया, और उसे देखकर वह कांप गया। वह मंजरी को यहां अकेली छोड़कर जा रहा था। वह मर जाय या लाट में विद्रोह की आंधी आ जाय तो उसका क्या होगा ? उदा मेहता के हाथों कड़ुए अनुभवों का आस्वादन उसके सम्मुख आ गया। बेचारी को पुनः वैसा ही सहन करना पड़े तो कौन इसकी सहायता करेगा ?

आम्रभट को या पट्टणी भटराज माधव को सौंपना सम्भव नहीं था; और लाट में ऐसा कोई भी न था कि विपत्ति के समय उसकी पत्नी को आश्रय दे सके।

क्षण-भर के लिए काक की आंखों के सामने अँधेरा छा गया। वर्षों तक उसने न जाने कितने आदर्शों का पालन किया था, और उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेकों कठिनाइयां झेलीं थीं। इस समय तो इन सबके फल मीठे ही लग रहे थे। उसकी प्रियतमा सुख से जीवन-यापन कर रही थी; उसका लाट देश परतन्त्र होने पर भी गौरवशाली था, उसके स्वामी जयसिंहदेव की आन के साथ ही साथ उसकी ख्याति भी चारों दिशाओं में फैल गयी थी।

परन्तु यह सब इस समय अवास्तविक लगने लगा। सोरठ जाकर यदि कहीं वह बन्दी बना लिया जाय या प्राण से हाथ धो बैठे तो मंजरी तो दुःखी और निराधार हो ही जायगी, साथ ही लाट में दंगे, क्लेश, अनीति, विजेता की क्रूरता और पराजित के दुःख पुनः उमड़ पड़ेंगे और 'फूलखरणी' के जलने के बाद जैसे उसकी राख मात्र धूल में मिलती है वही दशा उसकी अपनी कीर्ति की हो सकती है। ऐसे परिणाम की समस्त सामग्री इस समय तैयार थी। जयसिंहदेव को उससे द्वेष था; उदा इस समय राजा का विश्वासपात्र बनकर वैर का बदला लेने के अवसर की ताक में था; विनाश के छोर पर पहुंची राणकदेवी उसे हारते हुए का सहायक बनने का निमन्त्रण दे रही थी। यहाँ से वह जा रहा था और लाट की समस्त समस्यायें आम्रभट जैसे अभिमानी, अनुभवहीन, मूर्ख व्यक्ति के हाथों में छोड़नी पड़ रही थी।

पल-भर के लिए उसके साहसी हृदय में निराशा भर गई, और जयसिंहदेव की आज्ञा का अनादर करने की बात मन में आई। दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि भृगुकच्छ से जाने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही नहीं है।

वह लौट पड़ा और पुनः नगरसेठ की हवेली के भीतर चला गया।

'रेवा भाई ऊपर हैं ?' उसने एक सेविका स्त्री से पूछा ।

'हां । थोड़ी ही देर हुई कमरे में गये हैं ।'

बचपन में उसने और रेवापाल ने सम्पूर्ण घर खोद मारा था इस-लिए वह तुरन्त रेवापाल के कमरे की ओर चला गया । रेवापाल का कमरा सबसे दूर घर के छोर पर था ।

उसने सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते आवाज दी, 'रेवाभाई !' कोई उत्तर नहीं आया । काक लपककर कमरे में गया तो देखा कि वहां वह नहीं था । उसने गर्दन लम्बी कर द्वार के बाहर देखा तो भी कोई दिखाई न पड़ा । उसने फिर आवाज दी किन्तु कोई उत्तर नहीं आया ।

काक विस्मय में पड़ गया । रेवापाल घर के लोगों में बहुत बैठता बोलता नहीं था । द्वार से बाहर भी निकला नहीं था । फिर भी, उस दुपट्टा और उसकी पगड़ी कमरे में नहीं थे ।

काक पीछे की खुली हुई खिड़की की ओर गया और चकित हो उठा । पीछे की ओर उतरने के लिए एक सीढ़ी रखी हुई थी । वह लुकता-छिपता खिड़की के निकट गया और बाहर देखा ।

इस पीछे के छोटे-से बाड़े में कुछ वृक्ष थे और गौशाला के रूप में उसका उपयोग होता था । काक ने ध्यान से सुना—एक दो व्यक्ति चुपचाप वार्तालाप करते हुए सुनाई दिए । रेवापाल की आवाज भी सुनाई दी । यदि वह भृगुकच्छ में न होता अथवा वहां का दुर्गपाल न होता तो आगे बढ़कर यह निश्चय कर लेता कि रेवापाल किससे बातें कर रहा है । इस समय आगे बढ़ने से लाभ न होगा, यह वह जानता था । इतना तो स्पष्ट था कि किसी सबल कारण के बिना रेवापाल जैसा मनुष्य इस प्रकार पीछे के मार्ग से जाकर बात नहीं करेगा । ऐसा लगता था कि रेवापाल ने कोई दांव खेलना प्रारम्भ किया है । पाटण की सत्ता नष्ट करने के सिवा और कोई दाँव रेवापाल खेले, ऐसी सम्भा-वना तो थी ही नहीं । इतने में पीछे से पगध्वनि सुनाई दी । काक सावधान हो गया और द्वार की ओर बढ़ा । द्वार तक पहुंचने पर

एक स्त्री मिली।

'वेनां भाभी!'

रेवापाल की पत्नी वेनां चौंकी; 'कौन काक! तू—अरे तुम यहां?'

'हाँ मैं ही!' काक हँसकर बोला, यह घर कहीं छूट सकता है!'

वेनां पतली और लम्बी थी। रेवापाल की रूपक, घर संसार की नौका पर बैठकर वह बेचारी सहनशील और एकनिष्ठ बन गई थी। जितना असातुरी रेवापाल था उतनी ही वह भी थी। उसने प्रेम और आदर, राग-रंग, इच्छा-तृष्णा आदि सभी कुछ स्वेच्छा से भुला दिए। पति की सेवा-भर के लिए वह जीवित थी। कई दिनों तक रेवापाल उससे नहीं बोलता था और न वह ही बोलने का प्रयत्न करती थी। यदि घण्टों तक रेवापाल न सो पाता तो वह बिना पलक झुकाए पलंग के पाए के पास बैठी रहती थी। कई बार रेवापाल उपवास करता तो वेनां भी अन्न-जल का त्याग कर देती। जब से जंबुसर गिरा तब से रेवापाल ने काक से मिलना-जुलना बन्द कर दिया था और तब से वेनां ने भी काक से बोलना बन्द कर दिया था। इस समय वेनां चौंक उठी और उसके न बोलने का व्रत भंग हो गया।

'कैसे आना हुआ?'

'हाय रे दुर्भाग्य! सोचा भी न था कि ऐसे प्रश्न का भी कभी उत्तर देना पड़ेगा!' खैर, इसलिए आया हूं कि मुझे भाई से और तुमसे भेंट करनी थी।'

'मुझसे? करुण हंसी हंसकर वेनां बोली।

'हां! अच्छा हुआ भेंट हो गई। तुम्हारी बहन को तुम्हारे हाथों सौंपना है।'

'मेरे हाथों? भला मैं क्या कर सकती हू? और तुम ⋯।'

'मैं सोरठ जा रहा हूं। इसलिए मंजरी को भाई भावज को सौंपना है।'

बेनां ने गर्दन हिलाई—'मैं कुछ नहीं जानती। तुम जानो और तुम्हारे भाई जानें।'

किन्तु भाई हैं कहां? इसलिए तो मैं आया हूं। अभी वह कहां मिलेंगे?'

तुम कब जाओगे?'

'कल। आज संध्या को मिल सकेंगे?'

'संध्या को तो दर्शन करने जायेंगे।

'गंगानाथ महादेव पर ध्रुवसेन सेनापति के दर्शन करने जाते हैं न? यही ठीक है। कहना संध्या को उनसे वहीं मिलूंगा। मैंने जो कहा वह कहोगी न?'

'यदि वे पूछेंगे तो? नहीं तो, नहीं।'

काक इस स्त्री की त्यागवृत्ति पर विचार करने लगा और चुपचाप प्रणाम कर विदा हुआ। आने वाली विपत्ति के तारों की अस्पष्ट झंकार उसके कानों से टकराने लगी।

१६

बहुत बेचैन हो गया आम्रभट। न जाने कैसे-कैसे आनन्द उठाने की इच्छा लेकर वह भृगुकच्छ आया था; किन्तु यहां तो पांव धरते ही ठोकर खाई, अपमान उठाया और हृदय भी कोई अपरिचित हर ले गई। अब तक की आयु में इतने दुःखों की इतनी लम्बी परम्परा का अनुभव उसने नहीं किया था।

इतने में नगर सेठ आ गये।

'अहा हा, मेरे खँभात के मंत्री के चिरंजीव!' तेजपाल सेठ ने कटाक्ष-भरी आवाज में कहा, 'मेरे तो भाग्य खुल गए। उन्होंने आम्रभट

का आलिंगन किया, मुझे तो प्रातःकाल ही से लग रहा था कि आज मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। कहो, उदा मेहता की कृपा तो है न ?'

आम्रभट की समझ में यह व्यक्ति भी नहीं आया। उसके शब्द मिश्री जैसे थे। परन्तु उसकी वाणी में स्पष्ट कटाक्ष था। वह गम्भीर बात कर रहा है या ठट्ठा कर रहा है यह भी उसके मुख से समझा नहीं जा सकता था। वह एक कानी आंख के कोने से बराबर आम्रभट को देख रहा था।

'अरे ए शंकर !' जैसे चिढ़कर उन्होंने अपने दास को पुकारा, 'भटजी की कुछ आवभगत की ? भुखमरे गांव के दासों में एक कौड़ी की भी तो समझ नहीं होती। जाने कैसे अवकाश के समय में बनाए गए थे। कहिए, भट जी चित्त तो प्रसन्न है ? खेद है हमारे यहां तो पाटण जैसे आनन्द नहीं हैं।'

मुझे तो आपका भृगुकच्छ बहुत भाया।'

'अजी पाटण की बराबरी कहां ?' काक भटजी तो आज चले। इनके भी पांव में भंवरी लगी है।' नगरसेठ ने कहा।

'हां उन्हें महाराज ने बुलाया है।'

'क्यों नहीं ?' तेजपाल ने पुनः अस्पष्ट से स्वर में कहा, 'ऐसे व्यक्ति महाराज के निकट न हों तो कहां हों, महाराज की कीर्ति भी तो कितनी है। संसार में मनुष्य से लेकर पशु तक उन्हीं का कीर्ति-गान किया करते हैं।

आम्रभट देखता रहा। फिर कहा, 'हां।'

'चलो अब स्नान कर लो। दुर्गपाल के यहां आज बहुत समय लगेगा। मैंने तो प्रातःकाल ही स्नान कर लिया था। शीघ्रता करो, नहीं बेचारे ब्राह्मण के घर का अन्न ठण्डा हो जायेगा।

इस तीक्ष्ण वाणी के प्रसाद का आस्वादन कर भौंचक्का सा आम्रभट नहा-धोकर तैयार हुआ और नगरसेठ के साथ पालकी में बैठकर दुर्गपाल के निवासस्थान के लिए चला।

सान्ध्या बृहस्पति के बाड़े से निकलते समय आम्रभट का चित्त प्रातःकाल वाली रमणी में रम गया और नगरसेठ की बातों में उसका ध्यान न रहा। यह अद्भुत रमणी कौन होगी ? किसके घर की शोभा होगी ? उसके नयनों को पुनः तृप्त कब करेगी ?

एकाएक ज्योंही पालकी ने बाड़े में प्रवेश किया त्योंही आम्रभट का श्वास ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे रह गया। दो नन्हें बच्चे दौड़कर निकट के एक घर में प्रवेश कर रहे थे। उनमें से एक लड़की की एडी पर जाकर उसकी दृष्टि ठहर गई। उसे प्रातःकाल मन्दिर के निकट देखी एड़ियों का स्मरण हो आया। दुर्गपाल के घर में देखी एड़ियां भी याद आईं। अब फिर वही एड़ियां—सुन्दर गुलाबी और चितभेदक ! एड़ियों से उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। इन एड़ियों में से एक रूपवती कन्या अंकुरित हो रही थी। 'आश्चर्य !' उसकी आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। किस प्रकार उस सुन्दरी ने उसका हृदय हर लिया था कि जहां देखो वहीं वैसी ही छवि दृष्टिगोचर होती थी।

इतने में काक का निवासस्थान आ गया। पालकी से नीचे उतरते ही काक और भटराज माधव से उनकी भेंट हुई। माधव नागर दादाक मेहता का भतीजा था और बहुत वर्षों से त्रिभुवनपाल का मित्र और सेवक था।

राज्यकार्य भार की, भृगुकच्छ के उपद्रव की ध्रुवसेन के समर्थकों की, पाटण की राजनीति और खेंगार की पराजय की बातें हुईं। सबने भोजन किया। वापस घर लौटने का समय हुआ। किन्तु आम्रभट का चित्त इन सब बातों में नहीं था वह तो उस सुन्दरी में अटका हुआ था। इन्हीं एक दो मोहल्लों में कहीं वह रहती थी, इतनी निकट और फिर भी इतनी दूर और अप्राप्य ! उसे खोजने के काम को छोड़कर राज्य प्रपंचों में उसका जी लगे भी तो कैसे ?

अतिथि विदा हुए; काक फिर आम्रभट की मूर्खता, अभिमान और अपरिपक्वता पर सोचने लगा।

जिस समय भृगुकच्छ का दुर्गपाल काक चिन्ताग्रस्त हो रेवापाल से भेंट करने गंगानाथ महादेव जाने का विचार कर रहा था, उसी समय रेवापाल महादेव मंदिर के पार्श्व में स्थित एक झोंपड़ी के द्वार के सामने बैठा हुआ था।

झोंपड़ी के अन्दर ब्रह्मानन्द सरस्वती ध्यान में लीन थे। रेवापाल अधीर होता जा रहा था; नदी की तरंगों को एकाग्र होकर देखती हुई उसकी आंखें बार-बार द्वार की ओर घूम जाती थीं। उसके मुख की रेखाएं कुछ अधिक कठोर हो गई थीं, उसके श्वासोच्छ्वास की अनियमितता उसके अन्तर के क्षोभ की साक्षी थी।

झोंपड़ी में पगध्वनि सुनकर रेवापाल उठ कर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में द्वार खुले और एक वृद्ध संन्यासी बाहर आया।

'बेटा रेवा! आज इतना उद्विग्न क्यों है रे?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

ब्रह्मानन्द के दांत गिरने लगे थे और त्वचा झलने लगी थी। किन्तु उनकी आंखें निस्तेज नहीं थीं; और उनके स्नायु का बल भी विशेष कम नहीं हुआ था। यही संन्यासी पूर्वाश्रम में ध्रुवसेन सेनापति थे। इस समय कोई उन्हें देखकर यह कल्पना भी न कर सकता था कि कभी इनकी एक हुंकार से पाटण और धारा के सेनापति कांप उठते थे। रेवापाल ने साष्टांग प्रणाम करके झोंपड़ी में प्रवेश किया।

'बैठो, बेटा!' ब्रह्मानन्द ने कहा।

'जी।' तनिक कांपती हुई वाणी में रेवापाल बोला, 'महाराज' द्वार बन्द कर दूं?'

'अवश्य।' रेवापाल ने द्वार बन्द कर दिया।

'गुरुदेव! आज इतने वर्षों पश्चात् आज्ञा मांगने आया हूं।'

'किस बात की?'

'अपने हृदय की अग्नि बुझाने की।'

'तो इसमें आज्ञा किस बात की ? रेवा ! तेरे अन्तर को शान्ति प्राप्त हो यही प्रार्थना तो मैं नित्य किया करता हूं।'

'गुरुदेव ! आप मुझे समझे नहीं। आप चाहते हैं वैसी शान्ति मैं नहीं चाहता।'

'तो ?'

'पट्टणी वापस जायें तभी मुझे शान्ति प्राप्त हो सकेगी।'

'अब तक तू यह भूला नहीं ? रेवा ! कितनी बार कहूं ? मृणालकुंवरि का पाटण से गठबन्धन हुआ तभी से पाटण हमारा स्वामी हो गया। अब इतने वर्षों पश्चात् हो भी क्या सकता है ?'

'गुरुदेव ! आप भी इस प्रकार निराश हो जायेंगे तो—।'

'भाई, जहाँ तक आशा की एक भी किरण चमकती रही, मैं अडिग रहा। किन्तु अब आशा रखना विक्षिप्तता है।'

आवेश के वेग से रेवापाल ने आंखें मींच लीं। उसके होंठ तनकर कठोर हो गए।

'गुरुदेव ! आपने संसार त्याग दिया इसीलिए विक्षिप्तता लगती है, किन्तु आज जैसा अवसर पुनः लौटकर नहीं आने का।'

'अवसर है—मुझे तो ऐसा विश्वास नहीं होता।'

'न हो, अवसर न भी हो तो अब मैं थक गया हूं, मुझसे अब वह सब सहन नहीं होता, देखा नहीं जाता। अब तो ऐसा लगता है कि या तो मैं मिट जाऊँ या पट्टणियों को मिटा दूं।' आंखों से आंसू पोंछते हुए रेवापाल ने कहा।

'क्यों बात क्या है ?' तनिक आतुरता से ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'गुरुदेव ! जिधर दृष्टि जाती है, लाट की आन और सुख को नष्ट होते हुए देखता हूं। आज भी एक बात हो गई। अविमुक्तेश्वर के देवल के सामने दो पट्टणियों को मैंने स्त्रियों की हँसी उड़ाते हुए देखा। एक सैनिक के हाथों एक पवित्र ब्राह्मण को अपमानित होते देखा। ऐसा आज ही हुआ हो यह बात नहीं, प्रतिदिन कुछ-न-कुछ होता ही

रहता है। अधमता की भी सीमा होती है। निश्चय ही नरक भी इससे अधिक भयंकर नहीं होगा।'

'काक क्या करता रहता है ?'

काक क्या कर सकता है ? वह तो एक खिलौना है। वह समझता है उसकी चलती है, किन्तु उसकी पीठ फिरते ही अनेक अत्याचार होने लग जाते हैं। और फिर वह भी कल जा रहा है।'

'कहाँ ?'

'वनस्थली। उसके महाराज की आज्ञा है। और लाट की सत्ता किसके हाथ सौंप जायगा, यह भी सम्भवतः आप नहीं जानते होंगे ?'

'नहीं।'

'एक मंत्री का पुत्र है। न उसमें बुद्धि है, न व्यवहार-कुशलता, और न शौर्य ! उसके आधीन रहने से कट मरना ही अधिक श्रेयस्कर है इसीलिए मैं कहता था कि अवसर बहुत अच्छा है।'

'वह ठहरा कहाँ है ?'

'मेरे यहाँ।' पिताजी तो उससे बहन का पाणि-ग्रहण करना चाहते हैं।'

'अच्छा ?'

'हाँ। परन्तु मेरा बस चलेगा तो आंबड़ मेहता जैसा आया है, वैसा बचकर नहीं जाने पायेगा। गुरुदेव ! सोचिए ! भोलानाथ ने हमें कितना अच्छा अवसर प्रदान किया है। त्रिभुवनपाल नहीं, काक नहीं, पट्टणी सेना नाम-मात्र की है, और आंबड़ और माधव जैसों के हाथ में रहेगी लाट की सत्ता ! गुरुदेव ! आपकी एक हुंकार से लाट फिर हमारे हाथ में आ जायगा।' आतुरता से ब्रह्मानन्द की ओर देखते हुए रेवापाल बोला, 'गुरुदेव ! सोचिए तो पद्मनाभ महाराज की लाट आज कुचली रौंदी जा रही है। निराधार लाट को आप सहायता प्रदान न करेंगे तो कौन करेगा ?'

'वत्स ! मैंने तो सन्यास ले लिया है, इसलिए मेरी तो बात छोड़

ही दो । और तू जो आँधी खड़ी करना चाहता है उसमें मुझे समझदारी नहीं दिखाई पड़ती ।' ब्रह्मानन्द ने गर्दन हिलाते हुए कहा ।

'तो क्या बैठा रहूं ? गुरुदेव ! एक हजार योद्धा तत्पर हैं, पन्द्रह दिन में पाँच हजार पदाति भृगुकच्छ आ पहुंचेंगे ।' तनिक धीमी आवाज में रेवापाल ने रहस्योद्घाटन किया ।

'क्या कर रहा है ?'

'यूं तो पन्द्रह दिन से मुझे थोड़ी-बहुत सूचना थी । जैसे ही आज आम्रभट आया मैंने समझ लिया कि इस अवसर पर चूकना नहीं चाहिए । मैंने चारों ओर आदमी भेज दिये हैं । अक्षयतृतीया के पहले ही भृगुकच्छ से मांडवी तक का प्रदेश हमारे अधिकार में आ जायगा ।' धीमी किन्तु उत्साह-भरी आवाज में रेवापाल बोला ।

'तूने तो सब कुछ आरम्भ कर दिया है ।'

'हाँ । किन्तु आपकी आज्ञा के बिना आगे नही बढ़ सकूंगा ।'

'बेटा ! तू जो करे उसमें तुझे विजय प्राप्त हो यही मेरी कामना है ।'

'देव ! इस समय तो यही आशीर्वाद दीजिये कि या तो विजय प्राप्त करूं, या देह त्याग करूं ।'

'रेवापाल ! ऐसी एकनिष्ठा वाले को विजय ही प्राप्त होती है ।'

रेवापाल एकाग्र दृष्टि से देख रहा था ।

'देव ! एक याचना है ।'

'बोल ।'

'आप जोगिया वस्त्र त्याग दीजिये ।'

ब्रह्मानन्द चौंक कर पीछे हट गये ।

'क्यों ?'

'देव ! ध्रुवसेन सेनापति के बिना समूचे लाट का शौर्य निरर्थक है । किसके नाम पर हम छाती ठोंक कर खड़े होंगे ? किसके वचन हमें मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उत्साहित करेंगे ?'

'रेवा !' आपने ही तो कहा था कि अपने ही हाथों गंवाये हुए लाट

में आपके लिए कोई स्थान नहीं है। तो महाराज ! ग्रहण कीजिए अपना स्थान और फिर से लाट को हस्तगत कीजिए। एक बार फिर निकल पड़िए, एक बार फिर अपने धनुष की टंकार से लाट गुंजा दीजिए।'

'बेटा, तेरे वचन मेरे मन को ललचा अवश्य रहे हैं।'

'तो कहिए—आयेंगे ? अक्षयतृतीया को जोगिया त्याग करेंगे ?'

'नहीं।'

'देव ! आपके मुख नहीं।'

कुछ समय तक ब्रह्मानन्द चुप रहे।

'रेवा ! एक वचन देता हूं।'

'क्या ?'

'तुझे यदि मेरी आवश्यकता जान पड़े, मेरे न रहने से ही यदि तेरा प्रयास धूल में मिल रहा हो तो सन्देश भेज देना। जोगिया त्याग कर चला आऊंगा। अब तो ठीक है ?' तनिक हँसकर ध्रुवसेन बोला।

रेवापाल ने झुककर ब्रह्मानन्द के चरणों पर अपना माथा टेक दिया। किसी अन्य रीति से वह अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं कर सका।

गुरु ने शिष्य के माथे पर हाथ रखा। कुछ समय तक दोनों मौन रहे।

'देव ! एक कृपा कीजिएगा ?' रेवापाल ने प्रश्न किया।

'कह बेटा।'

'अपना पद्मविजय देंगे ?'

'अवश्य ! तुम्हारे सिवा और कौन योद्धा उसका उपयोग कर सकता है ?'

'देव ! हंसी-हंसी में ही उस धनुष को पद्मविजय नाम दिया था, याद है ? जहां उसकी टंकार होगी वहां विजय निश्चित है।'

'बेटा ! वह उस अटारी पर रखा है, ले ले। और जब मेरी आवश्यकता हो तो इसकी कमान का फुंदना निस्संकोच मेरे पास भिजवा देना। पद्मनाभ महाराज की पटरानी ने उसे बांधा था।' रेवापाल उठा

और नीचे की अटारी में रखा धनुष खींचकर निकाला; दुपट्टे से झाड़ कर साफ किया और फिर भूमि पर रख कर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह पहले जैसी ही दशा में था।'

'सचमुच यह अद्भुत है।'

'बेटा! गंगानाथ महादेव की कृपा है। जा अब, विजय लाभ कर।'

रेवापाल ने पुनः दण्डवत् प्रणाम किया, ब्रह्मानन्द सरस्वती ने मौन रह कर ही आशीर्वाद दिया। दोनों चुपचाप किन्तु भारी हृदय से विदा हुए। दोनों को लग रहा था कि आज विधि उनके जीवन का नया पृष्ठ खोल रही है।

१८

रेवापाल झोंपड़ी से बाहर निकला तो उस समय संध्या हो चली थी। ढलते हुए सूरज का प्रकाश और भीने अंधेरे आकाश में संवरण करते तारागण रेवा के तेज को गाम्भीर्य का पुट दे रहे थे। भक्त जैसी तल्लीनता से वह नर्मदा के शांत तट को देख रहा था. विचारमग्नावस्था में धीरे-धीरे वह छत पर गया।

आज उसके हृदय का भार हल्का हो गया था। निराशा के कुम्हलाये हुए उसके हृदय में आशा का नूतन उल्लास जाग उठा था। वर्षों की दबी हुई आकांक्षाएँ आज पूर्ण होती दीख रही थीं। लाट की स्वतन्त्रता के लिए एक भयंकर युद्ध करना ही उसके जीवन का उद्देश्य था, वह उद्देश्य आज पूर्ति के शिखर की ओर अग्रसर हुआ था।

जम्बूसर गिरने के पश्चात् भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा उसने क्षण-मात्र के लिए भी न त्यागी थी। लाट की गृहदशा में कभी

उसे विश्वास था, अतः उसे पट्टणियों को लाट से बाहर निकाल देना कभी भी असम्भव नहीं लगा । बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में और बड़े-बड़े कष्ट उठाकर पाल-पोसकर बड़ी की हुई यह आशा आज सिद्धि के निकट थी ।

मन में इस आशा को संजोये हुए भी व्यवहार-कुशलता वह नहीं भूला था । सम्पूर्ण लाट पर उसकी दृष्टि थी, चारों ओर के उपद्रवी और असन्तुष्ट योद्धाओं से उसका सम्बन्ध था और उसकी एकनिष्ठा और देशभक्ति के कारण लाट में उसका सम्मान था क्योंकि ध्रुवसेन के संन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् लोगों की आंखों में वही वह था ।

नर्मदा की तरंगों की ओर वह देख रहा था । मन-ही-मन उसने इस जागृत योगमाया को अर्घ्य अर्पण किया और आशीर्वाद की याचना की । । उसे लगा कि उन तरंगों से प्रगट होती हुई माता के काल्पनिक कर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं ।

अर्द्ध सुप्तावस्था में वह पद्मविजय के प्रचण्ड धनुषदण्ड पर हाथ रख कर खड़ा रहा । एकाएक किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा । चौंक कर वह घूमा और अनायास ही हाथ तलवार की मूठ पर चला गया । सामने मुस्कराता हुआ दुर्गपाल खड़ा था ।

क्रोध से रेवापाल ने होंठ काट लिए । उसके दुर्भाग्य का दूत उसके सम्मुख खड़ा था । इस समय भी वह उसे निश्चिन्त होकर विचार न करने दे रहा था । सम्भव है वह किसी बुरे संकल्प से उसके पीछे आया हो ।

'रेवाभाई ? अन्त में भेंट हो ही गई ।' काक बोला ।

'कैसे आया ?' दांत पीसकर क्रोध से खरखराती आवाज में रेवापाल ने प्रश्न किया ।

'प्रातःकाल मैंने बेना भाभी से कहा था कि इसी समय मैं तुमसे भेंट करने आऊँगा, लगता है उन्होंने तुमसे नहीं कहा ?' काक ने निर्दोष स्वर में कहा । रेवापाल अपने पुराने मित्र से परिचित था अतः उसकी

मीठी बातों में वह आ जाए ऐसा न था। कुछ देर तक वह आंखें निकाल कर देखता रहा।

'किसी काम आया है ?' अधीर होकर रेवापाल ने प्रश्न किया।

'मैं कल वनस्थली जाने वाला हूं।'

'तो इससे मुझे क्या सरोकार ?'

'एक याचना करने आया हूं।'

'किसी को दान देने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि हो भी तो तुझे नहीं दूँगा।' रेवापाल तिरस्कारपूर्वक बोला।

'फिर भी, याचना मैं तुम्हीं से करूँगा और तुम्हारे सिवाय कोई दान दे भी न सकेगा।' काक ने नम्रता से कहा।

'दान मांग अपने पाटण के स्वामी से। हठपूर्वक गर्दन हिलाते हुए रेवापाल ने कहा।

'जो दान बाल-मित्र दे सकता है वह संसार का स्वामी भी नहीं दे सकता।'

'मैं तेरा मित्र नहीं और न मुझे तेरी मित्रता ही चाहिए।' कहकर रेवापाल चलने लगा।

'किन्तु मुझे तुम्हारी मित्रता की आवश्यकता है। सुन तो लो कि मैं क्या मांगता हूं ? फिर भले ही न कह देना। मुझे एक स्त्री को तुम्हारे संरक्षण में छोड़ना है। रेवा भाई ! क्या तुमसे इतना सा भी न हो सकेगा ? शांत रह हँसकर विनोद में काक ने पूछा।

काक की बात सुनकर रेवापाल एकदम रुक कर उसकी ओर घूम गया। उसकी कठोर दृष्टि में नरमी आई। काक ने देखा कि रेवापाल पिघला है।

'भाई ! मुझे अपनी, भृगु कच्छ की या पाटण की तनिक भी चिंता नहीं है। उनका जो होना होगा, होगा। उनका जो कुछ तुम्हें करना हो, करना।' काक ने रेवापाल के हाथ का धनुष देखकर कहा, 'अभी तो एक निःसहाय स्त्री की रक्षा करनी है। इतना-सा काम लाट में तुम न करोगे तो कौन

करेगा ?'

'तुझसे नहीं हो सकता ?'

'कहा न मैं तो कल जा रहा हूं। संभव है लौट कर न आ सकूँ।' काक ने कहा।

'कौन है ?'

'एक ब्राह्मण की पुत्री है।'

रेवापाल चकित हो गया। पूछा, 'कौन, तेरी पत्नी ?'

'यदि वही हो तो—'

'उसे मैं अपने यहाँ क्यों शरण दूँ ?'

'मुझे कुछ हो जाय तो……?'

'तुझे और तेरे सगे-सम्बन्धियों को कुछ भी हो, इससे मुझे क्या ?'

'मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो यह नहीं कहता।'

'काक ! मैं तुमसे भली भाँति परिचित हूं। तेरे जैसा हरामखोर मैंने कोई नहीं देखा। इस समय भृगुकच्छ में सब कुछ अव्यवस्थित हो गया है, अतः तू येन-केन प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहता है।'

'भगवान सोमनाथ साक्षी है कि मुझे अपनी चिन्ता बिल्कुल नहीं है। किन्तु उस बेचारी को विदेश में मैं लाया हूं। मेरे सिवा उसका और कोई नहीं है। मान लो तुमने लाट पुनः हस्तगत कर लिया—तनिक तीक्ष्णता से रेवापाल की ओर देखकर काक बोला, 'तो इस बेचारी का कौन सहायक होगा ?'

'अपने स्वामियों को क्यों नहीं सौंप जाता ?'

'सर्वमान्य सिद्धांत यह है कि अपना जीवन-सर्वस्व स्वामियों को नहीं, मित्रों को सौंपा जाता है।' काक ने उत्तर दिया।

'ऐसे तो कितनों ही के जीवन-सर्वस्व तूने लूट लिए।' रेवापाल ने कहा। काक समझ गया कि उसके शब्दों का प्रभाव रेवापाल पर बड़े वेग से हो रहा है किन्तु उसके हृदय को पिघलाने के लिए अभी और

सावधानी से काम लेना पड़ेगा। उसने आधे क्षण तक विचार किया और फिर एक ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

'रेवाभाई! तुम्हारे जीवन-सर्वस्व को पाटण भिजवा दिया, सम्भवतः उसी का यह प्रतिकार दे रहे हो क्या?'

रेवापाल बचपन से लीलादेवी के पैर पूजता था। वह स्वामी-भक्ति थी या और कुछ, यह कोई नहीं जान पाया। जब से ब्याह कर लीलादेवी पाटण चली गईं तबसे उसके हृदय में स्वदेश की आग को छोड़ और कोई लगन बची भी थी या नहीं, यह भी कोई नहीं जानता था। किन्तु काक से कुछ भी छिपा न था। वर्षों से छिपाये हुए व्रण पर ऐसा तीव्र आघात किया कि वह फिर हरा हो उठा।

'क्या?' चौंककर रेवापाल गरज उठा। उसकी आँखों में अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। आवेश में आकर उसने तलवार निकाल ली। 'मौत आई है क्या?' गरजकर वह बोला।

'तुम्हारे हाथों मौत—इससे बढ़कर अच्छी वस्तु और क्या हो सकती है? मुस्कराते हुए शांत और प्रसन्न चित हो काक बोला, 'लीलादेवी का पाणिग्रहण सोलंकी के साथ कराया उसी का वैर निकाल रहे हो क्या?'

चुप—रहो'—रेवापाल धीरे, किन्तु इस प्रकार बोला मानो रक्त ही पी जायगा।

'क्यों, क्या मेरी बात असत्य है? मृणालकुँवर यदि यहां होती भी तो तुम्हारा मनोरथ पूरा नहीं होता।' कृत्रिम तिरस्कार से काक बोला।

'चाण्डाल ब्राह्मण!' कांपते हुए स्वर में रेवापाल बोला, 'तेरा समय आ गया है, अब या तो तू नहीं या मैं नहीं। निकाल अपनी तलवार। बिना युद्ध किये तुझे नहीं मारूँगा। तेरी पापी जीभ को अब एक शब्द भी न बोलने दूँगा। चल, निकाल।' रेवापाल के मुँह में झाग आ गए।

शांत रहकर मुस्कराते हुए काक ने गर्दन हिलाकर 'ना' कर दी।

'रेवाभाई! तुम्हारे सामने मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा?'

'क्यों ?'

'मैं कायर नहीं, किन्तु यदि हम लड़ेंगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। जानते हो कि मैं तुमसे दुगुना बलवान हूं और अपने बालमित्र को मैं मारना नहीं चाहता।'

रेवापाल के क्रोध की सीमा न रही। वह चेतना खो बैठा। उसकी दृष्टि में काक ही उसका एकमात्र शत्रु था, वही उसकी आकांक्षाओं में सबसे बड़ा रोड़ा था। अतः उसे मौत के घाट उतार देने में ही उसे अपनी और लाट की मुक्ति दिखाई दी।

'पापी! खड़ा रह। अभी तेरे दो टुकड़े करता हूं।' कह कर वह तलवार उठाकर आगे बढ़ा। काक कठोर होकर तिरस्कार से देखता रहा।

यही तो देखना है कि किस प्रकार याचक ब्राह्मण को मारकर रेवापाल अपनी टेक पर पानी फेरता है?' गर्व से काक ने कहा।

'रेवापाल की टेक!' इन शब्दों के कानों में पड़ते ही रेवापाल रुक गया। उसकी तलवार निकली-की-निकली रह गई।

'रेवापाल कभी अपनी टेक नहीं त्यागता।' निकट से ही एक मधुर स्वर आया।

दोनों घूमे। निकट ही तारों के क्षीण प्रकाश में तेजस्वी और गौरवयुक्त ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हुए थे। काक ने साष्टांग प्रणाम किया। रेवापाल का उठा हुआ हाथ नीचे झुक गया और उसके हाथ से तलवार छूट पड़ी। वह धरती पर बैठ गया और दोनों हाथों में माथा रखकर सिसकने लगा।

ले लेंगे। मुझे तो लगता है कि यदि कोई राजा भारत को एक न कर सका तो पूरे भारत का सत्यानाश अवश्य होगा।'

'इसीलिए अपने जयसिंहदेव को चक्रवर्ती बनाने तू सोरठ जा रहा है न ?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'यदि उन्होंने मेरी मानी होती तो आज वह हो भी जाते। किन्तु हम दोनों के गण ही नहीं मिलते।' काक बोला।

'तो तू लाट को स्वतन्त्र नहीं होने देगा ?' ब्राह्मण ने पूछा।

'मेरी चले तो नहीं।'

'तो जानबूझ कर लाट को हाथ से खोया क्यों ?' रेवापाल बड़-बड़ा उठा।

'रेवाभाई ! तुम अभी बात पूरी समझे नहीं हो। तुम जितना सोचते हो उतना बलवान मैं नहीं हूं। यदि आज मैं न भी हुआ तो क्या लाट पराधीनता से मुक्त हो जायगा ? यही भूलते हो। गुरुदेव ! चक्रवर्ती राज्य करने के लिए तो पाटण का ही सृजन हुआ है।'

'कैसे जाना ?' ब्रह्मानन्द ने पूछा।

'क्योंकि विधाता ने उसे शूरवीरों का भी शूरवीर दिया है।'

'कौन जयदेव ?' ब्रह्मानन्द ने प्रश्न किया।

'नहीं। जयदेव चाहे जितनी फूं-फां करे, वह नगण्य हैं। उनकी फुंकारों के पीछे, सेना की घोषणाओं के पीछे, पाटण की विजय पताका के पीछे—मुंजाल मेहता है। मेरे जैसे भले ही मर जाएं किन्तु जब तक वह रहेगा तब तक पाटण की कीर्ति का सितारा चमकता ही रहेगा।'

'तो फिर उसने आज तक कुछ किया क्यों नहीं ?'

'किया क्यों नहीं, कर्णदेव दिवंगत हुए तब पाटण भी सोलंकियों का नहीं था। आज कावेरी से श्रीमाल तक सोलंकियों का डंका बज रहा है, वह क्या इन जयदेव महाराज के प्रताप से ? कठिनाई यह है, कि मुंजाल को आवश्यकतानुकूल साधन नहीं मिल पा रहे हैं। पहले

मंडलेश्वरों ने झगड़ा किया; फिर पाटण के धनाढ्य प्रतिकूल हुए। इस समय श्रावक बिगड़े हुए हैं, नगर मन्त्री क्रुद्ध हैं, और ऊपर से राजा बेढंगा है। नहीं तो आज तक न जाने क्या हो जाता, यह कौन जानता है?'

'तो, तू किस काम जा रहा है?'

'मुंजाल मेहता का क्या दांव है यह मैं स्पष्ट समझ नहीं पाया हूं। किन्तु यदि मैं जीवित रहा और मेरी चली तो जूनागढ़ पराजित होगा और सोरठ भी निश्चय लाट के सामान हो जाएगा।'

'शाबाश!' कठोर हास्य करते हुए रेवापाल बोला, 'ऐसा गुमाश्ता न हो तो सेठ उछल-कूद मचाएं कैसे?'

'रेवा भाई अब भी नरम नहीं पड़े। गुरुदेव! मेरी स्त्री को आश्रय मिल जाए ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए।

'काक! तेरे उद्देश्यों को देखते हुए तो तुझे जीते-जी रेवा मां में फेंक देना चाहिए।'

'गुरुदेव! रेवा मां मुझे अभयदान प्रदान करेंगी।' गर्व से काक ने कहा। 'जब पाटण का स्वामी रेवा मां के चरणों में आएगा, जब लाट की जननी जगत्-जननी बन जायगी, तभी मेरा उद्देश्य पूर्ण होगा। तब आपके कहे बिना ही मैं इस सनातन अम्बा की गोद में विश्राम पाने के लिए सो जाऊंगा।'

'खुद जीते-जी तो लाट को चुल्लू-भर पानी भी नहीं देना और मरते समय श्मशान में गाय लाने की बात करना है।'

'आप चाहे जैसा समझें; किन्तु गुरुदेव! भाई से इतना-सा वरदान दिलाकर मुझे चिन्ता से तो मुक्त कर दीजिए।'

'रेवा! काक की स्त्री तेरी भौजाई है। उसकी रक्षा करने का वचन दे दे।'

'मैं कैसे दूं? इस पापी को तो मेरे हाथों मरना है।'

'तो मैं कहां 'ना' कहता हूं। परन्तु बाद में मेरी स्त्री सेर-भर धान

के लिए भूखों न मर जाय भाई ! निराधार होकर न रोए, मेरा पुत्र निराश्रय होकर कुम्हला न जाय—बस इतना ही वचन दे दे।'

'दे दे, रेवा ! इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।'

'अच्छा, काक ! अपना सोचा तूने किया ही; तेरी पत्नी और पुत्र को निराधार कभी न होने दूंगा। अब तो ठीक ? अब जा आज तो मैं तुझसे उकता गया हूं। इस जन्म में अब अपना मुँह न दिखाना।'

'भाई ! विधि ने क्या-क्या लिख रखा है कौन जाने ?' कहकर काक ने दोनों को नमस्कार किया।

'काक ! जहाँ कहीं रहे, काम वही करना जो तेरे गुरु को शोभा दे।

'निश्चित रहिए, गुरुदेव ! अच्छा, अब आज्ञा ?'

'हाँ, बेटा !'

काक पुनः नमस्कार करके चला गया।

'रेवा ! यह लड़का हैं विलक्षण !' ब्रह्मानन्द ने कहा।

स्वार्थ साधने में एक ही है गुरुदेव।' रेवापाल ने उत्तर दिया।

२०

काक ने बन्दरगाह पर जाकर इच्छानुकल पोत का प्रबन्ध हुआ कि नहीं इसकी छानबीन की। वहाँ से लौटकर अन्य कार्य पूरे करके वह मंजरी के पास गया।

मंजरी ने सांसारिक जीवन स्वीकार किया था फिर भी शरीर और बुद्धि में वह जैसी थी वैसी ही मोहक बनी रही। वह पहले के ही समान गर्विष्ठा थी, पहले से भी अधिक विद्वान् थी। जिन जिन लोगों से उसका परिचय हुआ उन सभी पर उसकी मोहनी प्रभाव कर गई थी।

उसका पांडित्य विद्वानों में उसके प्रति मान पैदा करता था, परदेशी विद्वान् भृगुकच्छ में आते तो इससे भेंट करने अवश्य जाते और प्रशंसा से आर्द्र हुए हृदय से पराजय स्वीकार कर उसकी तुलना सरस्वती से करते हुए श्लोक रचना करते। चारों ओर से जो योद्धा आते और दुर्गपाल का आतिथ्य स्वीकार करते थे उनके महत्व को भूलकर उसकी स्त्री के पुजारी हो जाते थे। भृगुकच्छ के साधारण लोग उससे परिचय होने पर उसे देवी मानते, वृद्ध उसे रेवा माँ का अवतार समझकर उसके दर्शन कर कृतार्थ होते थे, अधेड़ वय वाले अपने घर के झंझटों को भूलने के लिए इसके निकट बात करने बैठ जाते थे, और एक अमृत-भरी दृष्टि की याचना करने वाले युवक उसकी एक अर्थहीन दृष्टि से प्रोत्साहना पाकर उसको प्रसन्न करने के लिए भवसागर पार करने के लिए तत्पर हो जाते थे।

इस गर्विष्ठा, स्वस्थ और सुन्दर रमणी के प्रति एक अस्पष्ट तिरस्कार की भावना वही पुरुष और नारियाँ रखते थे जो इसके सम्पर्क में आ जाते थे। मंजरी यह बात जानती थी, परन्तु ऐसों को वह भी स्पष्ट तिरस्कार से देखती थी।

पति और उसके उपरान्त स्वयं की शक्ति में उसे इतनी श्रद्धा थी कि जब काक ने उसे रेवापाल द्वारा दिये हुए वचन की बात कही तो उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

'क्यों किसी के पास भीख माँगने गये?' उसने होंठ-पर-होंठ दबाकर पूछा, 'तुम्हें—महारथियों के शिरोमणि को—ऐसी याचना करते लज्जा न आई? क्या हो गया था तुम्हें, तुम कैसे इतने अधिक अधीर हो सके।'

काक स्नेह से पत्नी सुन्दरी का क्रोध देखकर मधुर हास्य कर उठा।

'मैं न होऊँ और कुछ उपद्रव हो जाय तो?'

'तो मुझे क्या हो सकता था? किसकी मजाल कि मेरा कुछ

कर सके ?'

काक पुनः हँस दिया, 'हाँ, यह तो मुझे मालूम है। भृगुकच्छ का प्रत्येक नवयुवक तेरे लिए प्राण देने को तैयार हो जायेगा।'

'नहीं तो क्या। जैसे सब लोग तुम्हीं पर मोहित हो पड़ते हों!' मंजरी ने भी हँसकर उत्तर दिया। 'किन्तु रेवापाल के गर्व की तो कोई सीमा ही नहीं है। उसकी शरण माँगने से पहले मर जाना अच्छा समझूँगी।'

'पगली! रही न वैसी-की-वैसी। मेरे कानों में अभी से उपद्रवों की भनक पड़ रही है। और इस सम्पूर्ण लाट में वचन का पक्का कोई है, तो रेवापाल! आँबड़ को सौंपना तो निरर्थक है।'

'आँबड़! जैसा बाप वैसा बेटा। मुझे तो उसका नाम ही अच्छा नहीं लगता। फिर भी व्यर्थ की चिन्ता कर रहे हो। सोमेश्वर है, मणिभद्र है, और क्या चाहिए? तुम अपनी चिन्ता करो। और जिस प्रकार पन्द्रह वर्ष पहले पाटण विजय करके लौटे थे इस बार भी वैसे ही विजय पाकर लौटना।'

'साथ में किसी को लेता आऊँ?'

'मंजरी से अधिक सरस मिल सके तो अवश्य लेते आना! मेरी सौगन्ध है।' मंजरी ने हँसकर कहा। तेजस्वी, सुकुमार, स्फटिक-सी श्वेत इस मोहनी के शब्द सुनकर वह सब कुछ भूल गया। वह पल-भर तक उसके मुख की अपूर्व रेखाओं और उसके हास्य की विद्युत्प्रभा की ओर मोह दृष्टि से देखता रहा। फिर उचित उत्तर दे दिया; उसने मंजरी का चुम्बन कर लिया।

मान छोड़ कर मंजरी काक की बाहुओं में लिपट गई।

'भटराज!' उसने धीरे-से अन्तर की अभिलाषा प्रकट की, 'शीघ्र लौटोगे न?'

'तुरन्त। घबराओ नहीं। मुझे कुछ होने वाला नहीं है।'

दोनों आत्म-श्रद्धा के आनन्द में चिन्ता भूल गए।

दूसरे दिन दुर्गपाल विदा हुआ। बन्दरगाह तक आम्रभट, नगरसेठ, माधव और मणिभद्र पहुंचाने गये। मन्दिर की छत पर से मंजरी क्षितिज में अन्तर्धान होते हुए पोत पर खड़े हुए काक को देखती रही। पोत के अदृष्ट हो जाने पर आँचल से आँसू पोंछ और वौसरि छाती से चिपका लिया।

उसकी दो-तीन सखियां साथ में थीं। वह चुपचाप इस स्नेह हृदय की व्यथा को देखती रहीं; परन्तु मंजरी से एक शब्द भी कहने का किसी को साहस न हुआ।

उसने वौसरि को एक सखी को दिया और दर्शन करने के लिए मन्दिर की ओर घूमी। एक विद्यार्थी ने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लंगड़ाता-लंगड़ाता आया और हँस-हँस कर समाचार पूछने लगा। हास्य की किरणों प्रकीर्ण करती हुई मंजरी अपने तेज से अँधेरे मन्दिर को भी आलोकित कर रही थी।

वह मन्दिर से बाहर निकली ही थी कि बेनां के साथ नगरसेठ के यहाँ की अन्य स्त्रियाँ आईं। रेवापाल उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखता था, यह मंजरी को मालूम था। बेनां को भी उसका संसर्ग पसंद नहीं था। अतः उसकी ग्रीवा की भंगिमा में गर्व बढ़ गया, उसके हास्य में तनिक अभिमान भी प्रकट हुआ।

'मंजरी, भाभी, कैसी हो ? बेनां ने कहा।

'अच्छी हूं। तुम कैसी हो ?'

'ठीक हूं मेरे देवर गए न ?'

'हाँ।'

'मंजरी, इधर आओ, एक बात कहनी है ?'

'क्या ?' कहकर मंजरी कुछ दूर बेनां की ओर गई।

मंजरी तन कर सीधी खड़ी हो गई। उसकी आंखें अधिक बड़ी हो गईं। वह एक शब्द भी न बोली।

'कहलाया है।' पतिपरायण बेनां मंजरी के गर्व को देख उत्पन्न हुए

अपने आप को दबाते हुए बोली, 'कि कुछ काम हो तो उन्हें कहला भेजना।'

क्षण-भर के लिए मंजरी के होठ कांप उठे। उसने उत्तर दिया, 'वेनां देवी ! उनसे कहना कि भटराज की स्त्री को किसी के संरक्षण की आवश्यकता नहीं।'

मंजरी की आंखों में तलवार की धार जैसी तीक्ष्णता थी; उसके सुसंस्कृत स्वर में अपमान के सरगम के सभी स्वर थे।

वेनां को इन शब्दों से गहरा आघात लगा। पति-भक्ति करते-करते सीखी नम्रता भूल गयी; और अपमानित स्त्री के हृदय में निवास करते—विषैली नागिन के विष से भी भयंकर विष उसके अन्तःकरण में घुस व्याप्त था।

'हां, मैं भूली। तुम्हारे यहां कमी ही किस बात की है कि उनके संरक्षण की आवश्यकता पड़े; इतना कह वेनां वहां से चली। शब्द निर्दोष थे; किन्तु उनमें छिपा विष मंजरी ने देख लिया। एक भयंकर दृष्टि वेनां पर डाली और गर्व से सिर ऊँचा करके वहां चली गई। उसकी आंखों से क्रोध के आंसू निकल आए।

उसकी सखियां कुछ जान पाईं। वह मन्दिर से बाहर निकली। साम्बा वृहस्पति के बाड़े में प्रवेश करने से पहले उन्हें एक स्थान पर मुख्य पथ पार करना पड़ता था। वे जैसे ही मुख्य पथ पर गईं वैसे ही उन्होंने पथ के दूसरी ओर से कुछ गुरुओं-सहित एक नवयुवक साधु को आते हुए देखा। मंजरी अपनी सखियों को लेकर तेज गति से गली में चली गई, परन्तु उसने उस साधु का तेजस्वी मुख देख लिया था। एक सखी से बोली, 'यह तो नया साधु आया है न, बड़ा विद्वान् माना जाता है।'

'हां ! मैंने भी सुना है। बड़े-बड़े विद्वानों की भी इसके सामने नहीं चलती।'

हेमसूरि की चंचल दृष्टि भी मंजरी पर पड़ गई थी। काक द्वारा

दिया हुआ परिचय उसे याद आया—बचपन में खंभात में जिस युवती के पड़ोस में रहा था और जिसे काक उठा ले गया था वही।

उसकी विस्मृत तेजस्विता का उसे स्मरण हो आया।

दुर्गपाल को कैसे यह स्त्री मिली और उसके पांडित्य के विषय में लोकोक्ति क्या थी यह तो उसे ज्ञात था। उसने निकट ही चल रहे एक श्रावक से पूछा, 'दुर्गपाल की पत्नी बड़ी शास्त्र-विशारद मानी जाती है न ?'

'जी हां।' युवक साधु की सर्वज्ञता पर मोहित होकर श्रावक ने कहा।

२१

आंबड, तेजपाल, माधव और सोमेश्वर काक को विदा कर लौटे। अब आंबड में कुछ-कुछ साहस आया। काक से उसे भय लगता था। अतः उसकी उपस्थिति में वह निःसहाय सा बना रहा। अब तो जब तक जूनागढ़ न हार जाय और कोई दूसरा दण्डनायक या दुर्गपाल न आ जाय तब तक वह लाट का स्वेच्छाचारी स्वामी था। उसके आनन्द की सीमा न रही। सोमेश्वर काक के घर गया, अन्य यह माधव के यहां भोजन करने के लिए जाने वाले थे। अतएव अपनी-अपनी पालकी की ओर बढ़े। आम्रभट की पालकी के आस-पास कथित चाटुकार तथा अन्य जन नए दुर्गपाल को देखने की उत्सुकता से खड़े हुए थे। एक सैनिक ने धक्के मारकर इन सबको दूर खदेड़ा और आम्रभट अपनी पालकी में जा बैठा। कहारों के पालकी उठाने से पूर्व ही आस-पास की भीड़ को चीरता हुआ एक मोटा मनुष्य पालकी तक आया और झुक-झुक कर अभिवादन करने लगा।

नए दुर्गपाल ने नेरा तोतला को पहचान लिया। उसे काक द्वारा

दी गई चेतावनी का स्मरण हो आया। नेरा लहजे में बोल रहा था, 'घ-घ घणी खम्बा अन्नदाता ! दु-दुर्गपाल म-महाराज की ज ज-जय ! ब बापू को नमस्कार ?' झाड़ के धड़ जैसा उसका मोटा शरीर नीचे झुकते समय कुछ-कुछ आनन्द में झूमते हुए हाथी के बच्चे का स्मरण करवा रहा था। आस-पास खड़े हुए लोग देख कर हंसने लगे।

आम्रभट को तुरन्त वही अपरिचित सुन्दरी याद आई। हमीर मृत्यु शैया पर लेटा था और वीरा उतना बुद्धिमान नहीं था नेरा के बिना उसे और कौन खोज सकेगा ?

आम्रभट ने काक की चेतावनी की चिन्ता नहीं की। वह नेरा को सामने देखकर मुस्करा दिया, 'क्यों नेरा ?'

'घ· · ·घणी-घणी खम्बा बापू ! आपकी कृपा से आनन्द है।'

आम्रभट को लगा कि नेरा कुछ कहना चाहता है। उस अपरिचित का समाचार तो नहीं लाया है ?'

'मेरे साथ चल।'

'ब· · ·बापू की आज्ञा। चि· · ·चिरंजीव हो, सौ· · ·सौ वर्ष तक। घ· · ·घणी-घणी खम्बा अन्नदाता।' कहता हुआ वह पालकी के एक ओर चलने लगा।

अभी पालकी थोड़ी दूर ही गयी होगी कि नेरा ने आम्रभट के कान में कहा, 'म· ·महाराज ! प· ·प· ·प ·पता मिल गया।'

'सच ?' हर्षित होकर आंबड़ बोला। उसका हृदय उछल पड़ा।

नेरा ने आंख-ही-आंख में उसे सावधान रहने के लिए कहा।

'लम्बी है ?'

'हां, दू· · दूध जैसा श्वेत रंग ?' वह बोला।

आंबड़ ने जोर से गर्दन हिलाई।

'औ· ·और म· · ·मन हर ले ऐसी जादू भ· ·भरी आंखें · ·।'

नेरा अपनी वाक्पटुता की परीक्षा करने लगा।

आम्रभट्ट को बुरा लगा किन्तु चुप रहा। उसकी प्रियतमा के विषय

में इस नौकर का इस प्रकार बातें करना उसे खटका।

'औ''और ब''बाएं हाथ में रुद्राक्ष का''कड़ा है।'

रोमांच से आंबड़ ने आंखें मूंद लीं, और अपनी प्रियतमा की प्रतिमा मस्तिक के सामने लाया।

'क''क्यों ठी''ठीक है न?' नरा ने चिन्तित होकर पूछा।

'नहीं। अच्छा फिर?'

'भू''भूल गया ब''बापू! एक रुद्राक्ष और एक स्फटिक।

आंबड़ पालकी में उछल पड़ा, 'ठीक।'

'त''तो मिल गई।'

'कहां है?'

'ब'' बापू मैं ग-ग-गरीब मारा जाऊंगा। मुझ गरीब के श''श''शत्रु—।'

'अधीर होकर आंबड़ ने कहा हरामखोर, बोल!'

'अन्नदाता! वह स''सरस्वती के समान विद्वान् है।'

'सचमुच?'

'ब''बापू! मैं तो अब त''तक भ''भ''भट भी नहीं बना।'

'तू भट बनना चाहता है न?'

'हां, ब''बापू! आपकी सेवा करते करते ही मरने की कामना है।

'अच्छी बात है।'

'अन्नदाता, व''वचन दीजिए, मैं कहीं बी''बीच में ही न मारा जाऊं।

'बोल, कायर! घबराता क्यों है?'

'ब''बापू! मुझे भट बनायेंगे न?'

'हां, हां, हां।'

'तो कहता हूं। कि''किन्तु ब''बापू! ऐसी नहीं है जो हाथ लग सके।'

'इससे तुझे क्या मतलब?' आंबड़ ने कहा।

'तो आप जाने ! म···महाराज ! वह तो भटराज की विवाहिता है।'

'हैं ? किसकी, क्या माधव की ?'

'श—शी···शी ब···बापू ! उस दू···दूसरे की।'

आम्रभट का हृदय मानो रुक गया, 'जो गया उसकी ?'

नेरा ने जोर से गर्दन हिलाई।

आँबड़ मौन रह गया। उसकी स्थिति ठगे से व्यक्ति जैसी हो गई। उसके कानों में धमधम जैसी आवाज होने लगी।

अन्नदाताओं के अन्तर को पहचानने का नेरा ने विशेष अध्ययन किया था। वह मन-ही-मन मुस्कराया। उसके बिना नए दुर्गपाल का काम चल ही नहीं सकता।

'म···महाराज ! ब···बात ब··· बनने जैसी नहीं है।' उसने धीरे से कहा।

'नेरा ! कुछ भूल हुई है।' मणिभद्र का रूप और रंग याद आते ही आम्रभट के हृदय में शंका उत्पन्न हुई।

'स···स्वयं चल कर दे···देख लीजिए।'

आम्रभट को कुछ सूझ नहीं पड़ा। परन्तु नेरा के पास युक्ति थी। म···महाराज ! अ···आप अब दुर्गपाल हो गए हैं न। भ···भटराज के घर की कुशलता जानना आपका कर्त्तव्य है।

आम्रभट ने अनुग्रह-भरी दृष्टि से नेरा की ओर देखा, 'तू मुझसे संध्या को मिलना।

'ज···ज···जैसी आज्ञा।'

आँबड़ के मस्तिष्क में दो बातें बिजली की भाँति कौंध गईं। एक तो अपरिचित रमणी का पता मिलने का हर्ष—और दूसरी उसे सिंह के पंजे से छीनना होगा इस बात से उत्पन्न भय। भृगुकच्छ आने से पहले उसने नए नगर के स्त्री-पुरुषों के विषय में छानबीन की नहीं थी, जितनी कुछ जानकारी थी वह उसके पिता उदा मेहता द्वारा ही प्राप्त थी और वह जिह्वा मंजरी के विषय में जानकारी देने के लिए हिल भी

सके ऐसा तो था नहीं. मणिभद्र भी विशेष कुछ बता सकें ऐसी स्थिति में नहीं थे। इन्हीं कारणों से आंबड़ मेहता ने मंजरी को एक सामान्य स्त्री समझ लिया था। अतएव नेरा की बात ऐसी अविश्वसनीय लग रही थी कि उसे मानने को जी नहीं चाहा।

उस अपरिचित मोहनी का वह ऐसा दास हो गया था कि इस अनि-श्चित दशा से छुटकारा पाने के लिए वह छटपटा उठा। जैसे ही माधव का घर आया वैसे ही आम्रभट ने माधव और तेजपाल से कहा—'यदि समय हो तो मैं एक औपचारिक कर्तव्य पूरा कर लूँ।'

'क्या ?' विनयपूर्ण प्रश्न हुआ।

क्षण-मात्र के लिए आंबड़ हिचकिचाया, फिर बोला—'काकभट चले गये अतः मुझे तनिक उनके घर हो आना चाहिए। उनके घर वालों को प्रसन्नता होगी, और मेरा भी दायित्व है।'

'भोजन करके चले जायें तो कैसा रहे ?' माधव ने कहा।

'फिर तो सेठ जी के यहाँ हेमचन्द्र सूरि आने वाले हैं और बहुत सन्ध्या हो जाने पर जाना भला भी नहीं लगता।'

तेजपाल सेठ अपनी कानी आँख से शिष्टाचार के इस समर्थक की ओर देखने लगे। फिर कुछ गम्भीर किन्तु विनोद-भरी वाणी में उत्तर दिया, 'बात सच है। काक की स्त्री भी अपने आपको एकदम निराधार न समझेगी। तुम्हारे जैसे भले पुरुष भी यदि परिपाटी का पालन न करेंगे तो करेगा कौन ? निस्सन्देह जाओ।'

आम्रभट वृद्ध की ओर देखने लगा। क्या यह रहस्य पा गया ? नगर सेठ के मुख पर न कुछ भी प्रकट नहीं हो रहा था।

'अच्छी बात है। मैं यह आया।' कहकर आम्रभट ने पालकी उठाने वालों को मुड़ने का आदेश देते हुए कहा—जल्दी चलो—साम्बा बृहस्पति के बाड़े में, मेरे साथ किसी को आने की आवश्यकता नहीं। काक भट जी के यहाँ भीड़भाड़ सहित जाना अच्छा नहीं लगेगा।' उसने अपने अश्वारोहियों को आज्ञा दी।

२२

आम्रभट को यदि प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचने का भय नहीं होता तो वह निश्चित ही कहारों को दौड़ने के लिए कहता, यदि वह समझता कि लोग उसे पागल न कहेंगे तो वह स्वयं दौड़ता, यदि उसके पर होते तो वह उड़ जाता। माधव के घर से साम्बा वृहस्पति के बाड़े तक का पथ उसे ऐसा लगा मानो योजनों दूर हो।

इतने थोड़े समय में ही मदाँध प्रणयी का सा उन्माद उसके मस्तिष्क में व्याप्त हो गया था। वह सोच रहा था कि काक का घर उसका ही तो है, जिस घर के सामने सैनिकों और चाटुकारों की भीड़ रहा करती थी, वहाँ आज निर्जनता देखकर मनुष्य जीवन की असार्थकता पर दो-चार बहुत ही सुन्दर विचार उसके मन में उठे और इस निस्तेज, और सूने घर में निवास करने वाली सुन्दरी पर दया भी आई। कौन जाने—उस बेचारी के हृदय पर क्या बीत रही होगी?

वह घर के सामने के चौक में गया जहां कोठरी में इक्के-दुक्के मनुष्य निश्चिन्त होकर लेटे पड़े थे।

एक कोने में गेरुई ध्वजा पर स्वर्ण-खचित कुक्कुट-पाटण की पताका भूमि पर रखी हुई थी, दूसरी ओर धोंसे की सांडनी धीरे-धीरे जुगाली कर रही थी। आँबड़ को अपनी सत्ता का भान हुआ। कल से जहाँ वह रहेगा वहाँ यह पताका फहराएगी और यह आँबड़ नगाड़े बजेंगे।

वह चौक पार करके अन्दर के कक्ष के बन्द द्वार तक आया और ठिठक कर खड़ा रह गया। उसका हृदय धड़कने लगा। विदेश में, अन्य नगर में, लोकप्रिय, और प्रतापी वीरश्रेष्ठ के घर में, ठीक दोपहर को अकारण ही उनकी स्त्री से भेंट करने के लिए वह खड़ा हुआ था। काक की स्त्री को उसकी सहायता या उसके आश्वासन की आवश्यकता है। कितना हास्यास्पद है आगमन का कारण। माधव और तेजपाल मन में क्या समझते होंगे? उसका मन वहाँ से लौट जाने को हुआ।

किन्तु लौटे कैसे ? कहार क्या सोचेंगे—माधव और तेजपाल क्या धारणा बनायेंगे ? नागरिक क्या समझेंगे ? ऐसी डूबती-उतराती स्थिति में वह खड़ा रहा।

अन्दर कोई बोल रहा था। उसकी आवाज एक जाली में से आ रही थी। लकड़ी की नन्हीं जाली में से उसने देखने का प्रयत्न किया, किन्तु स्पष्ट कुछ भी दिखाई न पड़ा। चार-पाँच मनुष्य-भर बैठे हुए दिखाई दिए।

आम्रभट के हृदय में उस स्वर ने विचित्र झंकार उठा दी—अविमुक्तेश्वर के मंदिर वाली सुन्दरी का स्वर !

'भगवान पार्श्वनाथ !' उसने धीरे-से निःश्वास लिया। उस मंजी हुई वाणी की मिठास, ओह, उसके तो भाव ही कुछ निराले थे।

'पुराणी काका ! उस गृहक की प्रशंसा याद है न ? सोमेश्वर कभी से मेरा सिर खा रहा है। उसे सुनाओगे ? मैं तो भूल गई हूं।'

एक वृद्ध वाणी हास्य कर उठी।

'किस लिए सिर खा रहा है ?' उस स्वर ने प्रश्न किया।

'कहता है कि आपका भतीजा लाट को सत्ता भोगना छोड़कर पाटण की सेवा कर रहा है।' उस सुन्दरी का स्वर सुनाई पड़ा। माना संसार के सुमधुर वाद्य एक साथ बज उठे हों।

'इसलिए जयदेव महाराज जब चाहें एक घड़ी में इन्हें बुला सकते हैं। क्यों ? वह कोई साधारण पुरुष नहीं हैं।' सोमेश्वर का स्वर सुनाई पड़ा। 'इनके हाथ में राजदंड तो शोभा देता है परन्तु लकड़ी नहीं।'

'तू समझता क्या है ?' पुनः उस स्त्री का स्वर सुनाई पड़ा, 'ऐसा होता तो भीष्मपितामह धृतराष्ट्र को सिंहासन क्यों सौंपते ? श्री कृष्ण उग्रसेन को यादवाधीश क्यों बनने देते ?'

'तभी तो धृतराष्ट्र ने राज्य किया और अठारह अक्षौहिणी सेना का निकन्दन हो गया और उग्रसेन के लिए यादवास्थली बनी।' सोमेश्वर कहता सुनाई पड़ा।

वह स्त्री हंसी। कैसा मधुर हास्य ! आम्रभट रोमांचित हो उठा। 'काका ! इस बालक को आदि कवि वाल्मीकि के वचन सुनाओ तो !'

थोड़ी देर तक पुराणी गला खंखार कर फिर अपनी कर्कश आवाज में बोला :

धन्यस्त्वं न त्वचा तुल्यं पश्यामि जगती तले।
अयत्नादागतं राज्य यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥

(अर्थ है—धन्य है तुझे, तुझ जैसा संसार में नहीं देखा क्योंकि बिना मांगे मिले हुए राज्य को भी तू त्यागना चाहता है—रामायण)

'समझा ?' उस स्त्री की आवाज आई। 'भरत ने राज्य त्याग दिया इसलिए कि उसने कभी राज्य-आकांक्षा ही नहीं की थी और इसी लिए वह महान् हो गया। उन्हीं जैसे व्यक्ति धन्य हैं, तेरे जैसे लोभी नहीं। वह हँसी। पुनः इस मधुर हास्य को सुनकर आम्रभट अधीर-सा हो गया।

'अच्छी बात है।' हँसकर सोमेश्वर ने कहा, 'हम लोभी हैं तो लोभी ही सही। कर भी क्या सकते हैं, हमारे भाग्य में न भरत होना लिखा है न रामचन्द्र।'

'कैसे जाना ?' उस स्त्री ने पूछा।

आम्रभट का अधीर मन अब और अधिक न रुक सका उसने आगे बढ़कर द्वार पर लगा कड़ा खटखटा दिया। उसके मस्तिष्क में उस सुन्दरी के शब्द घूम रहे थे।

इतने में उसकी दृष्टि उस सांडनी के हांकने वाले पर पड़ी। वह सांडनी को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा था। सम्भव है वह धौंसा निशान यहां से ले जा रहा हो। जिस प्रकार आदि कवि को क्रौंच वध ने काव्य की प्रेरणा हुई थी उसी प्रकार उसका श्लोक सुनकर आंबड़ मेहता को एक प्रेरणा हुई, यहां आने का कारण सूझ गया। बिना प्रयत्न किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दे वही महान होता है।' वह

गुनगुनाया।

'हो—हो—कौन आंबड़ भाई ! ' तुम किधर से ? कहकर मणिभद्र ने द्वार खोलकर उसका स्वागत किया।

कल जिस कमरे में काक से भेंट की थी उसी कमरे में आंबड़ बैठा। हिंडोले पर पुराणी काका और सोमेश्वर बैठे हुए थे। अन्दर के कमरे की देहली पर भाजी काटती हुई वह सुन्दरी बैठी हुई थी।

आम्रभट ठगा-सा देखने लगा। वही मुख, वही आंखें, वही भंगिमा और वही रेखाएं ! सम्पूर्ण प्रकोष्ठ में अनन्त यौवन का अधिकारी देवों के नृत्य में विभोर स्वर्गलोक का-सा उल्लासजनक, मादक वातावरण था। दो विशाल, तेजस्वी नयन उस पर टिके हुए थे। मंजरी के संग-मरमर-से श्वेत भाल पर दुविधा से बल पड़ गए।

दो दिन से जिसके लिए प्रतिक्षण प्राण व्याकुल थे उसी रमणी को यहां देखकर उसे रोमांच हो आया। वह अपने आप पर वश न रख सका। और आगे भी न बढ़ सका। बस अपनी सुध-बुध खो बैठा।

लाट का युवक सोमेश्वर रूपवान योद्धा था। उसकी दृष्टि में काक शंकर और मंजरी पार्वती थी। इन दोनों के बीच उसकी भक्ति, उसका हृदय, और उसकी चाकरी बंटी हुई थी। शंकर की अनुपस्थिति में अरक्षित पार्वती का अपमान करने के लिए आने वाले की ओर जिस प्रकार नन्दी देखता है उसी प्रकार वह आंबड़ की ओर देखने लगा। वह काक का शिष्य था; गुरु की कृपा से वह समय और व्यक्ति परख सकता था उसने मंजरी के भाल पर पड़ी सिकुड़न देखी। वह हिंडोले पर से उठा, द्वार तक आया और आंबड़ और मंजरी के मध्य में खड़ा होकर बोला—

'कहिए, भट जी ! इस समय कैसे कष्ट किया ?'

डूबता हुआ तारा जैसे प्रबलता से चमक उठता है वैसे ही आंबड़ में साहस जगा।

'भाई सोमेश्वर ! मुझे देवी से कुछ बातें करनी हैं।' वह देहली के

आँबड़ ने अनुभव किया कि वह महान् पुरुष है, लाट का सत्ताधीश है, सब लोग उसकी आज्ञा के अधीन हैं। मंजरी जैसी मोहक स्त्री के लिए उत्पन्न मोह का उत्साह उसके रोम-रोम में समा रहा था, और आज प्रथम प्रयास में ही विजय पाई थी। उसके प्राण मदोन्मत्त थे। प्रथम बार ही उसे अपनी शक्ति में पूरा-पूरा विश्वास हुआ।

बिल्कुल ही कच्चा वह नहीं था। माधव और तेजपाल को सारी योजना बता देना उसे जंचा नहीं। किन्तु आनन्द उसके मुख पर से टपका पड़ता था। तेजपाल और माधव ने उसे नई सत्ता के मद का स्वाभाविक परिणाम समझा।

माधव के यहाँ भोजन समाप्त हुआ और तीनों व्यक्ति नगरसेठ के यहाँ आये।

वह तीनों सेठ के घर पहुंचे उससे थोड़ी देर पहली ही हेमचन्द्र सूरि आये थे। रेवापाल घर में था। उसने इस युवक साधु का आगत-स्वागत किया, उसे बरामदे में बिठाया। सूरि के साथ में आये हुए साधु उसके आस-पास बैठे।

रेवापाल इस नए साधू से पहले दिन मिल आया था और वह भृगु-कच्छ किस लिए आया है यह रहस्य समझने का प्रयत्न भी उसने किया था। इस बालक जैसे दिखाई देने वाले साधू का व्यक्तित्व ही विचित्र था। वाक्य वह इस प्रकार बोलता कि उसका उद्देश्य स्पष्ट समझ में न आवे फिर भी उसने अपनी बात कह दी है ऐसा लगता था, और उसकी बात-चीत में इस प्रकार अस्पष्ट विद्वत्ता थी कि सुनने वाले को उसके ज्ञान की अगाधता का भ्रम हो जाता था। उसके बात करने की शांत तथा अपरोक्ष रीति में सत्ता और आवेश दिखाई नहीं देते परन्तु सुनने वाले को यही लगता कि वह ठीक कह रहा है।

'रेवापाल जी! तुम्हारी ख्याति सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई है

तुमने अपने कुल को तथा अपने पिता की कीर्ति को दीप्त किया है। असंतोष है तो केवल इतना ही कि जितने तुम रणवीर हो उतने धर्मवीर नहीं।'

'यथाशक्ति तो धर्म पालन करता हूं।' रेवापाल ने कहा। उसे साधुओं के साथ बातें करना रुचता नहीं था।

'परन्तु शिव-मंदिर का विशेष पक्षपात है, क्यों?' हेमचन्द्र सूरि ने पूछा। इतने शब्द कहकर उसने बड़ी खूबी से जैन और शैव सम्प्रदाय में परस्पर विरोध आंदोलन का प्रचार किया। 'तुम्हारे जैसे योद्धा को विरागात्मक शुद्ध वृत्ति आते देर लगती है और राजकीय धर्म की ओर विशेष झुकाव होता है, पर तुम लाट के श्रावक-श्रेष्ठ हो; तुम्हें तो पहले अपना धर्मपालन और पोषण करना चाहिए।'

रेवापाल इस बुद्धिमान युवक का उपदेश जरा अनिच्छा से सुनता रहा। उसने उत्तर नहीं दिया। सूरि ने बात आगे चलाई, 'अच्छा तो शस्त्र किस लिए धारण करते हो? तुम तो अहिंसा धर्म बड़ी सुगमता से ग्रहण कर सकोगे।'

'मुझे अहिंसा धर्म अच्छा ही नहीं लगता।'

'अरे रे! मिठास से मुस्कराकर साधु ने कहा, 'तुम एक बार खंभात जाओ, निश्चय ही तुम्हारे विचार बदल जायेंगे।'

'मैंने तो लाट नहीं छोड़ने का व्रत ले रखा है।'

'यह क्यों?'

'लाट का सौभाग्य जो नष्ट हो गया है। उसे ऐसी दुर्दशा में कैसे छोड़ जाऊँ? हां, यदि लाट की विजयी सेना खंभात आए, तो मैं अवश्य ही आऊँगा!' निराशा भरी आवाज से रेवापाल ने कहा।

'जयदेव महाराज के राज्य में यह असंतोष की भावना क्यों है, मेरी समझ में यह बात नहीं आती।'

'आपकी समझ में न आना स्वाभाविक है।' जरा कठोरता से रेवापाल ने कहा। दूसरे ही क्षण उसे भान हुआ कि सूरि बात नहीं कर

रहा था बल्कि बात निकालना चाहता था। उसने तुरन्त बात बदल दी। 'आप कब तक रहेंगे ? लो ये बापू और आंबड़ मेहता भी आ गये।' कहकर वह मुँह बन्द कर, पीछे खिसक कर बैठ गया।

'अरे ! प्रभुजी, क्षमा करना ! माधवभट ने तो ऐसा भोजन कराया कि समय की कुछ खबर ही न रही। मुझ गरीब का घर पावन हुआ। कहकर तेजपाल सेठ ने दण्डवत् प्रणाम किया। माधव ने नमस्कार किया और सूरिजी ने सबको 'धर्मलाभ' दिया। पाटण की राजसत्ता के इस प्रतिनिधि की धूर्तता की ओर तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से देखता हुआ रेवापाल वहाँ से उठकर चला गया।

'सूरिजी ! जरा ऊपर चलने का कष्ट करेंगे ? कुछ पूछना है।' तेजपाल ने वहाँ जो तटस्थ व्यक्ति बैठे थे उनको हटाने के लिए कहा।

'नहीं। क्या कीजियेगा ? हम अब जा रहे हैं।' कहकर दूसरे सब उठे और सूरि के चरण स्पर्श कर चले गये।

'आंबड़ !' हेमचन्द्र बोले, 'अब कह यहाँ क्या करना है ?'

'और कुछ नहीं, जिस तरह चल रहा है उसी तरह चलेगा ?'

हेमचन्द्र ने जरा आश्चर्य से आम्रभट की ओर देखा।

'अर्थात् ?'

'लश्कर तो इस भटराज के हाथ में है। दूसरा काम-काज मैं और सेठ करेंगे।'

'परन्तु तुम्हें यहाँ किस लिए भेजा गया है यह तो तुम जानते ही हो ?'

'हाँ।'

'तुम्हें लाट की सत्ता काक से हस्तगत कर लेनी चाहिए देखो न…' हेमचन्द्र ने तेजपाल तथा माधव की ओर मुड़कर कहा, 'यहाँ काक की सत्ता त्रिभुवनपाल ने ऐसी जमने दी है कि लाट वास्तव में उसका है, महाराज का नहीं, ऐसा लगता है। इसीलिए महाराज ने काक को बुला लिया और आंबड़ को नियुक्त किया है। अब तुम तीनों पाटण की सत्ता

के प्रतिनिधि हो तुम्हें ऐसी युक्ति करनी चाहिए कि जिससे काक द्वारा हथियाई हुई सत्ता फिर महाराज के हाथ में आ जाय।'

'परन्तु अब वह कहाँ ?' माधव ने कहा।

'हाँ, वह गया तो है। महाराज ऐसा नहीं सोचते थे। उनका विश्वास था कि वह निश्चय ही उनकी आज्ञा की उपेक्षा करेगा।'

'हाँ, इसीलिए मुझे भी आज्ञा-पत्र मिला था कि कल से या बल से जैसे भी हो काक को यहाँ से विदा कर दो।' माधव बोला।

आँबड़ मेहता मुझ पर भी ऐसा ही आज्ञा-पत्र लाया था।' तेजपाल ने कहा।

'काक तो गया।' आंबड़ ने कहा, 'अब रह क्या गया है ?'

'उसके केवल न होने से क्या हुआ ? उसकी सत्ता वास्तव में भंग कर देनी चाहिये। नहीं तो वह कल लौट आया तो ?' सूरि ने पूछा। तेजपाल की कानी आंख हेमचन्द्र से आँबड़ और आँबड़ से हेमचन्द्र की ओर फिरती रही। इस समय एक भी अक्षर बोलकर अपना अभिप्राय जता दे ऐसा कच्चा बनिया वह नहीं था।

'पर अब रह क्या गया ?' जरा ऊबकर आँबड़ ने पूछा।

'पहले तो इसके आदमियों को हटा कर, उसके हाथ से शक्ति छीन कर अपने हाथ में लेनी चाहिये।'

'अब शक्ति है ही किसके हाथ में ?'

'सोमेश्वर नए दुर्ग का रक्षक है। उसका मित्र भामा सेठ कोठारी है, उसके घर का आदमी रुद्रमल्ल लाट की सेना का नायक है। ये तीनों हटने चाहियें। हेमचन्द्र ने कहा।

तेजपाल और माधव इस बालक जैसे सूरि की जानकारी तथा शक्ति देख कर दंग रह गये। परन्तु आँबड़ के मस्तिष्क में सोमेश्वर के नाम से मंजरी का स्मरण हुआ। उसे लग रहा था जैसे मंजरी उसकी अपनी हो। उसकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने का उसने निश्चय कर लिया था परन्तु यहाँ उनके आदमियों को अलग करने की, उसके ऐश्वर्य को छीन लेने

की, उसके पति की प्रतिष्ठा भंग कर देने की बातें हो रही थीं। उसे लगा कि यह बातें उसकी प्रतिष्ठा छीन लेने की थीं। यह उसका अपमान था।

'और धौंसा निशान भी!' सूरि की सूचना आगे बढ़ी। 'काक के यहां से मंगा लो।'

आंवड़ के सिर पर जैसे वज्र गिरा। 'धौंसा निशान काक के यहाँ ही रहेंगे'—मंजरी को वह ऐसा वचन दे आया था। 'क्या वह वहाँ से मंगा ले? क्या मंजरी के घर को निस्तेज बना दे? क्या लाट की साम्राज्ञी जैसी सुन्दरी को एक सामान्य गृहिणी वह अपनी आज्ञा से बना दे? आँबड़ के मस्तिष्क में उसके घर के कमरे का मादक वातावरण फैल गया। उस वातावरण में से दो बड़े बड़े तेजस्वी, जादू भरे नयन उसकी ओर दीनता से, व्यंग्य से, देख रहे थे। यह नयन उससे पूछ रहे थे—'आँबड़ मेहता, तुम मुझे वचन देने के बाद मेरे घर की ऐसी प्रतिष्ठा करोगे? लाट में प्राप्त मेरा स्थान छीन लोगे?' प्रणयी का उत्साहित हृदय इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। जब तक वह लाट में है तब तक किस में इतना साहस है कि उसकी—हाँ—उसकी मंजरी की प्रतिष्ठा की ओर उँगली उठा सके!

'आंवड़! किस विचार में पड़े हो?' सूरि की शांत आवाज आई। आंबड़ कल्पना-सृष्टि से लौटा, पर उस सृष्टि में किया हुआ निश्चय साथ लाया।

'अन्तिम उत्तर आपको बता दूँ?' तैश में उसने पूछा।

'काक के यहाँ से धौंसा निशान मँगा लो।' हेमचन्द्र की आवाज में जरा कठोरता थी।

'क्यों? आँबड़ ने क्रोध से कांपती हुई आवाज में पूछा।

'इसलिए कि महाराज की आज्ञा है।'

'महाराज ने मुझे तो ऐसी आज्ञा नहीं दी।'

'तेजपाल और माधव दोनों देखते रहे। ये दोनों हेमचन्द्र और

आंवड़ को एक ही समझते थे ।

'तो इसका अर्थ हुआ कि तुम धौंसा निशान काक के यहां ही रहने दोगे ?'

'हाँ ।'

'तुम क्या कह रहे हो ? इससे तो प्रजा यही समझेगी कि काक ही सत्ताधीश है ।'

'तो इससे बिगड़ क्या जायगा ?' आंबड़ ने पूछा । 'महाराज का भ्रम है कि काक कृतघ्न है । वास्तविकता यह है कि उसी ने महाराज को लाट दिलाया और अब पाटण कृतघ्न होकर बिना किसी अपराध के उससे सत्ता क्यों छीन ले ?'

इसलिए उदा मेहता ने ऐसा ही करने के लिए कहा है ।' असंतुष्ट होकर हेमचन्द्र ने कहा ।

'भृगुकच्छ का दुर्गपाल मैं हूं, उदा मेहता नहीं ।' आँबड़ बोला ।

हेमचन्द्र सूरि का मुंह फीका पड़ गया । तेजपाल काक का दुश्मन नहीं था, इसलिए आँबड़ का यह अभिप्राय जानकर उसने भी कहा, 'आंबड़ मेहता की बात तो ठीक है, वैसा करने से लाट में प्रजा हा-हाकार मचा देगी ।'

'आंबड़ !' सूरि कह रहे थे परन्तु दूसरा विचार आते ही वह नगर सेठ तथा माधव से बोले, 'तुम मुझे जरा अकेले बात करने दोगे ? आंबड़ नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है ।'

आंबड़ को इनका ध्यान नहीं था । वह तो कल्पना में एक सुन्दरी के युगल नयनों से झरते हुए आभार को स्वीकार कर रहा था । सेठ और माधव दोनों उठकर जरा दूर चले गये ।

'पागल ! तू क्या बक रहा है, इसकी कुछ खबर है ?'

'हेमसूरि ! दुर्गपाल मैं हूं, आप नहीं । आपको बीच में नहीं पड़ना चाहिए ।'

'परन्तु इसीलिए तो मैं खंभात से यहां आया हूं ।'

'मैंने तो नहीं बुलाया था ।' आँबड़ ने जवाब दिया, पिताजी ने भेजा है, तो उन्हीं से पूछ आओ।'

'तू राजद्रोह कर रहा है !' कठोरता से सूरि ने कहा ।

'मैं केवल एक पुराने राजसेवक का अपमान नहीं होने देना चाहता हूं।'

'तब तो उसके आदमी भी रहने देगा ?'

'जैसे चलता आया है उसी प्रकार चलाऊँगा।' आँबड़ ने आश्वासन दिया।

'तब मैं यहाँ से चला जाऊँगा।' सूरि ने अन्तिम धमकी दी।

'जब इच्छा हो आप तभी जा सकते हैं।'

'ठीक !' जरा तिरस्कार से हेम सूरि ने कहा। तुरन्त ही उसकी मधुर आवाज ने पलटा खाया। जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसने शांत परन्तु ऊँची आवाज में कहा, 'भाई ! तुम जानो। तुम्हारे जी में आये सो करो, मुझे जो ठीक लगा, मैंने कह दिया।'

नगरसेठ और माधव यह सुनकर पास आये। आँबड़ को लगा कि उसकी महान् विजय हुई। उसने कहा, 'महाराज ! कल सवेरे हम मिलेंगे, पर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में ही।'

सूरि हँसा, 'हाँ, लोग जहाँ जाने के आदी हों वहीं मिलना। अच्छा, अब मैं जाऊँगा। तेजपाल सेठ, कुछ दिन रहकर मैं यहाँ से चला जाऊँगा।'

'ऐसा क्यों ? एकाएक ?'

'हाँ, जरा इधर आओगे ?' उठकर सूरि ने तेजपाल को बुलाया। सेठ गये।

'इन यतियों से तो माथा न मारना ही अच्छा है।' माधव नागर ने अपने मन की बात प्रकट की।

'और नहीं तो क्या ?' आँबड़ ने जवाब दिया। उसकी कल्पना में दो ललित एवं मनोहर ओंठ उसे धन्यवाद देते हुए दिखाई दिये।

'सवेरे आंबड़ किसी से मिला था ?' उधर सूरि ने पूछा ।

'हाँ, काक की स्त्री मंजरी से वह मिल आया है।' सेठ ने जवाब दिया ।

कोई बोला नही । सूरि ने मन में निश्चय किया कि उस स्त्री से उसे भी मिलना चाहिये ।

२४

आंबड़ मेहता के बालक जैसे मुख पर सन्तोष छा रहा था । आखिर भृगुकच्छ आने में कोई बुराई नहीं थी, वह वास्तव में दुर्गपाल बन ही गया, और मंजरी जैसी अपूर्व सुन्दरी भी तो मिली थी । यह अकेला हंस पड़ा । विधि को करना हो तो क्या नहीं कर सकता ?

कैसा उसका रूप है, कैसा उसका मधुर स्वर ! कैसी उसके सुन्दर नेत्रों की शोभा ''और उससे वह बोला था, उसके यहाँ बैठा था। वह जरा हँसी भी थी । प्रातःकाल वह उसके घर जा अपनी नवीन सत्ता की धाक जमा सकेगा ।

स्वप्न समान मोहक वातावरण चारों ओर छा रहा हो ऐसा लगता था । रंग-रंग में विचित्र झंकार हो रही थी, सूर्य और आकाश के रंग में, सृष्टि की रचना में एक अवर्णनीय आकर्षण दिखाई दे रहा था। एक परिपक्व शासक की रसिकता से वह आंखें मींचकर इन सबका अनुभव कर रहा था । एकाएक उसकी आंखों के आगे मंजरी का ऊंचा स्वरूपवान शरीर आ खड़ा हुआ । उसके अंग अंग में उमड़ते मोह ने उसकी आंखों को आश्चर्य-चकित कर दिया । वह अचेत अवस्था में उसके विकसित नेत्रों की ओर देखता रहा ।

आंबड़ की काल्पनिक दृष्टि के आगे जैसी प्रातःकाल देखी थी वैसी

ही मंजरी दिखाई दी—गर्वभरी, प्रतापी और विदुषी, और उससे न लजाई थी, न सकुचाई थी और न आश्चर्य-चकित ही हुई थी।

उसका मोह-मुग्ध हृदय शीतल हुआ। उदा मेहता के पुत्र के पद की इस सुन्दरी की दृष्टि में कोई गिनती नहीं थी; श्रावकश्रेष्ठ के अहंकार का उसकी दृष्टि में कोई सम्मान नहीं था; खंभात की युवतियों के हृदय के हार की उसे कोई परवाह न थी। पाटण की सेना के महारथी उसकी सेवा करते थे। भृगुकच्छ के विद्वान् शिरोमणी उसकी पूजा करते थे उसके और इसके बीच ऐक अभेद्य अन्तरपट था। और इस पारदर्शक पट में से एक मूर्ख लड़का उस ओर रक्खी हुई एक खांड की अद्‌भुत मूर्ति देखकर मुँह में पानी भर लाये, वही दशा उसकी उस समय हो रही थी।

आँबड़ आत्म-सन्तोष खो बैठा; उसका स्वाभाविक हर्ष नष्ट हो गया; उसकी आशा के प्रासाद ध्वस्त हो गये। इस समय भी उसकी एक मीठी नजर पर अनेकों युवतियाँ प्राण न्यौछावर करने को तैयार हो जातीं; पर यह युवती तो, वह स्वयं चरणों पर अपना सिर रख दे तो भी पलक न हिलाये ऐसी थी? आंबड़ पसीने-पसीने हो गया।

थोड़ी देर में उसका अभिमान सतेज हुआ। प्रणयी की कला एक वीर पुरुष नहीं जानता—उसे इस सूत्र का भान हुआ। रसमुग्ध सुन्दरियां केवल महत्ता की ओर ही आकर्षित नहीं होतीं—इस सिद्धान्त ने उसे आश्वासन दिया। हृदय रिझाने की कठिन कला तो उस जैसे किसी अद्‌भुत कलाकार को ही आती है। इस समय उसकी वास्तविक परीक्षा हुए बिना न रहेगी, ऐसा उसे लगा।

ऐसे तर्क-वितर्कों में आम्रभट ने पूरी दोपहरी बिता दी। मंजरी के दर्शन फिर किस प्रकार हो सके, ऐसा उपाय वह सोचने लगा। इतने में एक पार्श्वक ने खबर दी कि सोमेश्वर भट्ट मिलने आये हैं। आलसी आम्रभट उठ बैठा। उसकी मंजरी से सम्बन्धित भट जो आया था! विधि की सानुकूलता! क्या मंजरी ने नये दुर्गपाल को बुलाने के लिए

आदमी भेजा है ? या उसने सोमेश्वर भट द्वारा कोई सन्देशा भेजा है ?

जहाँ वह बैठा था, वहाँ सोमेश्वर आया और नमस्कार कर विनय से बैठ गया। आम्रभट ने नमस्कार स्वीकार की। थोड़ी देर दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे।

'भट जी, कैसे कष्ट किया ?' आम्रभट ने पूछा।

'महाराज !' शांत विनय से सोमेश्वर ने कहा, 'आपको नए दुर्ग के निरीक्षण के लिए ले जाने के लिए आया हूं।'

'अच्छा।' हँसकर आँबड़ ने कहा, 'दुर्ग की कुँजियाँ तुम्हारे पास हैं, ऐसा तो मैंने सुना था। अच्छा चलो।' कहकर आंबड़ कपड़े पहनकर तैयार हो गया। मंजरी की सेवा में रहने वाले सोमेश्वर के साथ घूमना भी आँबड़ को सुखदायक लगा।

'सोमेश्वर जी ! जब वह पालकी में बैठकर गढ़ की ओर जाने लगे तो आँबड़ ने बात छेड़ी, 'तुम भटराज काक के कुछ सगे सम्बन्धी हो ?'

'हाँ एक रिश्ता भी है—बहुत दूर का, वह मेरे गुरु हैं।'

'बहुत जबरदस्त आदमी हैं ?' काक की बात करते हुए मंजरी के विषय पर कैसे आया जाए यह विचार करते हुए आम्रभट ने पूछा।

'आप सब उनको सामान्य व्यवहार में जानते हैं, इसलिए उनकी वास्तविक महत्ता कभी भी आंक नहीं सकेंगे।'

'नहीं, ऐसा नहीं है।'

'मेहता जी ! उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन करने के लिए मेरी तरह आपको भी उनके चरणों की सेवा करनी चाहिए। उनकी युद्ध-कला और बुद्धि, उनके आचार-विचार और सिद्धान्त सभी जाने जा सकते हैं। यह कलियुग है और भृगुकच्छ पराधीन है, बस इसलिए काक भट दुर्गपाल के पद पर ही पड़े सड़ रहे हैं।'

'तब पाटण क्यों नहीं चले आते ?'

सोमेश्वर ने एक तीक्ष्ण दृष्टि आँबड़ पर डालकर मुस्कराते हुए कहा, 'आपके राजा में, मन्त्रियों में इतना साहस ही कहाँ है, जो उन्हें

अपने यहाँ आने दें। उन बेचारों को लेने के देने पड़ जाएं।'

आम्रभट खिलखिला कर हँस पड़ा। कैसा है इस लड़के का अभिमान और अज्ञान। सोमेश्वर भी एक सूखी हँसी हँसकर देखता रहा।

'सोमेश्वर! तुमने पाटण देखा है?'

'जी नहीं।'

'महाराज को, मेरे पिता को और मुंजाल मेहता को कभी देखा है?'

'नहीं, देखे तो नहीं हैं, पर उनके विषय में सुना बहुत कुछ है।'

'तब इन सबसे तुम्हारे गुरु जबरदस्त हैं?'

'मैं तो इतना ही जानता हूं कि वर्षों हो गये, पर न तो आप लोगों से जूनागढ़ जीता गया और न जीता जायेगा। और जिसने लाट पर विजय प्राप्त की, जिसने अकेले हाथों 'नवघण रा' को पकड़ा और शेष-नाग के पास से जिससे मुंजाल मेहता के पुत्र को ला दिया, उस महा-रथी को पाटण में रखने का आपके महाराज और मन्त्रियों में साहस नहीं है और उनका अनादर करने की प्रामाणिकता भी नहीं।'

'तुम भी अपने गुरु की ही छटा से बोलते हो।' आँबड़ ने हंसकर कहा, 'अथवा गुरुपत्नी के पास से यह सब सीख आये हो?'

पलभर के लिए सोमेश्वर को शंका हुई, आपने देवी की विद्वत्ता देखी है?' जरा तिरस्कार से सोमेश्वर ने पूछा।

'नहीं, सुना तो बहुत है।'

'किसी पंडित से जाकर पूछिएगा।'

आम्रभट के मुँह में पानी भर आया, 'तुम तो गुरु और गुरुपत्नी — दोनों के ही बड़े भक्त हो।'

सोमेश्वर के अन्तर में पूज्य भाव प्रकट हुआ। 'भटजी! इन दोनों के चरणों की सेवा के अतिरिक्त ईश्वर की सौगन्ध है कि मेरी और कोई इच्छा नहीं।'

'तब इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है ?' जरा हंसकर आँबड़ ने पूछा।

'इस प्रश्न का निर्णय मैं आज बारह वर्ष में भी नहीं कर सका। आम्रभट जी ! भटराज मर्दों को महारथी बनाते हैं और देवी पत्थर को पंडित बनाती हैं। इन दोनों में कौन बड़ा है यह कैसे समझा जाय ?'

आम्रभट को हेमसूरि याद आया। उसने उस पर अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न किया था, यह आंबड़ को बड़ा खल रहा था और हो सके तो जरा उसकी हंसी करने का उदात्त विचार उसके मस्तिष्क में आया।

'तुम्हारी देवी पंडितों के साथ विवाद करती हैं ?'

'हाँ, उनको कुछ अच्छा लगे तो।'

'हमारे खंभात के एक शास्त्र-विशारद यहां आये हैं। वह देवी से मिलने के लिए कह रहे थे।' आँबड़ ने गप्प मारी।

'देवी इस तरह चाहे जिससे नहीं मिलतीं। सोमेश्वर ने उत्तर दिया।

'हमें वहीं उतरना है क्या ?' आम्रभट ने गढ़ और पुराने शहर के बीच वाली खाई के आगे पालकी आने पर कहा।

'जी हां।'

वह पुराने और नए शहर के बीच वाली खाई के किनारे पर आ पहुंचे थे। पालकी ठहरी और आस-पास खड़े हुए आदमियों का अभि-वादन स्वीकार करते हुए दोनों खाई के आगे प्रतीक्षा करती हुई डोंगी में बैठे। थोड़ी देर में ही वह नवीन गढ़ की ओर उतरे और गढ़ में जाने के लिये पहाड़ी पर चढ़ने लगे।

सोमेश्वर परिचित होने के कारण जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा, पीछे हांफता हुआ आंबड़ चढ़ा।

सोमेश्वर ! यह नया शहर तो अभी बसा है न ?'

'जी हां, पहले छोटा दुर्ग था, उसे तुड़वाकर भटजी ने यह दुर्ग बनवाया है।'

'खूब सुदृढ़ दिखाई देता है।'

'महाराज ! यह गढ़ चालीस वर्ष तक घेरा बरदाश्त कर सके ऐसा है।'

'ऐं !' चकित होकर आम्रभट ने पूछा।

'जी हां।'

थोड़ी देर दोनों चुपचाप चढ़ाई चढ़ते रहे। अन्त में वे दरवाजे के पास जा पहुंचे।

'यह दरवाजा इस समय बन्द क्यों है ? सवेरे तो खुला था ?'

'भटराज गये तो केवल उस ओर का दरवाजा ही खोलने के लिए कह गये हैं।

'उन्हें भृगुकच्छ की अधिक चिन्ता है, ऐसा लगता है।' जरा असन्तोष से आंबड़ ने कहा।

'उन्हें न हो तो और किसे हो ?' तिरस्कार भरी आंखों से सोमेश्वर ने उत्तर दिया।

'ठीक, परन्तु दुर्गपाल तो मैं हूं।' हँसकर आम्रभट ने कहा।

'हां परन्तु आप नये हैं।' शान्ति से सोमेश्वर ने कहा।

सोमेश्वर ने दरवाजे की खिड़की खोली और अन्दर से एक सैनिक दौड़ता हुआ आया।

'देवा ! यह तो मैं हूं ! सोमेश्वर ! सोमेश्वर ने कहा, 'और यह हैं नये दुर्गपाल। पधारिये आम्रभट जी।'

वह दोनों अन्दर घुसे। आम्रभट को सोमेश्वर प्राचीर पर से ले गया।

इस नवीन भृगुकच्छ का प्राचीर देखकर आंबड़ को आश्चर्य हुआ। भृगुकच्छ नदी की घाटी पर स्थित विशाल तथा ऊंची पहाड़ी पर बनवाया गया था। और पहाड़ी पर बनवाया हुआ यह प्राचीर नदी के तल से इतना ऊँचा था कि यह दुर्ग कभी जीता जा सके इसकी कल्पना करना भी कठिन था।

'यह दुर्ग इतना बड़ा किसलिए बनवाया गया है ?'

'क्योंकि चारों ओर से इसे नदी ने घेर रखा है।' सोमेश्वर ने कहा, 'आवश्यकता पड़ने पर आधा गांव अन्दर रखा जा सकता है। इसमें तीन हजार सैनिक आराम से रह सकते हैं।'

'यदि कोई घेरा डाल दे, तो इतने बड़े दुर्ग में लोग भूखों न मर जायें।'

'नहीं, यह इस प्रकार बनाया गया है कि तीन ओर से तो इसे भय ही नहीं। आवश्यकता पड़ने पर कुछ सैनिक इसकी महीनों तक रक्षा कर सकते हैं।'

'वह क्या है ?' एक घर की ओर संकेत कर आम्रभट ने पूछा।

'वह कोठार है।'

'अरे इतना बड़ा ?'

'हां, इसे सदा भरा हुआ ही रक्खा जाता है।'

'अब कौन घेरा डालने वाला था ?' उलाहने जैसे स्वर में आंबड़ ने पूछा।

'सचेतन नर सदा सुखी।' कहकर दोनों चारों ओर घूम कर देखने चले।

२५

आम्रभट और सोमेश्वर दुर्ग का निरीक्षण कर रहे थे, तो देवा नायक कृपाल उनके पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी हवा में लहरा रही थी, उसकी दृष्टि सम्मान में नीची झुकी हुई थी, फिर भी उसके वृद्ध परन्तु सशक्त हाथ ने भाला अस्वाभाविक कठोरता से पकड़ रक्खा था। उसके झुर्रीदार माथे पर इस समय और भी अधिक झुर्रियां

पड़ी हुई थीं। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह छिपी नजर से आम्रभट की ओर देख लेता था।

'वह ध्रुवसेन का पुराना सैनिक था, और काक के अनुचर रूप में पाटण के लश्कर में सम्मिलित हुआ था। ध्रुवसेन का पतन हुआ और लाट पर पाटण का शासन स्थापित हुआ परन्तु उसे इसकी कुछ चिन्ता नहीं थी। प्रतिदिन संध्या को वह एकान्त झोंपड़ी से निकल कर काक के चबूतरे पर जा बैठता, और जब काक अपने घर आता तो पूछता—'भाई कैसे हो?' प्रसन्न हो न?' तब देवा जवाब देता, 'हाँ, भाई!' और चुपचाप लौट जाता। सम्पूर्ण सृष्टि में केवल इतनी-सी बात में ही उसे रस था।

उसके एकाकी जीवन को संसार से जोड़ने वाली डोरी एक मात्र काक था। और इस डोरी को पकड़कर वह भवसागर पार करने के लिए भी प्रस्तुत था। उसके एकलक्ष्यी मस्तिष्क में काक ने ऐसा स्थान बना लिया था कि उसकी परिस्थिति में परिवर्तन उसे सहन नहीं था। काक दुर्गपाल हुआ, विवाह किया, भटराज हुआ—यह उसे जरा भी अच्छा नहीं लगा। इस परिवर्तन से उसे ऐसा लगा कि काक उसका न रहकर दूसरे का होता जा रहा था।

काक ने उसको गढ़ के कोठार का नायक नियुक्त किया, पर उसको यह अच्छा नहीं लगा, फिर भी वह अपने भाई की आज्ञा की उपेक्षा न कर सका।

कल वह शिष्टाचार के अनुसार साम्बा वृहस्पति के बाड़े में गया था और काक से मिला था।

'देवा! मैं वंथली जा रहा हूं।'

देवा ने ऊपर देखा। आँखों में व्याकुलता थी।

'मैं भी चलूँ भाई?'

काक स्नेह भरी हँसी हँसा, 'अरे नहीं देवा भाई! फिर यहाँ कौन रहेगा?'

'जी।'

'मंजरी को देखते रहना।'

'जी।' कहकर देवा वहीं बैठ गया। उसके वृद्ध हृदय की समझ में नहीं आए ऐसी वेदना का अनुभव उसने किया। काक कुछ क्षण उसकी ओर देखता रहा, उसके हृदय की व्यथा भी उसने समझी।

'देवा! मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। तू गढ़ की रक्षा करना।'

'जी।' कहकर देवा देखता रहा। उसकी आँखों में आँसू छलछला उठे। उसे लगा, जैसे कोई मां का इकलौता बेटा छीने लिए जा रहा हो।

'भाई मैं जा रहा हूं।'

'हां' जाओ पर जरा सतर्क रहना।'

देवा चुपचाप बैठा रहा, और घर में जाते हुए काक की ओर देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने निःश्वास छोड़ी और सिर हिलाता हुआ वह गढ़ में लौट आया। तब से उसका सिर झुका हुआ है और उसका बोलना भी बन्द हो गया। उसे भ्रम हुआ है कि उसका 'भाई' अब फिर नहीं मिलेगा।

इस समय नये दुर्गपाल को देखकर उसकी आंखों में विष उतर आया। भाई के अतिरिक्त किसी दूसरे को दुर्गपाल होते हुए नहीं देख सकता।

चुपचाप वह चल रहा है। कोठार के आगे आकर आम्रभट और सोमेश्वर नदी की ओर देखने लगे। देवा चुपचाप सोमेश्वर के पास गया।

'सोमेश्वर!' देवा ने पूछा, 'तुम्हें तो देर लगेगी?'

सोमेश्वर हंसकर उसकी ओर मुड़ा। काक के सभी साथी देवा के प्रति प्रीति रखते थे। 'ओह! भाई के घर जाना है न?'

'हाँ समय तो हो गया।'

'परन्तु आज तो तेरा 'भाई' है नहीं।'

'इससे क्या?'

'जाओ तब।' सोमेश्वर ने कहा।

'सोमेश्वर ! कोठार देखना हो तो देख लो।'

'आप कोठार देखना चाहते हैं ?' सोमेश्वर ने आंबड़ से पूछा। आंबड़ को इस नायक की अशिष्टता तथा सोमेश्वर के साथ बातची करने का ढग पसन्द नहीं आया।

'यह कौन है ?' आंबड़ ने तिरस्कार से पूछा।

'यह भटराज का विश्वास पात्र नायक है और यहां के कोठार का रक्षक है।'

'इस तरह कहां जाने के लिए उतावला हो रहा है यह ?' जरा रौब में नये दुर्गपाल ने पूछा।

देवा की नीची भुकी हुई आंखें जरा कठोर हो गईं।

'यह भटराज के घर जाना चाहता है, अपना दैनिक कम निभाने।'

तुम्हारे आदमी बड़े मुँह लगे हैं जी ! आम्रभट ने कहा।' देवा ने ऊपर देखा।

महाराज ! देवा सैनिक मात्र नहीं है, घर के आदमी जैसा है। जा देवा !' सोमेश्वर ने कहा।'

देवा बिना कुछ कहे चला गया।

'प्रत्येक सैनिक यदि घर का आदमी होने लगेगा तो इस गांव का क्या होगा ?'

'भट जी !' नम्रतापूर्वक सोमेश्वर न कहा, इसके जैसा विश्वासपात्र दूसरा नहीं। इसका अपमान करने से लाभ नहीं है ?'

'लगता है यहां दुर्गपाल के मान के अतिरिक्त सम्पूर्ण गांव का मान भस्म हो चुका है।'

देखिए न, आज पन्द्रह वर्ष से प्रतिदिन यह भटराज के यहां जाता है। वह जाएगा, थोड़ी देर तक चबूतरे पर बैठेगा और लौट आयेगा परन्तु गए बिना रह नहीं सकता।'

'मुझे ऐसे नौकर अच्छे नहीं लगते।'

'ऐसे नौकर आपको मिलेंगे भी नहीं।' तनिक मुस्करा कर सोमेश्वर

ने कहा। वह आगे बढ़े।

देवा नायक चुपचाप गढ़ से उतर कर पुराने नगर में होकर साम्वा बृहस्पति के बाड़े में आया और काक के चबूतरे पर इस तरह मौन होकर बैठ गया मानो किसी के आने की बाट जोह रहा हो। अंधेरा होने लगा उसने ऊपर देखा और यह सोचकर कि काक की बाट जोहना व्यर्थ है वहाँ से उठकर चला।

'कौन है ? तभी द्वार खोलते हुए मणिभद्र ने पूछा।

'मैं देवा नायक।'

'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं, यों ही।'

'कौन, नायक ?' अन्दर से मंजरी की आवाज आई। वह तुरन्त बाहर आई। 'आओ, देवा ! बाहर क्यों बैठ गये ? '

'कुछ नहीं, यों ही।' कहकर उसने निःश्वास ली।

'देवा ! तेरे भाई थोड़े दिन में आ जायेंगे।'

वृद्ध ने गर्दन हिलायी; 'नहीं देवी ! मैं अब उनसे भेंट नहीं कर सकूँगा।'

'क्यों ?' फीकी हँसी हँसकर मंजरी ने कहा।

'कल मेरी झोंपड़ी पर उल्लू बोला है।'

'अरे तो उससे क्या होता है ?' मंजरी ने साहस से कहा। 'तेरे भाई तो बस आये ही समझ।'

'भाई तो आयेंगे, किन्तु मुझसे भेंट न होगी। देवी ? 'कोकाभाई' को दिखाओगी ?'

इस वृद्ध का ऐसा स्नेह देखकर मंजरी की आंखों में पानी आ गया; 'आह, अन्दर आ।'

देवा अन्दर गया और बोसरि को देखकर पुनः बाहर आया। जिस समय वह धीमी गति और भारी हृदय से गढ़ की ओर मुड़ा उस समय रात गहरी हो चुकी थी। वह नीची दृष्टि किये गढ़ की ओर चल पड़ा।

खाई के निकट आते-आते उसे गढ़ की ओर देखते हुए दो पुरुष दिखाई दिये। उसने ऊपर देखकर खांसा और फिर पूछा—

'कौन है ?'

एक आदमी के सिर और कन्धों पर दुशाला पड़ा हुआ था। वह आगे आया और निर्भीक स्वर से बोला—'क्या है ?'

'यहाँ क्या कर रहे हो ?'

'ओहो ! कौन देवा ?'

देवा ने ध्यान से देखा, 'तुम कौन ?'

'रेवापाल, अरे मुझे नहीं पहचाना ?' रेवापाल ने तनिक दुशाला हटाकर कहा।

'भाई, आप यहां कैसे ?'

'थोड़ा घूमने आए हैं। क्या काक के घर होकर आया है ? तेरा भाई तो गया न ?' रेवापाल ने तिरस्कार से कहा।

'इससे क्या ? थोड़े दिनों में तो वह वापस आयेंगे।

'क्या पागल हो गया है ?'

'क्यों ?'

'वह अब नहीं आयेगा।'

'क्यों ?' फटी आंखों से देवा ने पूछा।

'जयदेव महाराज अब उसे भृगुकच्छ नहीं आने देंगे।

'कैसे जाना ?'

'उसी ने स्वयं मुझ से कहा था।'

'और यह नया दुर्गपाल यहीं रहेगा ?'

'हां, देवा। तेरे-मेरे दुर्भाग्य ! काक समझ बैठा था कि कोई कुछ नहीं कह सकता। अब वह पछताएगा। देवा ! तुझे भी गढ़ छोड़ना पड़ेगा।'

'क्यों ?

'नया दुर्गपाल इसमें पट्टणियों को बसाएगा।'

कैसी बात करते हो ? विस्मय से उसने पूछा ।

'देखना ! तुम मेरी नहीं मानते लेकिन तुम्हारा बनाया गढ़ ही तुम्हारा सत्यानाश करेगा, देख लेना।'

देवा मौन रहा।

'दो हज़ार पट्टणी इसमें आ जायेंगे तो तुम्हारा सम्पूर्ण नगर त्राहि-त्राहि कर उठेगा।'

'ऐसी किसकी मजाल है कि सम्पूर्ण नगर को दुःख दे सके।'

'तुम्हारे महान् दुर्गपाल को तो घड़ी के छटे भाग में नगर से हटा दिया, अब तुम्हारा है ही कौन ? आंबड़ खम्भाती और माधव नागर ?' रेवापाल तिरस्कार से हंस पड़ा, 'हां, एक को तो भूल ही गया।'

'कौन ?'

'वही नेरा तोतला।'

देवानायक स्तब्ध हो गया, 'क्या कहते हो ?'

'देवा !' रेवापाल ने नम्रतापूर्वक कहा, 'मैं कभी झूठ नहीं कहता हूं ? मैं स्वीकार करता हूं कि तेरे भाई में और मुझ में वैर है। किन्तु वह, जैसा भी था, लाट का हितेच्छु था। वह गया—और देखना वह लौटकर आने का नहीं।'

एकबारगी देवा का शरीर काँप गया।

'आंबड़ केवल अवसर की बाट देख रहा था, आज मेरे देखते-देखते नेरा को भट बनाया है और कल से गढ़ में रहने की आज्ञा दी। बोल, आ गए लाट के दिन कि नहीं ?'

देवा बोला नहीं। उसका रोम-रोम सिहर उठा। कल उल्लू बोला था, किसी उद्देश्य से ही !

'देवा ! एक ही मार्ग है,' रेवापाल ने कहा।

'कौन-सा ?'

'एक वर्ष तक चल सके इतना अनाज तो गढ़ में है ?'

'आपने कहाँ से जाना ?'

'जान ही लिया कहीं से। तुझे पट्टणियों को निराश करने का एक ही मार्ग है।'

'कौन सा ?'

'यहाँ से अनाज हटा देना होगा।'

'कहाँ ?' चकित होकर देवा ने पूछा।

'जहां इच्छा हो।'

'और भाई आए तो ?' देवा ने पूछा।

'देवा मैं गंगानाथ भगवान की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मेरा अभिप्राय यही है कि यह पट्टणी सेना गढ़ में आनन्द से न रह सके। एक काम करेगा ? अभी अनाज निकाल दे। यदि तेरे भाई आ गए तो दूसरे दिन मैं कोठार फिर से भरवा दूँगा।'

'अगर किसी ने जान लिया तो ?'

'कौन जानेगा ?'

'किन्तु निकाला किस प्रकार जायेगा ?'

'देख, प्रतिदिन रात को नवदेवी के घाट के सामने मेरे आदमी नौका लेकर आयेंगे। तू ऊपर से बोरे गिरा देना।'

'मेरे भाई डांटेंगे तो ?'

'पागल ! तेरे भाई आयेंगे ही नहीं।' रेवापाल ने कठोरता से कहा। देवा काँप उठा। उसे कल उल्लू बोलता जो सुनाई दिया था।

'धोखा तो नहीं है ?'

'सौगन्ध ले ले।'

'तो अपनी सात पीढ़ी दी सौगन्ध, खाओ ?' देवा ने कहा।

'हाँ। मेरी सात पीढ़ी की सौगन्ध।'

देवा थोड़ी देर चुप रहा। उसने एकाएक ऊपर देखकर कहा, महाराज ! कल रात को नाव भेजना। यदि मेरा तोतला की बात ठीक हुई तो थैले गिराऊँगा' कहकर वह जल्दी से चला गया।

रेवापाल हँसा। 'लाट का भाग्य चमक रहा है' वह बोला, और अपने साथी को लेकर चला गया।

२६

तेजपाल के उपाश्रम में हेमचन्द्र सूरि मौन धारण किये हुए थे। वह कुछ ही दूर पर रखे हुए अपने 'प्रोंछन' की ओर देख रहे थे। इस युवक सूरि को ध्यान रखने के सिवाय इस प्रकार बैठने की आदत नहीं थी। आज की यह स्थिति उन्हें तनिक असाधारण लग रही थी।

जिस आयु में और लड़के झूलने में झूलते हैं, उस समय इन्होंने वीत-राग होने की इच्छा प्रकट की थी; जिस समय युवक जीवन में अंकुरित नवीन आह्लादों का अनुभव करने को छटपटाते रहते हैं, उस समय इन्होंने सूरिपद पाया, जब और साधु अभ्यास करना प्रारम्भ करते हैं उस समय यह शास्त्र-विशारद होने आये थे। प्रत्येक मनुष्य इनके अपूर्व चरित्र, निःसीम ज्ञान और अगाध चतुरता को देखकर चकित हो जाता था। इतने थोड़े समय में ही जैनविद्या और यश के व्योम में एक अद्भुत अरुणोदय का आभास लोगों को होने लगा था।

यौवन आगमन के पश्चात् जीवन में प्रथम बार उन्हें सावधानी से आत्म-निरीक्षण करने की आवश्यकता पड़ी। उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क अन्य लोगों से निराले ही प्रकार का था। उन्हें कभी संयम रखने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी थी; विकार क्या वस्तु है इसका अनुभव कभी किया नहीं था। उनकी यह निश्चल श्रद्धा थी कि वह आजन्म अविकारी हैं।

अधिकांश जनों के मस्तिष्क कीचड़ भरे पोखर के समान होते हैं, कई के नहीं, नाममात्र लहरियों से अलंकृत, स्थिर, बंधे हुए, जल से भरे तालाब जैसे होते हैं। कई एक प्रवाहयुक्त नदी के समान होते हैं, जिनमें उछलती लहरियां भी होती हैं और शांत सरलता भी। कुछ के मस्तिष्क समुद्र के समान होते हैं—शांत सरोवर की अगाधता, उठती-गिरती लहरों का आनन्द, दुर्जय और उछलता हुआ उत्साह, प्रलय जैसी चंचल तरंगों का तांडवनृत्य।

इस युवक का मस्तिष्क इनमें किसी प्रकार का नहीं था। उनमें आरसी की स्वच्छता, शांति, उदासीनता और सर्वग्राह्यता थी।

वीतराग या निर्द्वन्द्व होते, औरों को कठिनाई होती है; जितेन्द्रिय होने के लिये व्रतों की परम्परा का पालन करना पड़ता है, किन्तु इस शाँत, स्थिर एवं भावनाविहीन हृदय को जितेन्द्रिय अथवा निर्विकार बनने के लिए प्रयत्न करना ही नहीं पड़ा। कारण कि उनमें विकार अनुभव करने की शक्ति थी। जिनशासन के स्तंभ विकार ग्रहण करने की शक्तिहीनता को देखकर स्तब्ध रह जाते और पूर्व जन्म के सुसंस्कार और क्षयोपशमन का ही परिणाम समझकर स्पर्द्धा करना त्याग देते थे।

निर्मल आरसी-सा मस्तिष्क जिस ओर सूरि की इच्छा होती उसी दिशा में घूम जाता था, और इच्छित विषय का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता था। इस प्रकार वह बिना प्रयत्न किए ही अपूर्व था, इसका हेमचन्द्र को पूरा-पूरा भान था।

इस उम्र में प्रथम बार उसके मस्तिष्क में संशय उत्पन्न हुआ। क्या मस्तिष्क पर विकार की छाया पड़ी है? अन्य लोगों में तो ऐसा संशय उत्पन्न ही नहीं होता; परन्तु यह अद्भुत नवयुवक इतना-सा संशय होते ही उसके अनुसंधान में लग गया।

कल उसने वर्षों पहले देखी एक स्त्री का मुख देखा, एक मूर्ख द्वारा उसकी सोची हुई बाजी को उलटते देखा और यह बाजी यह मूर्ख उस स्त्री की सलाह से ही उलट रहा था, ऐसी उसे आशंका हुई। उसने कई प्रकार की स्त्रियां देखी थीं, कई मूर्खों को बाजी उलटते हुए देखा था कई स्त्रियाँ बाजी उलटने में समर्थ होती हैं। इसका भी उसे अनुभव था। यह विकार तो नहीं था किन्तु विकार का संशय ही अशुभ होता है। विकार का संशय उत्पन्न हुआ है ऐसा भ्रम ही मस्तिष्क में क्योंकर हुआ? अडिग नैयायिक की तीक्ष्णता से सूरि ने यही प्रश्न अपने आप से किया।

जिस समय उसने दीक्षा ली थी उस समय इस स्त्री को देखा था

ऐसा कुछ-कुछ स्मरण था, तत्पश्चात् इसे काक ले गया और उससे ब्याह कर लिया वह भी उसकी जानकारी के बाहर नहीं था, और इस विद्वान और सजग स्त्री ने आंबड़ जैसे को मात दी थी इसमें ऐसा कुछ नहीं था। जिससे उसके स्थिर चित को किंचित मात्र भी अस्थिर होने का कारण मिले। 'तो यह संशय उत्पन्न हुआ कैसे ?' हठी बनकर हेमचन्द्र सूरि ने अपने निर्मल मस्तिष्क से प्रश्न किया।

महाराज ! प्रणाम ! आम्रभट का तनिक उपहास करता-सा स्वर सुनाई पड़ा। उसने आकर प्रणाम किया।

'कौन आंबड़ ! आओ, धर्मलाभ।' सूरि ने कहा।

आम्रभट और हेमचन्द्र बचपन के मित्र थे, एक ही घर में बड़े हुए थे, और दोनों उदा मेहता के सर्वव्यापी खेल के खिलौने थे। फिर भी इस प्रतापी बालसूरी को सर्वोपरि बनाने के उदा मेहता के प्रयत्न के कारण खंभात में हेमचन्द्र सूरी ने ऐसा आडम्बर रच रखा था, मानो वह कोई तीर्थंकर रहा हो। इसलिये साधारणतया आम्रभट को उसे इस प्रकार सम्बोधित करने का साहस नहीं होता। परन्तु कहावत प्रसिद्ध है कि कोंचे हुए नाग से कोंचा हुआ प्रणयी बुरा होता है। उसके सम्मान को धक्का पहुंचाया होता तो आंबड़ सहन कर लेता, किन्तु अब सूरि ने उसकी हृदयेश्वरी के मान को ही तोड़ने का काम प्रारम्भ किया तो उसको कैसे सहन हो सकता था ?

आम्रभट के मस्तिष्क में एक बहुत ही विनोद-भरी योजना आई। मंजरी पंडित शिरोमणि है इसमें तो कोई संशय था ही नहीं। यदि यह सूरि उससे हार जाय तो इसे उचित शिक्षा मिले। उदा मेहता का पुत्र ऐसा विचार करे यह आकाश-पाताल को एक करने जैसा था, किन्तु इस समय आंबड़ के मोह का पार नहीं था। अधिक सच तो। एक क्षण भर के लिए उसकी हृदयेश्वरी की विजय का विचार उसके लिए संसार का सर्वश्रेष्ठ आनन्द हो उठा था।

इसमें उसका एक स्वार्थ था। वह प्रातःकाल माधव के पास

मन्त्रणा करने काक के यहाँ गया था। बाहर के बाड़े के दालान में वह बैठा, भृगुकच्छ के अग्रगण्य लोगों से भेंट की और उससे वार्तालाप भी किया, कुछ थोड़ा-बहुत सूझा वैसा प्रबन्ध भी किया। परन्तु प्रतिपल उसका मस्तिष्क अन्दर जाने का बहाना ढूँढ़ रहा था। अन्त में जब जाने का समय हुआ तो उसने बड़े साहस से सोमेश्वर से कहा—'देवी हैं ?'

'हाँ।' सोमेश्वर की आँखों में तनिक शंका झलकी।

'हेमचन्द्र सूरि का सन्देश कहना है। पूछो, पल-भर के लिए भेंट कर सकेंगी ?' आँबड़ ने धड़कते हुए हृदय से पूछा। या तो दुर्गपाल की सत्ता का गर्व या फिर मंजरी के सान्निध्य के कारण उसका साहस बढ़ता जा रहा था।

सोमेश्वर ना नहीं कह सका। वह मंजरी से पूछ आया और आँबड़ को अन्दर ले गया। मोह से चकराए हुए मस्तिष्क से आम्रभट ने नमस्कार किया, और संकेत से दिखाये हुए आसन पर बैठकर बोला—'देवी हमारे खम्भात के हेमचन्द्र सूरि यहाँ पधारे हुए हैं और शीघ्र ही वह यहाँ से जाने वाले हैं। बड़े समर्थ विद्वान् और तपस्वी हैं।'

'मैं जानती हूं।' कहकर मंजरी मुस्करा दी। आम्रभट दन्तावलि के सौन्दर्य को देखने में क्षण-भर के लिए बात करना चूक गया। फिर कहा, 'जाने से पहले दुर्गपाल महाराज के यहाँ 'गोचरी' के लिए बुला लें तो उन्हें भी अच्छा लगेगा और मैं समझता हूं कि भृगुकच्छ की भी शोभा रह जायगी।'

तभी मंजरी और सोमेश्वर की आंखें एक हुईं।

'भट जी ! किन्तु हम निपट मिथ्या दृष्टि हैं।' मंजरी ने मुस्कराकर कहा।

'आप भूलती हैं। हम जैन ऐसे अवांछित भेद नहीं रखते। और सूरीजी की उदारता के तो क्या कहने !' सम्भव है योजना सफल न हो इसलिए आम्रभट आगे बोला, 'और आपकी विद्वत्ता के विषय में

सुनकर आपसे भेंट करने की उनकी बड़ी इच्छा भी है।'

पल-भर मंजरी मौन रही। फिर बोली, 'अच्छी बात है, तो उन्हें आप दोपहर को बुलाइये। उन्होंने जब से दीक्षा ली तब से भेंट ही नहीं हुई। सोमेश्वर! तू कह आयेगा?'

'इन्हें भेजने की आवश्यकता नहीं है।' आम्रभट ने कहा, 'मैं वहीं जा रहा हूं। मैं कह दूँगा।' उसने विदा ली और मंजरी तैयारी करने के लिए उठी। सोमेश्वर के अन्तर में संशय की ज्वाला प्रकट हुई—'यह छोकरा यहां आया क्यों था?'

वहाँ से सीधा आम्रभट तेजपाल के आश्रम में चला आया और हेमचन्द्र से भेंट की।

'महाराज दुर्गपाल के यहाँ 'गोचरी' का न्यौता है।'

सूरी चौंका, क्षण भर के लिए उसके तेजस्वी नेत्र स्थिर हो गए। ऐसा लगा मानो विकार-ग्रसित हृदय प्रतिध्वनि कर उठा हो।

'काक के यहाँ?'

उसकी स्त्री आपके दर्शन करना चाहती है। मेरे हाथ सन्देशा भेजा है।'

हेमचन्द्र को विश्वास हो गया कि यह दुर्गपाल की स्त्री के पीछे उन्मादी हो गया है। आम्रभट को उपदेश देने को जी हुआ कि वह शीघ्रातिशीघ्र जाकर चौथा अणुव्रत करने बैठ जाय, किन्तु उसकी जिह्वा न खुली। स्वयं उसकी क्या दशा है? वह स्वयं अभी क्यों चौंक उठा। इस तीव्र बुद्धि वाले युवक ने अपने मस्तिष्क से हिसाब मांगा।

आरम्भ में उसे विचार आया कि नहीं जाना चाहिये। हेमचन्द्र ने आंखें मींच लीं: क्या सचमुच विकार आ गया है? अथवा इस डर से कि कहीं विकार बढ़ न जाय इस स्त्री को न देखने की यह उचित प्रेरणा हो रही है? क्या उसे भी और साधुओं के समान, साधारण श्रावकों के समान ऐसे प्रसंगों में मनोनिग्रह करने की आवश्यकता पड़ेगी? क्या वह ऐसी अधोगति को पहुंच गया है? जिसे इन्द्रियों के जीतने का

कभी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, जो पूर्व जन्म के प्रताप से अपने को वीत-रागी मानता था, उसे आज इन्द्रियों को जीतने का प्रयत्न करना पड़ेगा? 'नहीं—' उसके अन्तर ने उत्तर दिया। संशय करने के लिए कोई कारण ही नहीं था। उसने स्थिर होकर आम्रभट की ओर देखा।

'आंवड़! तुझे कल से एक व्रत करना पड़ेगा। तेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है।'

आम्रभट हँस पड़ा, आप तनिक भी चिन्ता न कीजिए। आप आयेंगे न!'

'हाँ!' शांति से हेमचन्द्र बोला, 'मैं सोचूँगा।'

'अच्छी बात है। आप दोनों विद्वान् हैं अतएव मेरा विश्वास है कि आपको भी लाभ होगा।' आखिरी दाव फेंक कर आँवड़ उठा और प्रणाम कर विदा हुआ।

'धर्मलाभ।' सूरि ने कहा और फिर आत्मनिरीक्षण में रत हो गया।

२७

काकभट के यहां खंभात के सुविख्यात सूरि 'गोचरी' के लिए जा रहे हैं यह सुनकर लोग कुछ चकित हुए।

जिस समय हेमचन्द्र सूरि अपने छः शिष्यों सहित सास्वा बृहस्पति के बाड़े में आए उस समय उसके साथ आम्रभट भी था। सोमेश्वर, मणिभद्र और पुराणी काका साधुओं का अभिवादन करने के लिए आये और स्वागत करके उन्हें अन्दर ले गए।

आवश्यकता से अधिक हेमचन्द्र नहीं बोलते थे। उनका सिर तनिक झुका हुआ था। वह अपने क्षीण और भावनाविहीन मस्तिष्क को कठो-रता से अपनी अविकारी स्वस्थता की रक्षा करने का आदेश दे रहे

थे। उनके लिए उनके जीवन की परम कसौटी आ रही थी। अब तक निर्विकार होने को वह बहुत तुच्छ मानते थे। क्योंकि स्वयं अविकार होकर अविकारीपन को श्रेष्ठ मानते थे। विकार को निर्मूल करने के लिए किसी तप की आवश्यकता पड़े यह उनके लिये निर्बलता का चिन्ह था। वासना जीतने के स्थान पर एक ऐसी स्थिति प्राप्त करना उनके जीवन का महान् लक्ष्य था, जहाँ पहुंचकर वासना का अनुभव ही न हो सके। और ऐसी स्थिति प्राप्त करने में उन्हें अब तक कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी।

जिनशासन की रक्षा करना और उसके उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करना उनके अहिंसा-मंत्र का प्रचार करना और उसके लिए किसी-न किसी प्रकार से राज्यसत्ता हस्तगत करना यही उनका परम ध्येय था। जीवन के साथ उनका संसर्ग मात्र इस आकांक्षा को सिद्ध करने के प्रयासों तक ही सीमित था। मानव हृदय के उत्साह, आनन्द या व्यथा की ओर अनुकम्पा या स्नेह उनकी दृष्टि नहीं देखती थी। उनके विचार में यह सब तुच्छ जंतुओं की विकारी लीला थी; उनकी ओर वह किसी महामोह की ठंडी पीड़ाओं का हनन करने वाले शस्त्रोपचारी वैद्य के समान देखते थे।

'पधारिए, महाराज!' मंजरी का सुसंस्कृत स्वर सुनाई पड़ा, 'विराजिए।'

नीची दृष्टि करके खड़े हुए सूरि ने ऊपर देखने से पहले धीरे से रजोहरण से धूल बुहारकर 'धर्मलाभ' का उच्चारण किया। जब उन्होंने ऊपर देखा तो द्वार में श्वेत वस्त्र में शारदा के समान कांतिवान्, लम्बी और चित्ताकर्षक सुन्दरी खड़ी हुई दिखाई दी। उसके मधुर होठों पर स्वागत की मुस्कराहट थी; तेजस्वी आंखों में स्नेही हृदय के उल्लास का प्रतिबिम्ब था। सूरि का जैसा मस्तिष्क था वैसा ही उनकी निरीक्षण शक्ति भी थी। अलंकार शास्त्र और काव्य से याद किया शब्द-समुच्चय धीरे-धीरे सुनने लगा। 'मदालसा,' 'चन्द्रानना,' 'तनुयष्टि,' नयन

गौरव,'... इस सम्पूर्ण योजना में शब्द और वस्तु को रचने वाले का निष्पक्ष अधिकार था । उसमें न सौन्दर्य भक्तका उत्साह था और न कवि की भावना । भक्ति-भार से सोमेश्वर की दृष्टि झुक गई, मोह की अधीनता से आम्रभट की आँखें जैसे फट गईं । दूसरे साधुओं पर इस दर्शन की जो प्रतिक्रिया हुई उसे वह केवल मुँह फाड़कर ही बता सके ।

मंजरी ने वंदना की, 'सूरिजी ! आप और साधु-मण्डल को मेरी वंदना ।'

मंजरी वस्त्र सिकोड़कर पुराणी काका और मणिभद्र के मध्य में बैठ गई और गर्व-भरी दृष्टि से दिग्दिगंत में जिसकी ख्याति फैली हुई थी उस बालसूरि की ओर निहारने लगी ।

'देवी !' आँवड़ ने कहा, 'सूरिजी हमारे खम्भात के माथे के मुकुट हैं ।'

'मैंने इन्हें बहुत वर्ष हुए तब देखा था ।' मंजरी ने मुस्कराते हुए कहा, 'कहिए महाराज ! याद है ? आपने दीक्षा ली उससे पहले हम दोनों एक ही उपाश्रम में थे । आपने मुझे भी दीक्षा लेने के लिए कहा था, याद है ? आप उस समय आठ वर्ष के थे ।'

'मुझे याद है ।' अविकत्थन भिक्षु के ढंग से हेमचन्द्र ने कहा ।

'ऐसा ? यह तो मुझे कुछ मालूम नहीं ।' आंबड़ बोला ।

आंबड़ को देखकर उदा मेहता की याद आई, और मंजरी के मुख पर रेखाएँ खिचकर मिट गईं । उसने आंबड़ को सामने देखकर कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? सूरिजी के साथ वह मुझे भी दीक्षा देने वाले थे ।'

'फिर ?' आँवड़ के कानों में उड़ती बात आई अवश्य थी, किन्तु मंजरी के मुंह से सुनने के लिए उसने पूछा ।

'फिर !' मंजरी नीचे देखकर हस पड़ी । उसके हास्य की तरंगें कमरे में प्रसारित हो उठीं । सूरि के अविकारी कान को यह स्वच्छन्दता

खटकी। उसके मस्तिष्क ने केवल इतनी सी टीका की—'इस हास्य को विद्युत लेखा कहा जा सकता है।'

'फिर क्या!' मंजरी ने बात आगे बढ़ाई, 'मैं भाग गई। महाराज! दीक्षा लेने के पश्चात जिस शांति की खोज में आप थे क्या वह मिली?'

'मेरे मन में अशांति थी ही नहीं।' हेमचन्द्र ने कहा। 'किन्तु जिनशासन का श्रेयस्कर पथ छोड़ देने के पश्चात तुम अपना ब्राह्मणत्व तो रख सकीं न?'

मंजरी के कानों को इन शब्दों में कर्कशता लगी। इस प्रश्न में उसे उलाहना सा लगा। उसने सावधान होकर ऊपर देखा।

मेरे ब्राह्मणत्व को अथवा आपकी दृष्टि में मेरी मिथ्यादृष्टि को—हरने की किसी में शक्ति थी ही नहीं।

सूरि मुस्करा दिए, 'तुमने दीक्षा ली होती तो जिनशासन की आभूषणस्वरूप साध्वी बनतीं।' मंजरी का सुडौल सिर गर्व से ऊंचा उठा। उसकी आंखों की चमक बढ़ गई। उसने आंखें तनिक खोलीं, उनमें चमक लाने की दक्षता सभी देखने लगे।

'मैं भाग गई तो आपका सम्पूर्ण शासन भी जो मुझे नहीं दे सकता था वह मुझे मिला।'

'क्या?' अनायास आंबड़ के मुंह से निकल गया।

मंजरी यह प्रश्न सुनकर हंस पड़ी। उसके नयनों में दया और वाणी में मृदुलता आ गई, 'तुम्हारे दुर्गपाल।'

'काक भटराज।' सूरिजी इस प्रकार बोले मानो आम्रभट को उत्तर दे रहे हों। मंजरी ने इसमें छिपा हुआ कटाक्ष भी भांप लिया।

'हां।' उसकी वाणी में दुर्जय गर्व की झंकार थी। उसकी सुन्दर ग्रीवा की नसें कुछ फूल कर उठ आईं, 'गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य दोनों का दर्प भंग करे ऐसा भटराज!' वह हंस दी। उस हंसी में विजय-दुन्दुभी की प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्र सूरि को लगा कि उसके जैसे साधु के सामने मंजरी

आडम्बर दिखायें यह सर्वथा अनुचित है। उसे भास हुआ मानो उसे प्रशंसा करने के लिए ही बुलाया गया था।

'भगवती ! लगता है काव्य-पुराणों में बहुत रुचि है तुम्हारी !' हँसकर सूरि ने कहा ।

उसकी हंसी में पिता जैसा वात्सल्य था। यह देखकर मंजरी क्रोधित हो गई। आम्रभट के कथनानुसार हेमचन्द्र उससे भेंट करना चाहता था तो क्या उसका अपमान करने के लिए !'

'रुचि !' सोमेश्वर को भी तनिक खटक गया था इसलिए वह बीच ही में बोला, 'सूरि जी ! लगता है आप देवी की शास्त्रज्ञता से परिचित नहीं हैं।'

बस आंबड़ को सहारा मिल गया। मंजरी की प्रशंसा करके हेमचन्द्र को नीचा दिखाने का यही अवसर उसे उपयुक्त दिखाई दिया, 'सोमेश्वर ! हमारे सूरिजी अन्य शास्त्रज्ञों के समान नहीं हैं। यह हमारे गुजरात के अद्वितीय विद्वान् हैं। देवी चाहें तो शास्त्रार्थ कर लें।'

मंजरी ने चौंककर ऊपर देखा। क्या इस विदेशी सूरि और उसके मित्र आंबड़ ने उसकी परीक्षा लेने, उसकी विद्वता का उपहास उड़ाने के लिए यह प्रपंच रचा है ? उसने कई सभाएँ देखी थीं, कई एक में विजय भी पाई थी, जैसे-जैसे उसका जीवन काक के जीवन में समाता गया त्यों-त्यों हर किसी पण्डित के साथ विवाद करने का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था। क्या उसके गौरव का अपमान करने के लिए ही यह वापिस आये थे ? क्या उसके वीर पति के शत्रु उसकी पत्नी की हंसी उड़ाकर उसका अपमान करने का प्रयत्न कर रहे थे ? उसे उदा मेहता—आँबड़ का पिता, हेमचन्द्र का सहायक और उसका और उसके पति का शत्रु—याद आ गया । काश्मीर के कवि-कुशल शिरोमणि की कन्या, नवघण विजेता काक की अर्द्धांगिनी का रक्त खौल उठा। उसके मोहक रक्तिम अधर कांपे और बन्द होकर कठोर हो गये। कामदेव के धनुष सी उनकी भवें तनिक निकट आईं, उसकी नाक गर्व से तनिक

तिरछी हो गई। वह हँसी—इस प्रकार कि नरपति भी क्षुद्र लगने लगें—और बोली, 'गुजराती विद्वान !' और रण के लिए तत्पर वीर की भांति सुधि खोकर, मानो पण्डितों की सभा में हो इस प्रकार गर्व-वचन बोली—

या पाणिनीयमुपजीवति शब्दशास्त्रम्
या मम्मटोदितमलंकरणां प्रयुङ्क्ते।

(जो पाणिनी द्वारा रची हुई व्याकरण की शरण लेता है, और जो मम्मट की बताई अलंकार-योजना अपनाता है, ऐसे गुर्जर भाषा के सेवक को मेरे साथ विवाद करने का अवकाश हो सकता है)।

तस्या नु गुर्जरगिरः परिचारकस्य
कस्ते मया सह विवादकथावकाशः।

हेमचन्द्र में जितनी साधु की निर्लिप्तता थी; उतनी ही चतुर व्यक्ति की दृष्टि भी थी। वह तुरन्त समझ गया कि कुछ भ्रम होने के कारण ही मंजरी ऐसे शब्द कह रही है। उसने एक दम आंबड़ के सामने देखा और उसके मुस्कराते हुए मुख का हास्य जाना। इसी मोह पीड़ित ने यह सब किया है यह वह समझ गया। और मंजरी को देख उसके भावहीन मस्तिष्क में अपरिचित के समान प्रशंसा करने का विचार उठा। उसने नम्रता से हाथ जोड़े और अत्यन्त उदारपूर्ण मुखमुद्रा में सम्मान से उत्तर दिया—

शब्दानुशासन मधः कृत पाणिनीयम्
निर्धूत माम्मटमलंकृति तन्त्र मन्यद्।
निर्माय गुर्जरगिरां गुरुतां दधानः
धन्योऽचिरात्तव हरिष्यविकोऽपिगर्वम्॥

(पाणिनि के शास्त्र को भी तुच्छ बना देने वाला व्याकरण-शास्त्र और मम्मट के अलंकार-शास्त्र को भी उलटने वाला अलंकार-शास्त्र रचकर गुर्जर-भाषा के गौरव को बढ़ाने वाला कोई अन्य पुरुष शीघ्र ही तेरा गर्व हरण करेगा)।

पल-भर तक मंजरी देखती रही । उसे लगा कि बाल सूरि का अभिप्राय उसका अपमान करने का नहीं था । वह युवक सूरि को भूल गई, उसकी दृष्टि के सामने वर्षों पहले देखा वीतराग होने के लिए व्याकुल बालक आ गया । उसका क्रोध उतर गया । अपना गर्व उसने समेट लिया । वह हँस पड़ी—नन्हीं बालिका के समान, 'महाराज ! मुझे क्षमा कीजिएगा । एक बार दीक्षा लेने के पहले मैंने आशीर्वाद दिया था । आज मैं स्त्री हूं—फिर भी, आशीर्वाद देती हूं । मम्मट और पाणिनी दोनों का पद आप ही को प्राप्त हो । मेरा गर्व घटेगा नहीं—बढ़ेगा ।' मंजरी के स्वर में मानो उत्साहप्रेरक संगीत था । उसके मुख पर अन्तर की आशाओं से उत्पन्न अनोखी तेजस्विता छा रही थी । उसने आवेश में आकर हाथ लम्बा कर दिया—अपूर्व और अवर्णनीय छटा से ।

हाथ बढ़ाते समय मंजरी का आंचल सिर से खिसक गया, और एक क्षण के लिए उसका सम्पूर्ण सिर दिखाई दे गया । उसके ज्वलंत सौंदर्य से भभक-पड़े मुख की मोहकता दुर्जय हो उठी ।

सूरि ने आशीर्वाद सुना, स्वर का संगीत सुना और सौंदर्य का दर्शन किया । संस्कृत में उसके लिए क्या शब्द है यह स्मरण नहीं आया । उसकी आत्मा को अपरिचित सी सनसनाहट सुनाई दी । इस स्त्री को संतोष देने के लिए पाणिनी बनने का उत्साह हुआ । इस स्त्री का मुख देखने का वह आगे विचार न कर सका । उसकी आँखों में अन्धेरा छा गया, उसके मस्तिष्क में कड़कड़ाहट हुई—उसके स्थिर और भावनाविहीन मस्तिष्क के चौरस धरातल पर उत्साह से उछलती मानवता की गगन-चुम्बी लहरें मानो पुनः लौट रही हों, ऐसा उसे भान हुआ । उस भयंकर क्षण में सूरिपद, वीतराग, अविकार दृष्टि के सामने से लुप्त होते प्रतीत हुए । शुष्क और स्नेहहीन जीवन में युद्ध की भयानक निर्जनता चारों ओर फैलती हुई दिखाई दी ।

यह सब एक निमिषमात्र में हो गया । उस निमिष में उसे विश्वास

हो गया कि अधिकार का गर्व सर्वथा मिथ्या है। उसे लगा कि एक प्रतापी महाप्रयत्न के बिना उसकी रक्षा न हो सकेगी । उसने महा-प्रयत्न किया, अपनी प्रबल इच्छाशक्ति को एकाग्र करके मस्तिष्क में स्थिरता लाया; और एक चतुर खिलाड़ी जिस प्रकार एक लौह शलाक को टेढ़ी कर देता है उसी प्रकार उसने अपने चंचल मस्तिष्क को स्थिर कर लिया। उसने मनुष्य शरीर की अपवित्रता का ध्यान किया, स्त्री के सौंदर्य में बसे पाप और विनाश का स्मरण किया । अनित्यादि वैराग्य की भावनाओं का स्मरण किया, तीर्थंकर भी दुष्कर्म को नष्ट करने के लिए तपस्या करते हैं, ऐसा विचार मस्तिष्क में स्थिर किया।

परन्तु उसे ऐसे लगा जैसे मस्तिष्क फट जायगा—उसकी इच्छाशक्ति ने अपना दबाव नहीं छोड़ा । उसने धीरे से मंजरी की ओर देखा और उसके मुख का ध्येय जानकर उसकी छवि के ध्यान में मग्न हो गया।

फिर भावनाओं से अपरिचित उसके मस्तिष्क में उठी नाम की आंधी को लुप्त होते देर न लगी।

वह स्थिर नयनों में मंजरी को देखने लगा। उसकी एकाग्र दृष्टि के कारण उसका मानुषी सौंदर्य और उसकी मोहकता पलट गये। उसने मंजरी के नयनों में दिव्य तेज देखा, उसके स्फटिक भाल पर अगाध ज्ञान की रेखायें देखी; उसके सौन्दर्य में से विशुद्ध ज्ञान की शांत रश्मियां फूटती देखी। सूरी की एकाग्रता व्यापक हुई। उसने मंजरी की गोद में वीणा पड़ी देखी। उसके चरणों के सामने मयूर बैठा देखा। उत्साह प्रेरित करने के लिए उसके आगे बढ़ाये हुए हाथ में उसने कमल देखा। रूप मंजरी का ही रहा, किन्तु उसने दर्शन किये सरस्वती के।

हेमचन्द्र ने साष्टांग दण्डवत् किया, 'माता ! तुम्हारा वरदान अवश्य फलीभूत होगा।'

एक क्षण उसने दृष्टि ठहराई। उतने समय में सूरि ने योगबल से निर्विकारिता साध ली थी। उसने प्रणाम किया, आंखें मीचीं और खोलीं। सभी उसकी ओर देख रहे थे। भाग्य से कोई नम्रता का अर्थ समझा

हो सूरि ने शांत स्वर में कहा—

काश्मीरान् गन्तुकामस्य शारदाराधनेच्छया ।
यात्राभूत् पुनरुक्ता मे वीक्ष्य त्वां शारदामहि ॥

शारदा की आराधना करने की इच्छा से मैं काश्मीर जाना चाहता था । किन्तु आप स्वयं शारदा हैं । आपको यहाँ देखने के पश्चात् मेरी यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता ।

मंजरी की आँखें हँस रही थीं । सूरि के अन्तर में जितना सम्भव है उतना उत्साह आया ।

'सूरिजी ! आप यहाँ कब तक ठहरेंगे ?'

'मैं कल जाऊँगा ।'

'मां !' कहता हुआ लुढ़कता-फिसलता बौसरि अन्दर आया । वह आकर मंजरी के गले से लिपट गया । सभी उसकी ओर देखने लगे । मंजरी की आंखों में स्नेह उमड़ आया ।

'माता यह तुम्हारा पुत्र है ?'

'हाँ, महाराज !'

हेमचन्द्र लड़के की ओर एकटक देखता रहा और फिर गम्भीर मुख से कहा—'माता ! इस पुत्र की माता के रूप में मैं पुनः प्रणाम करता हूं ।'

'क्यों ?'

'जिनशासन का संरक्षण इसी के प्रताप से होगा ।'

सभी चकित होकर सूरि की ओर देखने लगे । केवल हेमचन्द्र सूरि बालक की मुखमुद्रा को ध्यान से देखता रहा । उसकी वाणी में शाँति थी ।

'महाराज ! क्या कहते हैं ?' अनायास ही मंजरी को कंपकंपी छूटी

'हाँ ! मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।'

'तो महाराज ! एक बात पूछूँ ?' आतुरता से मंजरी बोली ।

'क्या ?'

'मेरे भटराज कब लौटेंगे ?'

सूरि ने शंकित होकर मंजरी की ओर निहारकर कहा—'मेरी विद्या इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती। माता! अब हमारे जाने का समय हो गया।'

'हां, ठहरिये। भिक्षा दे दूँ।' मंजरी उठी। उसका हृदय खिन्नता से भर आया। समुद्र की यात्रा करते हुए पोत का वियोग दुःसह हो उठा।

दूसरे दिन जब हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ से प्रस्थान किया उस समय उनके मुख पर सरस्वती से वरदान पाने का गर्व था।

२८

सूर्य ढल रहा था। अस्ताचल पर अंशुमाली शनैः-शनैः निस्तेज होता हुआ प्रतिबिम्ब भर के लिए विश्राम करने के क्षितिज पर ठहर गया है। ऊपर आकाश नीचे जलधि स्वर्ण में मढ़ गये। लहरें चारों ओर से उठती-गिरती अन्त में क्षितिज की ओर जाकर अदृष्ट हो जाती थीं।

हवा तेजी से चलने लगी थी। भरी हुई सरिता में बहुत पुराना और छोटा पोत झूल रहा था।

सभी कुछ अस्थिर था। केवल पोत में बैठे हुए काकभट का मुख निश्चल था। वह उत्तर की ओर स्पष्ट और श्याम क्षितिज की ओर निहार रहा था।

वह तनिक मुस्करा दिया। 'सामन्त!' उसने पुकारा।

'बापू!' एक सैनिक ने आकर उत्तर दिया।

'उस ओर पाटण ही है न ?'

'जी हाँ।'

'और चोरवाड़ उससे आगे ?'

'जी हाँ।'

'और यह सामने क्या आया ?'

'लाटी।'

'ठीक।' काक ने कहा और यहां से उठकर पोत के चालक के निकट गया।

'बाबा !'

'कहिये बापू !'

'देख ! पतवार लाटी की ओर घुमा दे।'

'क्यों ?'

'सुन।' सत्तापूर्ण स्वर में काक बोला, 'मैं जो कहता हूं वह सब याद रखना।'

'जी।'

वहां मैं, सामन्त, दामा नायक उतर जायेंगे ! तेरे खलासी भी वहां हमारे साथ ही उतरेंगे। फिर तुम इस पोत को पाटण तक ले जा सकोगे ?'

'जी हां।' वह तो अब बहुत दूर नहीं है।'

ठीक। कल प्रातःकाल जब पाटण का किनारा दीख पड़े तो पोत डूबो देना। और तू, जैसे मानो बहाव में बह रहा हो इस प्रकार तैर कर लाटी लौट कर आना और दामा नायक से मिलना। खेमाभट फिर अपना काम करेगा। हां अगर कोई पूछे तो कहना कि चट्टान से टकरा कर पोत डूब गया। मनुष्यों का क्या हुआ यह मालूम नहीं। समझा ? तनिक भी भूल न हो।' काक बोला, 'वहारा (नर्मदा उद्गम का निकटवर्ती क्षेत्र) के नाविक के नाम पर बट्टा न लगे।

'बापू ! क्या ऐसा कभी हो सकता है ?'

'और आधी रात को मैं लौट कर आऊँ तो भृगुकच्छ की ओर

चलने की तैयारी कर रखना । खलासी तो सब विश्वासपात्र हैं न ?'

'यह भी बापू क्या कोई पूछने की बात है ?'

'देख, मेरे प्राण तेरे हाथ में हैं ।' काक बोला ।

'बापू आपका वचन और मेरा सिर ।'

काक हँस दिया । इन सबके भक्ति-भाव में उसे श्रद्धा थी ।

काक ने स्वयं पतवार किनारे की ओर घुमा दिए और पोत वेग से उस ओर बढ़ चला ।

काक वहाँ से चला आया और दामा नायक को बुलाकर कहा—'दामा ! मुझे मेरे साथ यहाँ से तैर कर किनारे जाना है यह सब खलासी तेरे साथ रहेंगे । किसी का पोत ढूढ़ रखना । मैं किसी भी क्षण आऊँ, तो यहाँ से कूच के लिए तैयार रहना है ।

दामा दुर्गपाल की गति-विधि जानता था । समय पर एक से दूसरी बार कहने की प्रतीक्षा वह नहीं करता था । वह खलासियों को आदेश देने के लिए चला गया ।

'खेमा !' काक ने खेमा को बुलाया, 'देख, मैं, सामन्त, दामा और खलासी नौका से उतर जायेंगे । खेमा ! मैं अपने प्राण और प्रतिष्ठा अब तेरे हाथों में सौंपता हूं । तेरी चतुराई पर सम्पूर्ण लाट निर्भर है । देख तू मेरे वस्त्र पहन ले और अपने वस्त्र मुझे दे दे ।'

'जो आज्ञा ।'

'फिर तू और कावा नाविक दोनों पोत लेकर पाटण की ओर जाना, पाटण के दीखते ही पोत डुबो देना । कावा मानो बह रहा हो इस प्रकार आकर यहाँ दामा से मिलेगा और तू तैरता हुआ पाटण के बन्दरगाह में जाना ।'

'जी !'

'देख, ध्यान रखना । मुझसे परिचित कोई मिले तो कहना कि पोत डूब गया और मेरा क्या हुआ मालूम नहीं । किन्तु जहाँ तक मेरा अनुमान है कोई नया आदमी ही आयेगा । नए पट्टणी योद्धाओं ने मुझे नहीं

देखा है। तेरा और मेरा शरीर समान है; अतः अगर कोई तुझे काक समझ ले तो ना मत करना।'

खेमा तनिक चकित होकर देखने लगा।

'सुन खेमा! हमारा एक-दूसरे से दस वर्ष पुराना सम्बन्ध है, और तेरी चतुराई में मुझे विश्वास है। देख, यदि वह तुझे काक समझ लें तो उनका भ्रम-भंग मत करना। सम्भव है तुझ पर असहनीय दुःख टूट पड़ें, वैसी दशा में एक बात याद रखना। यदि उदा मेहता के आदमी तुझे कष्ट पहुंचायें तो कहना कि मुझे भाभी सम्वन्धी बात करनी है। वह तुरन्त तुझे उसके पास ले जायेंगे। तू काक नहीं है यह उदा मेहता देखते ही समझ जायेगा। यदि महाराज के आदमी पकड़ें तो कहना मुंजाल मेहता से आपके शेषनाग की बात कहनी है। समझा? आवश्यकता पड़ने पर दो में से कोई एक तुझे पहचान लेगा और तेरा बाल बांका भी नहीं होगा। मैं जीवित रहा तो पांच-सात दिन में आ ही पहुंचूँगा।'

'जी!'

'खेमा! तू सब बात जानता है इसलिए कुछ ऐसा करना कि इतने दिनों तक यह भ्रम बना रहे।'

'जी बहुत अच्छा।'

'और खेमा!' काक की शांत वाणी तनिक कांप उठी, 'मुझे कुछ हो जाय तो—' काक ने गला साफ किया, 'तू और सोमेश्वर अपनी भाभी और बच्चों को देखना।'

'छोडो, बापू!' आँखों से जल पोंछते हुए खेमा बोला, 'किसकी मजाल कि आपका बाल-बांका भी कर सके। अधिक हुआ तो इन पट्टणियों को भी उखेड़ फेंकूँगा।'

काक मुस्करा दिया। 'बात इतनी सहज नहीं है।'

'बापू आप बुद्धिमानों को ऐसा ही लगता है। हम तो तुरन्त दान महाकल्याण में विश्वास करते हैं।'

'अच्छा' कहकर काक ने खेमा का आलिंगन किया।

पोत के किनारे के निकट पहुंचने पर काक, दामा नायक, सामन्त और खलासी लकड़ी के पाट डाल कर पानी में कूद पड़े और किनारे की ओर चले गए। खेमाभट और कावा ने धीरे-धीरे पोत को पुनः नदी की बीच धार की ओर बढ़ाया।

२६

सूर्य का स्वच्छ प्रकाश बढ़ने लगा था। प्रकाश में सोमनाथ पाटण समुद्र से निकली रम्भा के समान शोभित हो रहा था। सुन्दर वस्त्र के घेर के समान नगर-कोट समुद्र तक आता और जहाँ वह जलधि को स्पर्श करता था वहाँ बन्दर में पड़ी नौकाओं की झालर मन्द-मन्द पवन में झूल उठती थी। इस घेर के ऊपर अप्सरा की अमर देह के समान सोमनाथ का भव्य मन्दिर खड़ा था। मन्दिर का स्वर्ण-कलश और उसके चारों ओर फहराती हुई ध्वजा ऐसी लग रही थी मानो उज्ज्वल, दिव्य अपने सुन्दर मुख को ओढ़नी में छिपाने का निरर्थक प्रयत्न कर रही हो। प्रभास में आज जिस मन्दिर के भग्नावशेष दीख पड़ते हैं वही कभी पृथ्वी से प्रदक्षिणा करवाते मेरु के समान अपनी सम्पूर्ण छटा में स्थित था। आज भी उसकी प्रत्येक शिला की अपूर्व कारीगरी, उसके स्तंभों का गौरव और उसके गुम्बजों के अवशेष, इन सबसे यह मन्दिर कैसा रहा होगा उसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इस कथा के काल में तो वह नया था और नवयौवन की मोहकता में अडिग खड़ा था।

महमूद गजनवी ने पाटण लूटकर और सोमनाथ के प्राचीन मन्दिर को तोड़कर यह मान लिया कि उसने गुजरात की शक्ति और समृद्धि

को सदा के लिए लूट लिया है। किन्तु वह धर्म-विनाशक विदेशी गुजरात से परिचित नहीं था। उसके पीठ फेरते ही शूरवीर भीम ने फिर पाटण ले लिया, और जहाँ प्राचीन मन्दिर के जले हुए पत्थर पड़े थे वहाँ नए मन्दिर की रचना प्रारम्भ करा दी। देश-देश के कारीगरों ने वर्षों तक एकाग्र होकर साधना की। देश-देश के नरपतियों ने अतुल धन का उपहार दिया। और जिस मन्दिर का निर्माण शूरवीर भीम ने आरम्भ किया, निर्माणादि में रुचि रखने वाले कर्णदेव ने उसे अलंकृत किया, और तीन पीढ़ी पश्चात् उसी पर जयदेव ने अनमोल स्वर्ण-कलश चढ़ाकर महमूद गजनवी की विनाशक वृत्ति का उपहास किया।

यह मन्दिर नहीं वरन् पत्थर में तराशा हुआ एक महाकाव्य था और उसकी प्रेरणा-शक्ति उससे भी अधिक थी। चारों दिशाओं से आये हुए यात्री कैलाश के समान गगनचुम्बी और अमरावती के समान अपूर्व शंकर के इस सदन को देखकर ऐसा समझते मानो उन्हें सदेह मुक्तिलाभ हो गया हो और जन्म-जन्मान्तर के पाप मिट गए हों।

यह मन्दिर पृथ्वी पर खड़ी की हुई अनहिलवाड़ के प्रभाव की अमरमूर्ति की रक्षा करता था। यह ठीक है कि खंभात, भड़ौंच और प्रभास; गुजरात के इन तीन विशाल द्वारों में से प्रभास सबसे छोटा था। फिर भी विदेशी पोत यहाँ की पवित्रता और मन्दिर की भव्यता से आकर्षित होकर यहाँ लंगर डालना न चूकते थे। बन्दरगाह के निकट आते हुए यात्रियों की प्रशंसा-भरी दृष्टि क्षितिज पर सोमनाथ भगवान् के गगनभेदी गुम्बज पर पड़ती थी। जितनी उनकी भक्ति-भावना बढ़ती थी उतना ही पाटण का मान बढ़ता था।

पाटण के नरेशों की दृष्टि में भी यह मन्दिर उनके प्रताप की जीवित प्रतिष्ठा था। मूलराज सोलंकी की गम्भीर चतुराई ने प्रभास-धाम को अनहिलवाड़ का पुण्यक्षेत्र बनाया। इसी से सोरठ में गुजरात का प्रभाव फैला और सम्पूर्ण भारत के पुण्यधाम के रक्षक कहलाने का गौरव सोलंकियों को प्राप्त हुआ। भीम ने गुजरात के रुधिर से इस

भूमि को सींचा, इसकी पवित्रता को उज्ज्वलता प्रदान की और समग्र संसार पर विजय प्राप्त करने को व्याकुल जयसिंहदेव भी यही मानते थे कि इष्टदेव के वैभव में ही उनका वैभव निहित है।

शिवालय घण्टानाद से पहले ही घोड़ों की टाप से जाग उठा। तीन अश्वारोही अश्वों को दौड़ाते हुए मन्दिर के सामने आए। उनमें से आगे का अश्वारोही अश्व से धरती पर कूद पड़ा और पीछे देखे बिना ही तीव्र गति से मंदिर में घुस गया।

आगन्तुक पट्टणी सैनिक था। उसके वस्त्र और आभूषणों से लगता था कि वह बहुत सम्पन्न है और उसके मुख से लगता था कि वह बुद्धिशाली भी है वह तीव्रगति से मन्दिर में गया। ध्यान दिए बिना ही घण्टा बजाया और महादेव की ओर देखे बिना ही नमस्कार किया। मंदिर की एक खिड़की के निकट एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। नवागन्तुक ने उसे देखा और आवश्यकता के अनुकूल मान देकर उसकी ओर गया। खिड़की के सामने खड़ा हुआ व्यक्ति खलासी जैसा लग रहा था।

'नायक!' उस नवागन्तुक युवक ने कहा।

'बापू!' उस व्यक्ति ने बड़े सम्मान से नमस्कार करते हुए कहा।

'क्या हाल है?'

'बापू! खलासी अभी-अभी चारों ओर होकर आए हैं। ऐसा लगता है केवल एक ही पोत आ रहा है।'

'यहाँ से दिखाई देता है?' उस युवक ने पूछा।

'वह है?' खलासी ने हाथ के संकेत से दिखाया।

कुछ क्षण वातावरण मौन रहा। क्षितिज पर एक बिन्दु आकार में निरंतर बड़ा होता जा रहा था।

'चल बाहर चलें।' आगन्तुक ने कहा, और बाहर निकल गया। खलासी पीछे-पीछे आया और दोनों मंदिर की कोट पर चढ़कर खड़े हो गए।

आगन्तुक चौबीस-पच्चीस वर्ष का था फिर भी उसके मुख पर

गांभीर्य की छाप थी। वह स्वाभाविक गर्व से चलता था और रह-रह-कर अधीरता से क्षितिज की ओर देखता। थोड़ी देर में सूर्योदय हुआ और सूर्य का स्वर्णिम बिम्ब ऊपर उतर आया। दृश्य प्रतिदिन के समान होते हुए भी अपूर्व था। सुन्दर लगते हुए इस बिम्ब की ओर क्षण-भर तक वह युवक देखता रहा। फिर धीरे से मंदिर के शिखर की ओर देखा और पोत पर मस्ती से उड़ती हुई ध्वजा की ओर प्रसन्न होकर देखने लगा। वह अपनी दृष्टि उधर ही जमाए था मानो उछलती तरंगों से कोई संदेशा सुना हो, वह बड़बड़ाया।

'तरंग भ्रू भंगा।'

'बापू !' उस खलासी ने इस कविता प्रेमी युवक की विचार-माला को क्रूरता से भंग कर दिया।

'क्यों ?'

'वह गया......।' खलासी ने हाथ लम्बा करके आवाज दी।

'क्या ?'

'वह जलपोत चट्टान पर चढ़ गया है। देखिए डोल रहा है।

'हाँ। अरे अब क्या होगा ?'

'टूटा... अरेरे—वह डूबेगा।' खलासी ने टूटे हुए शब्दों में कहा।

'यह भड़ौंच से आ रहा था, वही पोत है क्या ?' युवक ने पूछा।

'हाँ बापू !'

'हाय, हाय !' उस युवक का कपाल संकुचित हो गया. 'नायक ? इसमें के सभी व्यक्तियों की रक्षा करनी होगी।'

'अब तो जो भोलानाथ करे, वही ठीक।'

'अरे भोलानाथ तो करेगा ही।' अधीरता से पग पटककर युवक बोला।

तू जल्दी दूसरे खलासी लेकर पहुंच और उसमें जितने योद्धा हों उन्हें किसी-न-किसी प्रकार मेरे पास ला। देखता क्या है ?' युवक ने

क्रोधित होकर कहा, 'जा एकदम, और बन्दरगाह पर आज्ञा दे दे—कोई भी तैरकर आए तो उसे पकड़कर मेरे पास लाया जाय।'

'और न आए तो ?'

'तुम लोगों के पास बाँधने के लिए रस्सियाँ हैं या नहीं ?' कटाक्ष से युवक ने कहा, 'जा, शीघ्र जा।'

दूसरे ही क्षण वह खलासी अन्दर की ओर भागा। अन्य खलासियों को एकत्रित करके नौकायें खोलने में लग गया। वह युवक थोड़ी देर तक नायक की गति-विधि देखता रहा, फिर डूबने हुए पोत की ओर देखा। अन्त में हतोत्साह होकर धीमी गति से वह मंदिर की ओर मुड़ा। उसके मुख पर निराशा की छाप स्पष्ट प्रकट हो रही थी।

थोड़ी दूर जाकर पुनः लौटा और मंदिर में प्रवेश किया। उसने घण्टा बजाया और मध्यद्वार तक जाकर साष्टांग प्रणाम किया। 'भोलानाथ ! अवज्ञा की हो तो क्षमा करना।' उसने गद्गद् कण्ठ से प्रार्थना की।

वह उठा, मंदिर से बाहर गया, और अश्व पर बैठकर अपने निवास-स्थान की ओर मुड़ गया। उसकी मुखमुद्रा स्पष्ट ही चिन्तायुक्त थी।

३०

युवक धीमे-धीमे चलता हुआ अपने स्थान पर गया और पगड़ी उतारकर इधर-उधर टहलने लगा। उसके मुख पर ग्लानि थी और वह जब-तब कान लगाकर आते-जाते लोगों की पग ध्वनि सुन रहा था।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे उसकी अधीरता बढ़ती गई। अन्त में उसने एक आदमी को बुलाकर बन्दरगाह की ओर भेजा।

समय बहुत व्यतीत हो गया था। युवक का मुख निस्तेज और निरुत्साह-सा होने लगा। होठों को दबाकर वह अधीरता को दबाने का यत्न कर रहा था। उसने एक निःश्वास ली। ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन की आशा नष्ट होती जा रही है।

इतने में बाहर घोड़े की टाप सुनाई दी। युवक एकदम आगे बढ़ आया। अश्व पर से नायक और एक अधेड़ वय के योद्धा को उतरते हुए देखकर उसके मुख पर मुस्कराहट की हल्की सी रेखा छा गई। नायक के साथ आने वाले योद्धा का मुख उसे तेजस्वी लगा। आँखों में चमक भी थी—किन्तु अस्पष्ट सी—क्योंकि वह थका हुआ था। उसके चलने की छटा में गर्व था। नाक तीखी कही जा सकती है, स्नायु भी दृढ़ थे। युवक को सन्तोष हुआ। 'समरथ देखा ! मैं जीता। तू हारी, अब तू मेरी—'

किन्तु युवक का यह असम्बद्ध प्रलाप अधिक न चल पाया। वह योद्धा भीगे वस्त्रों सहित आया।

'कौन, भटजी ?' उस युवक ने आगे बढ़कर पूछा।

उस योद्धा ने कपाल को आकुंचित कर सिर ऊपर उठाया। मुझे यह लोग यहां क्यों लाये हैं ?' तनिक गर्व से उसने पूछा।

'क्षमा करो भटराज !' युवक ने कहा, जयसिंहदेव महाराज ने आपके स्वागत के लिए मुझे भेजा है। आपके पोत को विकट परिस्थिति में देखकर मैंने ही इस नायक को भेजा था।'

'तुम कौन ?' गर्व से उस योद्धा ने पूछा।

'आपने मुझे नहीं पहचाना ?'

'कभी देखा हो, ऐसा स्मरण नहीं आता।'

'मैं उदा मेहता का वाहड़ हूं।' उस युवक ने कहा।

'उदा मेहता का पुत्र वाग्भट, भटराज और पण्डित।' धीरे-से वह योद्धा बोला। वाग्भट को बोलने की इस आडम्बर-भरी रीति के प्रति तिरस्कार हो आया।

'जी हाँ ? आप दूसरे वस्त्र धारण कर लीजिए। अब हम वंथली चलेंगे।'

'परन्तु मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा।

'क्यों ?'

'मेरी इच्छा।'

वाग्भट की आशा भंग हो गई। उसने काकभट की इतनी प्रशंसा सुनी थी कि उसने उसके विषय में वास्तविक काकभट से भी हजार गुणा अधिक ऊँची कल्पना कर रखी थी।

'चलना तो आपको होगा ही।'

'क्यों ?'

'महाराज की आज्ञा जो है।'

'और यदि न चलूँ तो ?' तनिक विचित्र ढंग से हँसकर वह योद्धा बोला।

'आपको ले जाना मेरा कर्त्तव्य है। यहाँ से वंथली जाने का रास्ता नहीं है। इसलिए मुझे विशेष आज्ञा दी गई है।'

'तो ठीक है।' काकभट को एकदम स्वीकार करते देखकर वह और आश्चर्य में पड़ गया।

'अभी प्रस्थान कर दें ?' वाग्भट ने पूछा।

'जब तुम कहो।'

'आप विश्राम कर लीजिए, तब चलेंगे।' विनयी वाग्भट बोला। उसका मन वंथली जाने के लिए उत्साहित हो उठा।

३१

जब काक को पकड़कर अपने आपको भाग्यशाली मानता हुआ वाग्भट फूला न समा रहा था तब काक सरपट भागते हुए घोड़े पर जूनागढ़ की ओर बढ़ रहा था। लाटी आकर उसने खलासियों और

दागा को वहीं छोड़ दिया और स्वयं तुरन्त चोरवाड़ गया । थोड़ी ही देर में चोरवाड़ का मोतिया अहीर और काक दोनों ने जूनागढ़ का मार्ग लिया। रात होते हुए भी वह जूनागढ़ वाली मुख्य सड़क से न जा सके। इस मुख्य सड़क की रक्षा पाटण की सेना करती थी अतः उधर होकर जाना विपत्तियों से भरा हुआ था । इसी कारण उन्हें लम्बा, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ने की आवश्यकता हुई ।

सोरठ के निर्मल व्योम में चमकते हुए तारागणों के प्रकाश में वह मार्ग काट रहे थे। परन्तु सोरठ के हवा से बात करते हुए घोड़ों के लिए अँधकार या पथ की कठिनाइयां गौण थीं । योजन-पर-योजन पार होते चले जा रहे थे, फिर भी मोतिया और काक अधीरता से निरन्तर एड़ का उपयोग करते ही चले जा रहे थे ।

काठियावाड़ी घोड़े में जब साहस आता है तो उसके पंख लग जाते हैं, उसके पांव थकते नहीं, उसकी श्वास भरती नहीं और उसको एड़ियों की आवश्यकता भी नहीं होती । वह पशु न रहकर वेग की मूर्ति बन जाता है । उसका स्थूल शरीर समीर की सुक्ष्मता ग्रहण कर लेता है। इन वेगवती घोड़ियों को, उसकी इच्छा-शक्ति को तन्मयता से साधते देखकर काक को भी उत्साह हुआ । उषाकाल के समय जब उसने घोड़ियों को रोका उस समय क्षितिज पर गिरनार शोभित हो रहा था । पर्वतों से परिचित यात्री को गिरनार खिलौना मालूम होता है, और यह शंका होने लगती है कि इसे पर्वत क्यों कहा जाता है ! किन्तु चौरस भूमि में रहने वाले गुजराती के लिए तो गिरनार गिरिराज हैं ।

छोटे जन्तुओं के बीच खड़े मनुष्य वीर की भांति वह सोरठ की चौरस भूमि पर शोभित है और शताब्दियों से जनसमूह की भक्ति का आकर्षण-केन्द्र बना हुआ है । आदर्श चक्रवर्ती मांघात के पुत्र ने इसकी छाया में शाँति प्राप्त की तथा यादवपति कंसहारी कृष्ण ने कालयवन के भय से भागते हुए इसी की शरण ली थी । अवनी पर बुद्धधर्म का प्रसार करने के लिए उत्सुक देवप्रिय अशोक, आर्यावर्त में हिन्दू संस्कृति

स्थापित करने के लिए भ्रातुकुलभूषण समुद्रगुप्त, और विदेशी होते हुए भी आर्य-धर्म के गर्व से मत्त रुद्रामन—इन तीनों ने गिरनार को अपनी सत्ता का सीमा दर्शक विजय स्तम्भ माना था। चूड़ासमा की सत्ता के स्थापक ने भी इसकी अभेद्यता की सहायता से सोरठ का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था इसी की प्रेरणा से प्रबल बनकर खेंगार पाटण की सर्व-विजयी सत्ता को वर्षों से छका रहा था।

निर्वाण की खोज में लगे हुए बौद्ध-भिक्षु की शान्ति और स्थिरता प्रकट करती हुई पदरेखा, तलवार के विजय की निरन्तर साधना से रत और आर्य धर्म की धुरी को सीधी रखने वाले ब्राह्मणों की निडर निश्चयात्मकता की साक्षी देने वाले पदचिन्ह, हिंसा के मोह में फँसी हुई मनुष्य जाति को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने के लिए व्याकुल जैन साधुओं की सहनशीलता की छाया से शोभित पदचिन्ह, पवित्रता के सभी पदारपर्श वहाँ पत्थर-पत्थर में दिखाई पड़ते हैं। तनिक अधिक ध्यान से देखने पर दो और रेखायें भी दिखाई पड़ेंगी।

एक नन्ही और सुघड़—नर केसरियों की विस्मृत होती हुई वीरता को सुकुमार हाथों से टिकाए रखने वाली, सतियों में श्रेष्ठ राणक की, और दूसरी विशाल और कठोर—जिसके स्थिर हृदय में उपजी सन्तजीवन की पवित्रता, भक्ति-योग की महत्ता और नृत्य-प्रेम की रसिकता त्रिवेणी-संगम के प्रताप से गुजरात की रसाल भूमि पुनः रसमय हो गई थी उस कृष्ण-विह्वल नागर की।

किन्तु इस सब पर विचार करने के लिए काक के पास न समय था और न शक्ति। उसके लिए गिरनार उसके मित्र खेंगार—केसरी की गुफा थी इसलिए था उसकी यात्रा का लक्ष्य।

सूर्योदय होने लगा। गिरनार के शिखरों पर भूरापन हटकर स्वर्ण जैसे तेज की चमक छा गई थी। निकट ही पर्वत के शृंगों से विश्वकर्मा ने मानो गढ़ बना लिया हो ऐसा जूनागढ़ भी दिखाई दिया।

'मोतिया!' काक ने कहा।

'हां बापू !'

'हम जूनागढ़ कब तब पहुंचेंगे ?'

'बापू ! पहुंच तो अभी जाते, किन्तु इधर पट्टणियों का प्रबन्ध कुछ विशेष है इसलिए शीघ्रता नहीं की जा सकती। संध्या तक पहुंच जायेंगे।'

दोनों थोड़ी देर तक चलते रहे और फिर घोड़ियों को छोड़कर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गए। किन्तु उनके भाग्य में अधिक विश्राम करना भी नहीं लिखा था।

'बापू ! उठो, घोड़ी सम्भालो।'

'क्यों ?'

'वहां धूल उड़ती दिखाई दे रही है। कोई है।'

काक ने देखा। कुछ दूर पर सचमुच धूल उड़ती दिखाई दी। वह लपक कर घोड़ियों पर चढ़ गये और वेग से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से भागने लगे। दिनभर वे इसी प्रकार गाँवों और मुख्य सड़क से दूर चलते रहे। संध्या होते-होते वह गिरनार आ पहुंचे।

'बापू ! अब निश्चिन्त हो जाइए। इस पथ पर अब कोई नहीं मिलेगा।'

'क्यों ?'

'यह पथ केवल मैं ही जानता हूं।'

काक ने चारों ओर देखा। 'मोतिया ! अब मेरी आंखों पर पट्टी बांध दे।'

'क्यों ?' चकित होकर अहीर ने पूछा।

मैं शत्रुपक्ष का आदमी हूं। मैं इस पथ से परिचित न होऊँ तो अच्छा।'

मोतिया ने गर्व से काक की ओर देखा और वस्त्र लेकर उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी।

काक ने नाम मात्र को लगाम पकड़ रक्खी थी। उसकी चतुर घोड़ी

वेग से अहीर की घोड़ी के पीछे-पीछे चली जा रही थी। पथ में स्थान-स्थान पर उतार और चढ़ाव आते, कई बार घोड़ी एकदम खड़ी हो जाती थी। एक बार वह चमक भी गई।

काक को पट्टी से चारों ओर अन्धकार ही प्रतीत होता था थोड़ी देर पश्चात् मोतिया बोला।

'बापू उतरिये! गढ़ आ गया।'

'ऊपर जाने से पहले पट्टी मत खोलना।'

'जैसी बापू की इच्छा।'

मोतिया थोड़ी दूर तक काक का हाथ पकड़ कर ले गया। वहां कोई खड़ा हुआ था। मोतिया ने उससे बात की, और फिर काक का हाथ पकड़ कर पत्थर की एक संकरी पगडण्डी पर चढ़ने लगा। पग-पग पर मोतिया काक को सावधान रहने की सूचना देता रहता था। कुछ देर पश्चात् वह गढ़ पर आ गये। मोतिया ने पट्टी खोल दी।

चारों ओर अन्धकार छा चुका था। कभी-कभी मशाल का क्षीण प्रकाश दिखाई देकर अदृष्ट हो जाता था। इस अन्धकार में मोतिया काक को बहुत शीघ्रता से ले चला।

थोड़ी देर चलकर महल के पिछले द्वार से उन्होंने अन्दर प्रवेश किया जहाँ मोतिया ने किसी मनुष्य के कान में कुछ कहा। वह तुरन्त ऊपर जाकर लौट आया और काक को ले गया। महल के एक किनारे काक को खड़ा करके वह चला गया।

रात अन्धेरी थी। काक तारों के क्षीण प्रकाश में भी चारों दिशाओं में भली प्रकार देख सकता था। थोड़ी दूर पर सैनिकों की हुंकार और वेदना की चीत्कार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। कोट की खाई से दूर अश्वों की हिनहिनाहट या कभी-कभी उत्साह भरी गर्जना से पट्टणी और सोरठी सैनिकों के लड़ने के स्थान का ज्ञान करवा देते थे। चारों ओर के अंधकार में दीपक के प्रकाश के कारण विजय-सेना की छावनी वनस्थली स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ने वाली आग की लपटें

या धुंआ विदेशियो द्वारा किए हुए व्यवहार की साक्षी दे रहे थे। सबसे तटस्थ, अन्धकार में भी काला लगता हुआ गिरनार सभी पर अपना एक समान भयंकर प्रभाव डाल रहा था। इन सबसे अलग दूर किसी गुहा में पड़े सिंह की गर्जना का गम्भीर नाद इस त्रासमय वातावरण को और भी त्रासदायी बना रहा था। काक विचार-मग्न होकर देखता रहा और मौन हो उसने जूनागढ़ के दुर्जय खेंगार की अडिग वीरता को अर्घ्य अर्पण किया।

पीछे से कोई दौड़ता हुआ आया। 'कौन काक?' अगन्तुक का स्वर सुनाई पड़ा।

काक को स्वर परिचित लगा। आगन्तुक को वह देख सके उससे पहले ही आगन्तुक ने उसे अपनी बाहुओं में भर लिया।

काक चौंका, किन्तु पहचानते ही बोला, 'कौन रा'?'

३२

'राणकदेवी के स्थान पर रा' क्यों आये? उसे किसने बुलाया है? रा' क्या सोचेंगे? इस प्रकार के अनेक विचार काक के मन में उठे। रा' के आलिंगन समाप्त कर लेने पर उसने उसे ध्यान से देखा। उसे देख कर उसके मस्तिष्क के आगे पन्द्रह वर्ष पहले का खेंगार खड़ा हो गया। उसके सबल और छटा-भरे अंग अब भी जैसे-के-तैसे थे। सोमसुन्दरी के इस प्रणयी के सुन्दर अंगों पर इस समय कवच और पट्टियाँ थीं। उसके सिंह से भव्य मुख पर सुन्दर दाढ़ी शोभित हो रही थी, और दो घावों की रेखायें इस भव्यता को अनुपम शोभा प्रदान कर रही थीं। उसकी चमकती हुई आँखों में निश्चल किन्तु अस्वाभाविक तेजस्विता दिखाई पड़ रही थी। आज भी उसका हास्य पहले जैसा ही मोहक था।

'काक आ गया तू ।' खेंगार ने भाव-भरे स्वर में कहा ।

'महाराज !' काक ने विशेष मान से कहा—'भला आप बुलावें और मैं न आऊँ ?'

'धीरे ।' खेंगार ने कहा, 'हाँ मैंने ही बुलाया था ।'

'परन्तु मुझे तो देवी का सन्देशा मिला था ।'

'नहीं, मैंने भेजा था ।'

'किन्तु नागिभद्र तो कहता था कि वह देवी से मिला था ।'

'वह तनिक पागल है । मैंने दूसरी रानी के द्वारा कहलवाया था । किन्तु वह भंगेड़ी भ्रम में यह समझ बैठा था कि वह रानक से मिला था ।'

'ऐसा क्यों किया ?' काक ने पूछा ।

'वरना तू आता जो नहीं ।'

'आपने कहलाया होता तो भी मैं आता और निश्चय ही आता ।'

'क्यों, पाटण की चाकरी छोड़ दी ?' तनिक तिरस्कार से खेंगार ने पूछा ।

'नहीं । अब तक तो चाकर हूं । कब की बात भगवान सोमनाथ जानें ।'

'क्यों ? फिर तेरे स्वामी क्रुद्ध हो गए हैं क्या ?' रेवा ने हँसकर पूछा । उसकी हँसी में पहले जैसा ही विनोद झलकता था ।

'बापू ! अपनी पीड़ा मैं स्वयं सम्भाल लूँगा । यह कहिए कि मुझे क्यों बुलाया ?'

खेंगार ने सावधानी से चारों ओर देखा और फिर धीमे से कहा—'मुझे तेरी सहायता की आवश्यकता है काक ।'

'मैं प्रस्तुत हूं ।'

'मुझे पाटण के साथ सन्धि करनी है ।'

'स · · · न्धि !' काक आश्चर्य चकित हो गया ।

'धीरे बोल । कोई सुन लेगा । काक, आश्चर्य की इसमें नई बात क्या है भाई ?' शांत और विनोद-भरे स्वर में खेंगार ने कहा, 'खेंगार

ने जयसिंह देव को पन्द्रह वर्ष तक छकाया और अब भी जूनागढ़ के कंगुरे अखंड हैं। फिर भी सोरठ का रा' सन्धि की याचना करता है यही जानना चाहता है न ?'

'हां।' काक ने कहा।

'काक ! कोई रा' कभी नतमस्तक नहीं हुआ और जूनागढ़ ने कभी विजेता का स्वागत नहीं किया। इसलिए सन्धि की बात करते हुए मेरे प्राण कांप रहे हैं। गत वर्ष मुझे मुंजाल ने सन्धि की सलाह भेजी थी तो मैंने सलाह लाने वाले को गधे पर बिठाकर घुमाया था।

'तो अब क्या हो गया ?'

खेंगार ने एक गहरी सांस ली—'भाई मुझे मालूम नहीं था कि जयदेव स्वयं भी रण में भाग लेंगे।'

काक आँखें फाड़कर रा' की ओर देखने लगा। खेंगार जैसे अडिग वीर के हृदय में कायरता ?

'तो उससे क्या ?'

'उससे क्या ? काक ! मैं वीर राजपूत हूं, और वीर राजपूत का सामना करने से मैं कभी डरा नहीं। किन्तु तुम्हारा जयदेव न टेक का ही दृढ़ है और न राजपूत ही।' खेंगार ने कटुता पूर्वक कहा।

'बापू ! मैं नहीं समझ पाया।'

'काक ! जयदेव युद्ध के लिए अवश्य निकला है, किन्तु जूनागढ़ लेने नहीं।' कटाक्ष-भरे स्वर में खेंगार ने कहा।

'तो ?'

'वह पुनः राणक को लेना चाहता है।'

काक पीछे हटा, 'क्या पागल हुए हो ?'

'नहीं, उसकी दृष्टि तो वहाँ है। उसे राजपूत की टेक की क्या चिन्ता ? वह कोई मनुष्य है ? राक्षस और पिशाच के बल पर जो राजपूत लड़ता है वह कोई आदमी है ?'

'बाबरा भूत की बात कह रहे हो ?'

'तुम्हारे महाराज की प्रत्येक विशेषता निराली है। बाबरा भूत उनका सेवक है सो तो ठीक। किन्तु जब से वह वंथली आया है तब से स्वयं बाबराभूत हो गया है। गाँवों में आग लगा दी जाती है, चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। बाप-दादा यवनों की कथा कहा करते थे। वैसी ही दशा हो रही है। मुझसे अपनी असहाय प्रजा की विपत्ति नहीं देखी जाती। इससे तो सन्धि करके नाक कटाना अधिक अच्छा है।'

'महाराज! आप सम्पूर्ण कुल के कलंक बन कर रह जायेंगे।'
'हाँ। किन्तु अपनी निःसहाय प्रजा और अपनी राणक की रक्षा तो कर लूँगा।'

महाराज! वैसे सन्धि करना मुझे अच्छा लगता है। लाट का विग्रह भी मैंने ऐसे ही समाप्त किया था। किन्तु प्रश्न तो यह है कि जयदेव महाराज मानेंगे भी या नहीं; काक ने कहा।

'उससे भी बड़ी कठिनाई एक और है।'

'कौन सी?'

'राणक की।'

राणक देवी की? काक ने पूछा।

'हाँ, काक! तुझे बुलाने का मुख्य हेतु इसी बात को समझाने का ही है भाई! राणक स्त्री नहीं, जगदम्बा का अवतार है। लोग मुझे यश देते हैं किन्तु जूनागढ़ यदि अब तक टिका रह सका है तो उसी के प्रताप से। उसी के उत्साह से हम जीवित हैं। उससे सन्धि की बात कौन कर सकता है?'

'आपने उनसे बात नहीं की?'

'नहीं, साहस जो नहीं होता, काक! यह न होती तो मैं युद्ध में कभी का हार जाता—और जूनागढ़ भी अब तक भूमिसात् हो गया होता। किन्तु मेरी राणक दे—खेंगार ने स्नेह मय वाणी में कहा, 'के साहस ने हमें खड़ा रहने दिया। अब उसके दृढ़ संकल्प के विरुद्ध कौन जाय? सम्भव है तू उसे समझा सके।'

भी अपार्थिव था। काक का मन अपनी स्वाभाविक स्थिरता को स्थिर न रख सका। उसने इस स्त्री को साष्टांग प्रणाम किया।

राणक देवी ने काक को नहीं पहचाना; किन्तु रा' को देखकर वह उठी उसका छोटा एवं क्षीण शरीर धनुष के दण्ड के समान झुका; उसके मुख पर अवर्णनीय भक्ति की मुस्कराहट छाई हुई थी।

पधारिये महाराज!' उसने आदर से कहा। उसकी वाणी में दबाई हुई भावना का कंपन था। खेंगार भक्ति से बैठ गया।

'यह कौन हैं?'

'देवी! आपने मुझे नहीं पहचाना?' कहकर काक ने वस्त्र हटा दिया।

'कौन भाई काक?' आँखे फाड़कर राणक बोली।

'हाँ।'

राणक देवी को गहन आँखों की गहराई से भी किरणें फूट पड़ीं। 'तुम यहाँ?' उसके स्वर में कुछ-कुछ शंका थी।

'देवी!' काक ने कहा, मैं जयदेव महाराज का भेजा नहीं आया हूं। मुझे तो बापू ने बुलाया था।'

'क्यों?' उसने अपने पति की ओर घूमकर प्रश्न किया।

'मुझे?' इससे सलाह लेनी थी।

'किस विषय में?' उसने पूछा।

'बापू को मैंने सलाह दी है कि पाटण के साथ सन्धि कर डालो, नहीं तो जूनागढ़ मलियामेट हो जायगा।' काक ने राणकदेवी की ओर देखकर कहा।

राणक के मुख पर विचित्र परिवर्तन हुए। उसका फीका श्वेत मुख लाल हो गया मानो किसी ने अपमान किया हो, तमाचा मारा हो, और उसके मुख पर भग्न गौरव की भाषा स्पष्ट हो गई। खेद से वह कुछ पीछे हटी और फिर रा' के सामने देखने लगी—फिर धीमी और कांपती हुई वाणी में प्रश्न किया 'मेरा रा' जयदेव से सन्धि किसलिए

करे ?' सर्पीली आँखों से उसने काक की ओर देखा ।

उसकी वाणी में तिरस्कार न था, डांट न थी फिर भी काक को तिरस्कार और डांट दोनों मिले । एक वाक्य ही में इस अपार्थिव स्त्री की अतुल मृदुता, उसकी पतिभक्ति और उसके अपने पति के चारों ओर रचे हुए स्वप्न दृष्टिगोचर हो गए । इस स्त्री के लिए खेंगार मनुष्य नहीं दुर्जय देवता था । इस देवता की वह पूजा करती थी । खेंगार और काक दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा । उस दृष्टि से काक ने अपने प्रयत्न की निष्फलता स्वीकार की । फिर भी काक ने एक बार फिर प्रयत्न करने का निश्चय किया ।

'देवी ! ' प्रजा भीषण कष्ट में है और सम्पूर्ण सोरठ उजाड़ होता जा रहा । किसी प्रकार तो जूनागढ़ की रक्षा हो ।......।'

'काक ! ' एक गहरी साँस लेकर देवड़ी बोली, मेरा रा' है तो पीड़ित प्रजा कल फिर सुखी होगी और उजाड़ सोरठ में राग-रंग होंगे ।'

'किन्तु, न करे नारायण, कहीं जूनागढ़ पराजित हो जाय तो....'

'तो महाराज का क्या होगा, यही न ?' देवड़ी ने धीमे से प्रश्न किया, 'काक ! मेरा रा' कभी झुका नहीं और कभी झुकेगा भी नहीं । जैसा यह गिरनार और वैसा ही यह खेंगार । दोनों में से एक भी न डिग सकता है न झुक सकता है ।'

'देवी ! भोलानाथ आपके मनोरथ सम्पूर्ण करें ।' आँखों में तैरते पानी को रोककर काक ने कहा, वापू सन्धि का विचार करें तो...?' उसने रा' की ओर देखा ।

देवड़ी चमकी और फिर पीछे हटी । उसने पीछे की दीवाल पर हाथ टेका और दृष्टि रा' पर डाली । उस दृष्टि में घोर वेदना थी । स्नेह-भरी वधू पति का प्रथम दर्शन करने जाय और शैया में शव देखकर जैसा क्रन्दन कर उठे वैसा क्रन्दन उस रानक की दृष्टि में था । उसी दृष्टि में यह भय भी प्रकट हो रहा था कि उसकी स्वप्न-सृष्टि का प्रलयकाल आ गया है ।

'महाराज ! ' फीके अधरों से वह खेंगार की ओर मुड़ी, परन्तु उससे बोला नहीं गया।

खेंगार ने पन्द्रह वर्ष इस देवी की छत्रछाया में व्यतीत कर दिए थे और उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा और उसके स्वप्नों से वह भली प्रकार परिचित था। देवड़ी की उसमें श्रद्धा न रहे, उसके स्वप्नों में पति को अर्पित की हुई मानवता से वह गिर पड़े, इससे तो सम्पूर्ण संसार जल कर भस्म हो जाय उसी से वह प्रसन्न होता।

वह काक की ओर देखकर मुस्करा उठा और उसकी सिंह के समान भव्य मुख-मुद्रा पर आत्म-श्रद्धा फिर आलोकित हो गई।

'काक ! देवड़ी सत्य कहती है। जीता रहूं या मर जाऊँ खेंगार तो यहीं खड़ा रहेगा गिरनार के समान निश्चल और दुर्जय।'

राणक के मुख पर प्रशंसा की छाया फैल गई; उसकी प्रेम-भीनी आँखें पति पर जाकर टिक गईं।

'काक ! तेरा परिश्रम व्यर्थ है, वह बोली, 'मेरे रा' की तो सदा विजय ही है।'

यह बच्चों जैसी अडिग श्रद्धा देखकर काक के खेद की सीमा न रही। 'किन्तु—किन्तु—फिर आपका ....'

'मेरा ! ' राणक देवी इस प्रकार बोली मानो प्रश्न निस्सार है, 'मेरा क्या होने को है ? इस भव में या—'उसके गले में तनिक खखार आई, 'जहां यह वहां मैं। मेरे बिना इन्हें विजयमाला कौन पहनायेगा ?' उसने हँसकर पूछा।

काक की आंखों में आँसुओं की झड़ी लग गई।

'देवी ! तुम साक्षात् जोगमाया हो।'

'भाई ! मैं तो अपने रा' के चरणों की रज हूं।' देवड़ी ने इसी सुलभ सरलता से कहा।

'काक ! ' खेंगार ने हँसकर बात फेरी, 'तूने जो कुछ किया उसके लिए मैं तेरा आभार मानता हूं।'

'क्यों ?'

'तू न होता तो मेरी देवड़ी मुझे नहीं मिलती।'

'और महाराज मैं कलयुग में भी देवता का देवी के साथ ब्याह करवा सकूँगा यह स्वप्न में भी मैंने आशा नहीं की थी। मैं तो साधारण सैनिक हूं—आपके समान दृढ़ता मैंने कभी नहीं रखी। किन्तु इस जोगमाया के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जिन्हें मैंने एक किया है उन्हें मेरे जीते-जी तो ब्रह्मा को भी अलग न करने दूँगा। बस महाराज ! निश्चिन्त रहें और विजय लाभ करें।' वह और खेंगार पुनः आलिंगन में गुथ गये।

'काक ! तू कब आया ? भोजन किया ?' देवड़ी ने पूछा।

'हां, देवी !'

'और तेरी पत्नी कैसी है ?' उसने स्नेह से पूछा।

'देवी ! मैंने और आपके रा' ने एक ही समय शंकर-पार्वती की पूजा की थी।'

'अच्छा। मंजरी भी तो हमारे जूनागढ़ की ही कहाती है।'

'ऐसा तो है ही। देवी, अब आप बैठिये। महाराज, अब आप मुझे आज्ञा दें तो जाऊँ।'

'रात यहीं रहकर जाना। तू थक गया है। प्रातःकाल जूनागढ़ देखकर जाना।'

'बापू मुझे रातों-रात वंथली जाना है, और जूनागढ़ मुझे देखना नहीं। यह भी हो सकता है कि जूनागढ़ पर चढ़ाई करने का काम मुझे सौंप दिया जाये ?'

'काक तेरे जैसा और नहीं देखा।' खेंगार ने कहा, तूने वर्षों पहले मेरी मानी होती और जूनागढ़ आकर बस गया होता तो हम दोनों क्या कर डालते ?'

'महाराज ! आपका शौर्य आपकी टेक देखकर मुझे भी ऐसा ही लगता था। किन्तु जैसी सोरठ की टेक आपको प्यारी है वैसी लाट की

मुझे। अच्छा देवी, आज्ञा ?'

'भाई ! मेरे आशीर्वाद ।' राणक देवी न कहा।

जाते-जाते काली ओढ़नी में मढ़े हुये उस अप्रतिम स्त्री के क्षीण मुख की ओर काक ने एक वार देखा, मन-ही-मन प्रणाम करके खेंगार के साथ बाहर निकल गया।

बाहर निकलते समय मुख पर वस्त्र बांधते हुए उसने कहा, 'महाराज ! चिन्ता न कीजिएगा, जूनागढ़ का अभी तक कंकड़ भी नहीं हिला है' और जयदेव महाराज मनस्वी पुरुष हैं अतः कुछ होने का नहीं।'

'तुझे जूनागढ़ लेने को कहेंगे तो ?' खेंगार ने शांत और विनोद भरे स्वर में कहा।

मुझे जूनागढ़ लेने को कोई नहीं कहेगा, और आपके कथनानुसार कोई कहे तो भी मैं लूँगा नहीं।'

'नहीं, लेना। तेरे हाथ मृत्यु पाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। सच जान मृत्यु से मुझे तनिक भी भय नहीं है।'

'तो बापू ! मरने के पश्चात् क्या होगा इसका भी तनिक डर न रखिए। मुझे एक डर है—कल मेरा क्या होगा यह समझ में नहीं आ रहा है।'

'काक ! तेरा कोई कुछ करने का नहीं। मैं भी पाटण से कुछ-कुछ परिचित हूं। तेरा बाल भी बांका करने का साहस किसी में नहीं है।'

'देखा जायगा।'

'ले मोतिया यह रहा। मोतिया, इन्हें वंथली के मार्ग पर छोड़ आ।'

'बापू की जो आज्ञा।' कहकर मोतिया काक को ले गया।

३४

जाने से पहले काक ने रा' से बहुत बातें कीं और तब भारी मन से मित्र से विदा ली। राणक देवी के व्यक्तित्व का काक पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इस प्रतापी स्त्री के अपने वीर पति और सम्पूर्ण जूनागढ़ पर अपने स्वप्नों का ऐसा जादू कर दिया था कि उसे कोई भंग नहीं कर सकता था। राणक और खेंगार के स्वप्न और गौरव बने रहें और पाटण की विजय भी हो जाय—इन दो वस्तुओं पर गहरा विचार करता हुआ काक जूनागढ़ से बाहर आया।

मोनिया उसे एक लम्बे पथ से गिरनार की दूसरी ओर ले गया जहां उसने उसकी आंखों की पट्टी खोल दी और इसके बाद दोनों बड़े वेग से वंथली की ओर चले। मेंदरड़ा की ओर कई दिनों से सोरठी और पट्टणी सैनिकों में झड़प हो रही थी। इसलिए उन्होंने उससे अलग दूसरा मार्ग पकड़ा। उस ओर थोड़े-थोड़े अन्तर पर जूनागढ़ की चौकी या थाना मिलते, किन्तु मालूम होता है मोनिया सब चौकीदारों को पहचानता था क्योंकि उसे देखकर कोई भी काक के विषय में पूछताछ नहीं करता था। यात्रा कुछ कठिन अवश्य थी। पथ ऊंचा-नीचा था, खाइयाँ भी बीच में पड़ती थीं, इसलिए वह जल्दी-जल्दी नहीं चल सकते थे। मार्ग में पड़े हुए शवों को देखकर घोड़ियाँ चमक उठती थीं।

थोड़ी देर में वे एक टेकरी पर पहुंच गए, जहां वह विश्राम करने के लिए ठहर गए। टेकरी के नीचे एक चौकी थी जहां कुछ सैनिक अलाव के चारों ओर बैठे हुए थे। एकाएक टेकरी के दूसरी ओर से घोड़े की टाप सुनाई दी। अहीर और काक दोनों ने ध्यान से चारों ओर देखा। दूर एक काला धब्बा वेग से चौकी की ओर चला आ रहा था और दूसरा वंथली की ओर वाले जंगल में घुसा जा रहा था। अहीर ने शंकित होकर चारों ओर देखा और शिकारी कुत्ते के समान सूंघने लगा। काक वेग से आते हुए अश्वारोही की ओर एकाग्रता से देख रहा था।

'मालूम होता है तुम्हारे चौकीदार, ढंग से चौकीदारी नहीं करते।'
बापू ! कोई परिचित व्यक्ति ही होगा, नहीं तो जूनागढ़ की चौकियों से निकल आना सुगम नहीं है।'

'चलो देखें।' कहकर काक टेकरी से उत्तर कर चौकी की ओर गया। वह अश्वारोही चौकी के निकट पहुंच चुका था और चौकीदार उठकर उसके निकट पहुंच गये थे। अश्वारोही ने अपने मुँह पर वस्त्र बाँध रखा था। मोतिया चतुर था उसने तुरन्त अश्वारोही को पहचान लिया और आगे बढ़कर प्रणाम किया, 'देशलदेव बापू को घणी खम्भा।'

चौकीदार और अश्वारोही दोनों चौंक पड़े। इधर काक भी चौंका। वर्षों पहले उसने देशलदेव को देखा था और यह भी सुन रखा था कि इस समय देशल और उसका भाई विशाल दोनों खेंगार के पक्ष में हैं। इसलिये इस समय उसका मिलना काक को भला नहीं लगा।

'कौन मोतिया !' चकित होकर देशलदेव ने पूछा। देशलदेव और मोतिया को पहचान कर चौकीदार दूर खिसक गये। काक भी दूर खड़ा रहा।

'हां बापू ! किन्तु इस समय यहाँ आप कैसे ?'

'मैं चौकियाँ देखने ही निकला हूं।'

'ऐसा ?' मोतिया ने नम्रता से कहा, 'एक आदमी को अपनी चौकी के बाहर भेजना है।

देशलदेव ने शंका से काक की ओर देखा, 'कौन है ?'

'बापू का आदमी है।'

'किन्तु यह है कौन ?' अपनी घोड़ी मोतिया की घोड़ी के निकट लाकर देशल ने धीमे-से पूछा।

'मुझे नहीं मालूम।'

'ऐसा कभी हो सकता है ?' देशल ने हँसकर पूछा।'

'हो सकता है तभी तो। नहीं आपसे कहने में क्या बाधा ?'

'अच्छा ठहर, पूछता हूं।

'नहीं बापू ! महाराज व्यर्थ ही क्रोधित हो जायेंगे ।' मोतिया ने कहा

'अरे ऐ ? इधर आ ।' देशल ने काक को निकट बुलाया। काक घोड़ी थोड़ी आगे ले आया और खड़ा हो गया ।

'तेरा नाम क्या है ?'

काक ने मौन रहकर मोतिया की ओर संकेत किया ।

'आप इससे कुछ न पूछिए ।' मोतिया ने अधीरता से कहा, 'हम जायेंगे । हमें देर हो रही है ।'

'यह नहीं हो सकता ? मुझे जानना ही पड़ेगा ।' देशल ने तनिक क्रोध में कहा, नहीं तो चलो महाराज के पास ।'

'बापू ! मोतिया अहीर पर भी विश्वास नहीं ?'

'आजकल किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता ।'

मोतिया का मुख क्रोध से तमतमा उठा । काक ने देखा कि यदि बात बढ़ जायगी तो गड़बड़ हुए बिना न रहेगी । उसने घोड़ी को एड़ मारी और आगे आया।

महाराज !' बनावटी स्वर में काक बोला । देशल और अहीर ने ऊपर देखा । काक अपनी घोड़ी देशल की घोड़ी के निकट ले गया और नीचे झुककर देशल के कान में कहा—'बापू, जिससे आपने अभी-अभी भेंट की है मैं उसी का आदमी हूं ।

देशल चमका; फीका पड़ गया, और उसकी अस्वस्थता का अनुभव करके उसका घोड़ा भी उछल पड़ा।

'चल मोतिया ! काक ने कहा और उसने और अहीर ने अपनी-अपनी घोड़ियों को एड़ लगाई । देशल अपनी पगड़ी सम्भालता ही रह गया ।

'बापू ! आपने चमत्कार की बात की ।' मोतिया ने कहा।

'अरे यह तो मेरा पुराना मित्र है।' काक ने कुछ दूर दौड़ने के बाद घोड़ी रोकते हुए कहा ।

'मोतिया, अब तू जा । वंथली वह रही । मैं अपने आप ही चला जाऊंगा ।'

'भटक जायेंगे तो ?'

'कैसी बात करता है ? हाँ, देख महाराज से कहना कि कुछ संदेशा कहलवाना है इसलिए अगले बुधवार को तुझे यहाँ भेज दें। यदि कुछ कहना होगा तो मैं उस दिन मध्य रात्री को इसी स्थान पर आऊँगा। बापू और देवी को मेरी जय सोमनाथ कहना।'

'जो आज्ञा।' कहकर मोतिया ने अपनी घोड़ी घुमा दी। हो सके तो इस 'बापुड़ी' को वापिस भेज दीजियेगा। बड़ी समझदार घोड़ी है।

'बेटी आना।' अहीर ने घोड़ी से कहा।

काक कुछ देर तक खड़ा रहा। वंथली जाने का मार्ग सीधा जान पड़ता था। वह तुरन्त घोड़ी पर से उतरा और धरती पर कान लगाकर लेट गया। धीरे चलते हुए घोड़े की टाप-सी कुछ सुनाई दी। वह तुरन्त घोड़ी पर चढ़ बैठा और घोड़ी को दौड़ा दिया।

थोड़ी देर में आगे जाते हुए किसी घोड़े की टाप स्पष्ट सुनाई देने लगी। पाटण के मण्डलेश्वर का पुत्र और खेंगार का भाणेज विश्वासघाती देशल इस समय वंथली के किसी व्यक्ति के साथ गुप्त मन्त्रणा करे और यह कहते ही कि वह उस व्यक्ति का गण है देशलदेव का चेहरा फीका पड़ जाय—काक के लिए इतना बहुत था। वह वंथली जाने से पहले वहाँ की परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए व्याकुल था। वंथली जाने वाला यह व्यक्ति कौन था, यह जान लेने की भी उसने अत्यन्त आवश्यकता समझी।

जैसे-जैसे उसकी घोड़ी आगे बढ़ती गई, वैसे-वैसे आगे का घोड़ा और वेग से भागने लगा। फिर एकाएक उसकी चाल धीमी हो गई। जब काक उस घोड़ेके पास पहुंचा तो घोड़ा अकेला चल रहा था। काक मन-ही-मन हँसा। घुड़सवार चतुर लगता था किन्तु काक की बराबरी कर सके ऐसा नहीं था। काक अपनी घोड़ी पर से उतर पड़ा और उस घोड़े पर बैठकर आगे चल पड़ा।

जब उसने देखा कि वंथली तनिक निकट आ गई है तो वह मार्ग के

निकट एक खेत में घोड़ी की लगाम हाथ में लेकर लेट गया। थोड़ी देर में काक ने जो सोचा था वही हुआ। उसकी घोड़ी पर बैठकर एक व्यक्ति आया और उसे सोया हुआ समझकर घोड़ी रोककर देखने लगा। फिर कुछ देर विचार करके वह घुड़सवार वंथली की ओर चल दिया।

तब काक ने विश्राम करने के लिए आँखें मीच लीं।

३५

घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर काक उठ बैठा। चारों ओर उषा का प्रकाश फैला हुआ था; फिर भी काक को ऐसा लगा मानो उसने कोई भयानक स्वप्न देखा हो। दो बलिष्ठ काली भुजाओं ने उसे धरती पर दबा रखा था और उसे एक भयानक मुख दिखाई पड़ रहा था।

मुख भयंकर और घोर काला था। विशाल और भयंकर आंखों से पुतलियाँ निकली पड़ती थीं। मुख पर नाक के नाम के दो बड़े नथने थे और नीचे लटकते हुए होंठ तक एक तीक्ष्ण दाँत था। सर और छाती पर झखाड़ के समान झबरे और लम्बे बाल थे। मुखाकृति जितनी भयंकर थी उतनी ही अस्वाभाविक भी थी। क्षणमात्र के लिए काक चकरा गया। उसे लगा उसका थका हुआ मस्तिष्क ऐसा अमानुषिक चित्र खड़ा करके उसका उपहास कर रहा है। किन्तु उसके कंधों पर का दबाव तो तथ्य था। उसे जयदेव महाराज को वश में करने वाले बाबरा भूत की याद आ गई। उसने इस भूत की बात असत्य ही मानी थी; परन्तु इस समय इस बात का प्रमाण था कि बात सत्य है।

पिशाच के साथ पाला पड़ा है यह विचार आते ही उसकी सुध-बुध जाने को थी कि उसके मस्तिष्क के सामने विशुद्धि एवं पार्वती के अवतार के समान उससे दूर पड़ी मंजरी की छवि आ गई और उसे देखकर उसमें

सनातन ब्रह्मतेज का गर्व जाग पड़ा । आधे क्षण में उसने गायत्री पढ़ी और चपलता के साथ अपना सिर ऊपर उठाया और ललाट फेरकर वेग से राक्षस की नाक से भिड़ा दिया ।

काक को चक्कर आ गया, किन्तु वह राक्षस वेदना-भरी चीत्कार करके काक के कन्धे पर रखे हुए दोनों हाथ हटाकर पीछे हटा ।

काक का भय बिल्कुल जाता रहा । राक्षस को असह्य वेदना हो रही थी क्योंकि वेदना के मारे वह अपनी नाक दबा रहा था । उसकी आँखों से ऐसा लग रहा था कि वह यह सोच ही न सकता था कि यह मनुष्य इतनी दृढ़ता और तत्परता से उस पर आक्रमण भी कर बैठेगा । काक का सिर चक्कर खा रहा था किन्तु उसकी दृष्टि की तीक्ष्णता कम न हुई थी । वह राक्षस उससे एक हाथ लम्बा था, उसकी शारीरिक गठन लोहे के समान थी और उसकी घोर क्रूरता उसके मुख से स्पष्ट टपक रही थी । यदि वह हाथ लगे अवसर को खो देगा तो रक्षा करना कठिन हो जायगा । यह काक ने स्पष्ट देख लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण ऐसे राक्षस को जीतने की कीर्ति का भी उसे लोभ होने लगा ।

उसने देखा कि उसकी लकड़ी उस राक्षस के पांव के पास पड़ी हुई थी । वह यदि हाथ लग जाय तो इस राक्षस पर विजय पाना काक को अधिक सरल लगा । एकाएक वह नाक सहलाते हुए राक्षस के सामने कूदा और उसके मुख पर मुष्टिका-प्रहार करने का स्वांग रचा । पुनः उसी स्थान पर चोट लगने के डर से राक्षस पीछे हटा और काक को मारने के लिए हाथ की मुट्ठी भींच ली । किन्तु काक आगे नहीं आया । वह लकड़ी के पास ठहर गया और पाँव से उठाकर लकड़ी हाथ में ले ली । जैसे ही उस राक्षस का पंजा उसे पकड़ने को आगे बढ़ा वैसे ही काक ने पीछे हटकर सामने के हाथ पर पूरी शक्ति से लकड़ी का प्रहार किया ।

पीड़ा से राक्षस चीख पड़ा । वह कूदकर कुछ दूर गया, और सामने की हुई लकड़ी की सीमा को पारकर काक पर टूटा । काक तनिक

घबराया भी, किन्तु सहज बुद्धि की सहायता से उसने लकड़ी अपने और राक्षस के मध्य में कर ली। जिस समय राक्षस उसे धरती पर पटक देने में मग्न था उस समय वह अपनी लकड़ी राक्षस की दोनों टाँगों के बीच में डाल रहा था। काक भूमि पर गिरा अवश्य, किन्तु उसी समय उसने लकड़ी पर ऐसा जोर मारा कि राक्षस की टांगें एक-दूसरे में फंस कर मुड़ने लगीं। जैसे-जैसे वह काक को दबाता वैसे-वैसे काक बड़ी चतुराई से पकड़ी हुई लकड़ी के एक सिरे को दबाता, दूसरे सिरे पर उसकी टाँगें फटी पड़ रही थीं। क्रोध से वह दहाड़ पड़ा और अपनी टांगें छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। छाती पर जैसे दबाव कम हुआ काक ने साधारण प्रयत्न से ही पलटा खाया—साथ ही लकड़ी के दबाव में भी परिवर्तन हो गया। एक पर दूसरी टाँग आ जाने के कारण राक्षस लुढ़क कर चित हो गया। बस फिर काक लपक कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। पाँव में से लकड़ी निकालकर काक ने उसे उसकी गर्दन पर रख कर दबाया।

'राक्षस ! कौन है तू ?' हाँपते हुए काक ने पूछा। राक्षस की पुतलियां फट रही थीं परन्तु वह दाँत पीसकर काक को उठा फेंकने का प्रयत्न भी कर रहा था। काक ने गर्दन पर की लकड़ी दबाई; 'खबर-दार ! थोड़ी सी भी गड़बड़ की तो गला दबा दूँगा।'

लकड़ी के दबाव से राक्षस का दम घुटने लगा और उसकी पुतलियां इधर-से-उधर, उधर से इधर होने लगीं। काक ने गले पर का दबाव कम कर दिया।

'बोल तू कौन है ?' काक ने पूछा और हाथ से गला दबाने की धमकी दी।

थोड़ी देर में राक्षस ने कहा—'मैं भूत।'

'बावरा ! मैं पहले ही तुझे पहचान गया था। फिर तू सबको दुःख देता है। अब मैं तेरे प्राण ही लूंगा।' कहकर काक फिर लकड़ी दबाने लगा।

ना, ना कहकर बावरा ने सिर हिलाया । उसके मुख पर दया-याचना का भाव छा गया । उसकी आँखों में आग्रह था । उसकी वाणी में भी दया की याचना थी । काक हँसा ।

'ना, ना क्या ? नहीं, तो मुझे बाँधकर महाराज के निकट ले जाऊँगा ।'

'महाराज ! ना, ना, वह तुझे मार डालेंगे ।' तनिक घबराकर बावरा ने कहा ।

'तुझे किस लिए मारेंगे ?'

'तुमने मुझे पकड़ा इसी से ।'

'ओ !' काक हँसा तेरे कारण महाराज दुर्जय समझे जाते हैं । इस-लिए न ? देख बावरा तुझे जीता छोड़ दूँगा और यह बात किसी से भी नहीं कहूंगा । किन्तु मैं जो कहूं वह करने का वचन दे, नहीं तो तेरा समय आ गया ।'

'बापरे ! अपने बाप की सौगन्ध—वचन देता हूं । तुम्हारा काम न करूँ तो मां हिंगलाज चाचर मुझे लगे । बस ?'

'हां, अब मैं पूछूं उसका उत्तर दे ।'

'पूछो ।'

आजकल राजा का अधिक विश्वासपात्र कौन है ?'

'जगदेव !'

'जगदेव कौन है ?' चकित होकर काक ने पूछा ।

'परमार ।'

'मुंजाल मेहता और बड़ी देवी कहां हैं ।'

'यहीं हैं ।'

'छोटी देवी कैसी हैं ?' काक ने लीलादेवी का समाचार पूछा ।

'मालम नहीं ।'

'उदा मेहता क्या करते हैं ?'

बावरा ने गर्दन हिलाई ।

'अब तू कौन है, बोल ?'

'मैं ? भूत।'

'भूत !' काक हंसा—'तो सच नहीं बोलेगा ! नहीं बोलेगा न, बोल।' कहकर काक ने लकड़ी तनिक जोर से पकड़ी।

'भील।'

'तो मुझे चौकी पार कराकर वंथली में ले चल।'

गर्दन हिलाकर बावरा ने हां कहा।

'काक बावरा पर से उठ गया और लकड़ी जोर से पकड़ ली। बावरा विश्वासघात करता है या क्या, यह देखता हुआ काक खड़ा रहा, किन्तु बावरा इतना अधिक घबरा गया था कि काक के सम्मुख दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सका।

काक घोड़े पर बैठा और बावरा लगाम पकड़कर दौड़ने लगा। घोड़े से भी अधिक वेग से वह दौड़ रहा था। थोड़ी ही देर में वह चौकी के सामने जा पहुंचा। बावरा ने दूर ही से प्राण सुखा देने वाली चीत्कार की। उसे सुनकर चौकीदार कांप उठे, और सिर के बल गिर पड़े। काक ने चौकी पार की।

'तुझे जाना हो तो जा। किन्तु तू कहां मिलेगा ?'

'संध्या को श्मशान में और दिन को राजगढ़ के नीचे वाले चौक में। आप कौन हैं ?'

'मैं ? तू क्यों जानना चाहता है ? किन्तु सुन, तुझे एक बात बताता हूं।'

'कौन सी ?'

'भड़ौच का दुर्गपाल काक प्रभास से इस ओर आ रहा है। सम्भव है, दिन निकले आ भी पहुंचे। उसे पकड़कर महाराज के निकट ले जायगा तो महाराज बहुत प्रसन्न होंगे।'

बावरा बोला, 'का—क ?' और हंसकर गर्दन हिलाने लगा।

'तू उसे पहचानता है क्या ?' काक ने तनिक सावधान होकर पूछा।

'नहीं। महाराज ने उसे पकड़ने की आज्ञा दी है।'

'उसे कौन लेने गया है।'

'वाहड़।'

'उदा का पुत्र?'

'हाँ।'

'अच्छा?' काक ने कहा, 'तो जा आनन्द कर।' कहकर काक ने घोड़ा बढ़ा दिया। बाबरा दूसरे मार्ग से चला गया।'

बाबरा के आदृष्ट होते ही काक का ध्यान अपने घोड़े और उसके स्वामी की ओर गया। यह पुरुष कौन था, इसका निश्चय करने के लिए उसने घोड़े की लगाम छोड़ दी ताकि अपना स्थान स्वयं ढूंढने के लिए वह स्वतंत्र हो जाय। काक अपने चारों ओर ध्यान से देखने लगा। जूनागढ़ राणक के प्रताप से अडिग था; जयसिंहदेव राणक को हथियाने का निश्चय कर चुका था, इस घोड़े का स्वामी और देशलदेव कुछ सम्मिलित षड्यन्त्र कर रहे हैं, और खेंगार की चले तो वह संधि कर ले! किन्तु इन सब में मुंजाल मेहता कहाँ है? क्या वह वृद्ध हो गया? क्या जयदेव ने गुरु को भी मात दे दी? क्या मीनलदेवी भी पुत्र की राजनीति के आधार पर चलने लगी हैं? और यदि ऐसा होता तो मुंजाल मेहता यहाँ किसलिए आए हैं? और उदा मेहता क्या कर रहा है? यह ग्रन्थि किसी प्रकार भी नहीं खुल पा रही थी।

ऐसा विचार करते-करते उसकी आँखों के सामने फिर हथियार साफ करती हुई यम का आह्वान करती हुई देवड़ी आई। काक ने मन-ही-मन संकल्प किया कि जयदेव का, रा' का या जूनागढ़ का जो हो सो हो किन्तु देवड़ी का गौरव अखंड रखने के लिए यदि प्राण भी देने पड़ें तो मुंह नहीं मोड़ूंगा।

फिर वह अपने विषय में सोचने लगा। जयदेव महाराज उसे पकड़ मंगवाने के लिए आतुर थे, उदा मेहता की भी यही इच्छा थी, परन्तु लीलादेवी उसकी सहायता की प्रतीक्षा कर रही थीं। यह सभी एक

साथ उसके लिए एकाएक कैसे पागल हो उठे हैं? इन सभी को क्या विभिन्न प्रेरणायें हुईं? या किसी एक ही स्वार्थ से या एक ही के कहने से सबको प्रेरणा हुई? ऐसी प्रेरणा कौन दे सकता है?

जयदेव महाराज का प्रताप वह स्पष्ट देख पा रहा था। उसे लगा कि अब मुंजाल का सूर्य अस्त हो रहा है। महाराज उदा का उपयोग कर रहे थे। भूत समझा जाने वाला बाबरा उसके प्रताप को अस्वाभाविक और दुःसह बना रहा था और जयदेव परमार जैसे विदेशी योद्धा को गुर्जर वीरों पर अपना क्रोध निकालने का अवसर मिल रहा था। काक मन-ही-मन विस्मित हो गया। निःसत्व, किन्तु महात्वाकांक्षी दिखाई पड़ने वाले लड़के का कैसा असीम विकास हुआ है?

चलता-चलता घोड़ा रुक गया। प्रकाश फैल गया था। राजगढ़ के अस्तबल के सामने घोड़ा खड़ा हुआ। निकट ही एक बड़ी हवेली थी। वंथली की सुरक्षित स्थिति देखकर पट्टणी दण्डनायक परशुराम के प्रति उसे मान हुआ। एक योजन की दूरी पर ही युद्ध चल रहा था। किन्तु यहाँ पाटण जैसी ही निर्भयता और शांति थी।

अस्तबल के बाहर ही एक व्यक्ति रगड़-रगड़ कर जिह्वा साफ कर रहा था। काक उसके निकट जाकर घोड़े पर से उतर गया।

'यह आप का घोड़ा है?'

'यह तो जेवरा है। तू कहाँ से लाया?'

'मैं? जिसका यह घोड़ा है मैं उसी का आदमी हूं। बापू से कहां भेंट होगी?'

'हवेली में, अभी उठे नहीं होंगे।' कहकर घोड़े वाले ने हवेली की ओर संकेत किया।

'तो यह घोड़ा बांध दूं?' काक ने पूछा।

'बांध दे न भाई।' हाथ मोड़कर उबासी लेते हुए वह बोला—प्रातः उठना ही कम परिश्रम नहीं है। आलसी लोगों के लिए तो अभी आधी रात है जी, चकचक नहीं करनी चाहिए सुबह-सुबह।

'घोड़े का तबेला कहां है !'

'उधर पास की दीवाल के निकट।'

काक घोड़े को अन्दर ले गया। उसने अन्दर दृष्टि डाली तो एक भी स्थान खाली न था। काक अन्तिम तबेले की ओर गया जिस ढंग से मोतिया हुचकारी मारता है उसी प्रकार काक भी धीरे-धीरे चलने लगा—'बापुड़ी ! बापुड़ी !'

अन्तिम नवेले में बंधी हुई घोड़ी हिनहिना उठी। काक मुस्करा दिया घोड़ी का चोर पकड़ा गया। वह बाहर आया।

'भाई ! एक भी तबेला खाली नहीं है।'

'क्यों कान खाए जाता है भाई, जितने घोड़े हैं उतने ही तबेले हैं, जा जहाँ कहीं तेरी इच्छा हो बांध दे।'

'बापू के घोड़े बड़े अच्छे हैं किन्तु यहाँ के नहीं लगते। तुम कहाँ के हो ?'

'मैं ? मैं तो खंभात का हूं।'

काक के मस्तिष्क में प्रकाश फूटा। उसका हृदय उछल पड़ा। 'बापू के साथ ही खंभात से आए होंगे ?'

'हाँ !'

'अच्छा, जय सोमनाथ !' कहकर काक वहां से विदा हुआ, और मन-ही मन बड़बड़ाया—धनेरे उदा मेहता की ! भाग्य से तू यहां भी पहले ही मिला !'

३६

सूर्योदय हो चुका था इसलिए छिपकर राजगढ़ में प्रवेश करना काक को बहुत कठिन लगा। वह राजगढ़ की प्रदक्षिणा करने लगा। सभी द्वारों पर कड़ा पहरा लगा था। सामने के द्वार से तो प्रवेश किया ही

नहीं जा सकता था और फिर सुबह भी हो गई थी। समय अधिक व्यतीत हो जाय तो जाने क्या-क्या हो जाय। काक ने चारों ओर देखा। एक गली में से एक ब्राह्मण हाथ में पूजापात्र लेकर राजगढ़ के पिछले द्वार की ओर चला आ रहा था। काक को चक प्रेरणा हुई। वह शीघ्रता से उसकी ओर गया।

'काका ! तनिक इधर आना। कहकर वह ब्राह्मण को गली में ले गया।

'क्यों भाई।'

'मुझे पूजापात्र देना तो !'

'अरे छू जायगा,' वृद्ध ने कहा, 'तू कौन है ? क्या काम है पूजा पात्र से ?'

'मुझे राजगढ़ में पूजा करने जाना है,' काक ने कहा। वह ब्राह्मण काक के धूल से भरे हुए विचित्र मुख और शस्त्रों को देखकर गर्दन हिलाने लगा, 'तू —'

'काका ! अभी मैं नहीं गया तो जयदेव महाराज मेरे प्राण ले लेंगे।'

'जयसिंह—'

'हां। काम से मुझे रात बाहर चला जाना पड़ा। लौटने में देर हो गई। काका ! तुम अपने लिए दूसरा पात्र ले आओ।' कहकर काक ने पूजा-पात्र पकड़ लिया। वह वृद्ध ब्राह्मण घबरा गया।

'अरे, छू दिया, मुझे स्नान करना पड़ेगा।'

'जाओ, जाकर स्नान कर आओ और यह लो पैसे।'

'किन्तु यह तो बलात्कार''''ब्राह्मण तनिक जोर से बोला।'

काक ने उसकी ओर आंखें तरेर लीं।

महाराज आवश्यक समझते हों तो मेरी ओर से यह स्वर्ण-खंड दान कर देना। किन्तु बिना गड़बड़ किए चले आओ। नहीं तो —' कहकर काक ने अपनी लकड़ी संभाली। वृद्ध ब्राह्मण के होश जाते

रहे। परन्तु उसकी आँखें हथेली पड़े हुए स्वर्ण-खंड पर आजन्म सूम की सी लालसा से टिकी हुई थीं। थोड़ी देर में काक ने पूजा-पात्र के पानी से मुँह धोया, वस्त्र और शस्त्र उतारे और चन्दन पात्र से त्रिपुण्ड धारण किया।

'महाराज! आपका नाम?'

'दयानाथ चतुर्वेदी।'

'अब जाओ।' काक बोला।

वृद्ध भयभीत-सा चला गया और काक पूजा-पात्र लेकर रामगढ़ के एक छोटे द्वार के सामने गया। प्रहरी ऊँघ रहा था किंतु जैसे ही काक द्वार में घुसकर वेग से सीढ़ियाँ चढ़ने लगा वैसे ही उसकी नींद उड़ गई।

'ऐ महाराज! कौन हो?'

'मैं दयानाथ चतुर्वेदी का भतीजा हूं।' और आँखें टेढ़ी करके वह सैनिक की शक्ति का अनुमान लगाने लगा।

'वुड्ढे को क्या हो गया?'

'गाय ने मार दिया है।' कहकर काक जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा।

'अरे खड़ा तो रह। दया काका के नए भतीजे का मुख तो देखूँ।' कहकर सैनिक उसके पीछे दौड़कर पकड़ने आया। उसके निकट आने के पहले काक ने पूजा-पात्र ऊपर की सीढ़ी पर रख दिये और जैसे ही सैनिक एक सीढ़ी चढ़ा वैसे ही वह एक सीढ़ी उतर गया। सैनिक चिल्लाना चाहता था लेकिन उसके एक शब्द भी बोलने से पहले काक ने उसका गला पकड़ लिया। उसके शब्द अनबोले ही रह गए।

काक ने एक हाथ से कमर पटका उतारा और सैनिक के मुँह में ठूँस दिया। निश्चेत-से हो गए सैनिक को उठाकर वह ऊपर चढ़ गया और थोड़ी दूर पर उसे एक खुली कोठरी में डालकर द्वार बन्द कर दिया। दूसरे ही क्षण पूजा-पात्र हाथ में लेकर छद्मवेषी पुजारी ने महल में प्रवेश किया।

काक ने चारों ओर देखा किन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ा। कुछ दूर पर कोई स्त्री प्रभाती गा रही थी। वह उस ओर गया। एक दासी चक्की का 'गाला' साफ कर रही थी।

'बहन !' काक ने सम्बोधित किया।

'कौन ?'

'मुझे छोटी देवी के पास ले चल तो। देवी का पूजा का समय हो गया है और मुझे मार्ग नहीं मालूम।'

'पागल ! इस समय कहीं छोटी देवी पूजा करती हैं ?'

'आज उनका व्रत है। उठ। मैं उनके गाँव का ब्राह्मण हूं। तुझे खबर नहीं। मुझे विशेष रूप से बुलवाया है।'

'अच्छा ! परन्तु मैं उधर कैसे जा सकती हूं। मैं ठहरी दासी।'

'तू मुझे मार्ग तो दिखा। देख, तू वहाँ ले जायेगी तो देवी तेरा उपकार माने बिना नहीं रहेंगी।'

स्त्री को कुछ रहस्य-सा दिखाई दिया। उसे लगा कि इस भेद के भव से संकट दूर हो सकते हैं। उसने तुरन्त उठकर हाथ साफ कर लिए।

'मुख्य मार्ग से ले जाऊँ या चोर-मार्ग से ?'

'चोर-मार्ग से सुभीता रहेगा।'

वह रनिवास की पिछली सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आए। एक दासी खड़ी-खड़ी दातुन कर रही थी। वह नौकरानी उसके निकट गई।

'देवी जाग गईं ?'

'नहीं, क्यों ?'

'देवी के बुलाए हुए पण्डित जी आ गए हैं।'

'पागल हुई है ? इस समय देवी को पण्डित की क्या आवश्यकता पड़ी ? कहकर दासी तिरस्कार से कहने लगी।

'मंगी।' काक ने धीरे-से कहा।

दासी भृगुकच्छ की और रानी की विश्वासपात्र थी। उसने काक

की ओर देखा और उसे पुजारी के वेष में देखकर स्तब्ध हो गई।

'का···?'

'चुप रह। देवी को उठा। मुझे भेंट करनी है। सुन, इस नौकरानी को पहचान ले। इसे देवी से पुरस्कार दिला देना।'

'तेरा नाम क्या है?'

'देवी? वह अपने पवीता के बारहठ जी हैं न, मैं उनकी नई दासी हूं।' नौकरानी ने अपना सविस्तार परिचय दिया।

'ठीक है, दोपहर को आना। महाराज! आप इधर प्रतीक्षा कीजिए, देवी को उठाती हूं।'

काक तनिक खिसककर द्वार के पीछे खड़ा हो गया मंगी शीघ्र ही दौड़ती हुई आई—'पधारिए, देवी को बुलाती हैं।' काक के मुख पर विचित्र मुस्कराहट दौड़ गई, वह भृगुकच्छ की जिस कुंवरी का जयसिंह देव से ब्याहा था उसके पास गया।

३७

एक स्वर्ण जड़ित पलंग पर जयसिंहदेव महाराज की पटरानी लीला देवी उनींदी-सी बैठी थीं।

जम्बूसर के घेरे के समय जिस मृणाल कुंवरी से उसने भेंट की थी वह आज पहचानी भी नहीं जा सकती थी। तब की तुलना में आज उसका शरीर भरा हुआ था और उसके मुख का आकर्षक भी बढ़ गया था। सोने और हीरों के आभूषणों से उसका अंग-अंग चमक रहा था। चारों ओर पाटण की महारानी के अनुकूल वैभव दिखाई दे रहा था। उसके अंग के आभूषणों में अपना एक विशेष वैभव दिखाई पड़ता था।

इस समय उसके बाल बिखरे हुए थे, और जल्दी में ओढ़ी गई

ओढ़नी उसके माँसल शरीर की शोभा को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। आकस्मिकता से उसके होंठ खुले रह गये, उसके पंक्तिबद्ध दांतों का अपूर्व हार दिखाई पड़ रहा था। उसके मुख और शरीर पर आलस दिखाई दे रहा था मद का या नींद का यह कहना कठिन है, ऊँघ के भार से आधी झुकी पलकें उसकी आँखों के तेज को छिपा रही थीं।

जैसे ही काक ने प्रवेश किया उसने आंखें तनिक खोलीं। काक ने एक दृष्टि डाली। लीला देवी की आंखों में पहले जैसी ही स्थिरता और निश्चयात्मकता थी। काक सम्मान से द्वार के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर रानी की स्थिर आंखों में क्षणिक अस्थिरता आई और चली गई। उपेक्षा से ओढ़े गए वस्त्र के नीचे से दिखाई पड़ते पाँवों की उंगलियों की ओर उसने देखा—'काक! तू आ गया?'

'हाँ?' मुस्कराकर काक ने कहा, 'जीवित आ गया। मार्ग में कई बार मेरे प्राण लेने का प्रयत्न अवश्य हुआ, किन्तु आप तो जानती ही हैं, मुझ जैसे को यमराज तक नहीं ले जाना चाहते। आज्ञा? मुझे कैसे बुलाया?'

'मंगी!' शांत और स्थिर स्वर में लीला देवी ने कहा, 'तू बाहर जा, और किसी को आने मत देना।'

मंगी के बाहर जाते ही रानी घूमकर काक की ओर देखने लगी।

'इसी वेष में आने के कारण?'

'निश्चित होकर बता दूँगा। आपसे भेंट करने के लिए कई को चकमा दिया है। उनमें से एक भी यदि अपने स्वामी के पास पहुंच जायगा तो हमें बात करने का समय नहीं मिलने का। सम्भव है मेरा शिरच्छेद कर दिया जाय।'

'तेरा शिरच्छेद?' रानी ने भौंहों को तनिक टेढ़ी करके कहा।

'हां। मुझ पर महाराज और महाराज के मन्त्री कुपित हैं।'

'यह होते हुए भी तू उनकी सेवा करता है?' तिरस्कार से रानी ने

कहा। उसकी अांखों में अधिक स्थिरता आ गई।

'हां।' काक ने दृष्टि हटाकर नीचे देखा।

'क्यों ?'

'मुझे अपने ही ढंग से काम करना रुचता है। अब आपकी क्या आज्ञा है ?'

'आज्ञा !' लीला देवी तिरस्कार से बोली, तू मेरी आज्ञा मानता कब है ? अब तेरी क्या आज्ञा है, यही पूछने के लिए मैंने तुझे बुलाया है।' तिरस्कार-भरी वाणी में रानी बोली।

'मेरी आज्ञा ?' धीरे से काक ने कहा। झंझावात के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

'हाँ !' लीलावती ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने लाट छिनवाया, और पाटण मेरे सिर पर पटक दिया।'

'फिर भी आप सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर विराजी हुई हैं।' काक ने बात पूरी की।

रानी ने काक की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

'मैं तो थक गई हूं।'

किससे ?

'सबसे ?' रानी पुनः ऐसी शांति से बोली मानो हिसाब लगा रही हो, 'तूने कहा था मैं यहां स्वामिनी बनूँगी; किन्तु यहां तो लगता है प्रत्येक व्यक्ति स्वामी है।'

काक को लगा कि रानी वास्तविक व्यथा प्रकट नहीं कर रही है, अतः उसने उसे जानने का निश्चय किया, पृथ्वी के स्वामी जयसिंहदेव महाराज आपके चरणों में हैं।

'चुप रह', रानी ने ऐसी निश्चयात्मक वाणी में कहा मानो तलवार से प्रहार कर रही हो, 'तेरा पृथ्वी का स्वामी मनुष्य नहीं है।'

'तो...',

रानी ने उंगली के पोर गिनने प्रारम्भ किए 'वे देवता हैं—मनुष्य हैं—और पशु हैं। उन्हें मैं कैसे वश में कर सकती हूं ?'

काक ने व्यथा समझी। 'देवी !' वह बनावटी नम्रता से बोला, 'इतनी क्यों निराश हो रही हो ? आप क्या नहीं कर सकतीं ?'

'मैंने सब कुछ किया। एक भी कला नहीं छोड़ी। किन्तु अब वे वश के बाहर होते जा रहे हैं।' रानी फिर भी स्थिर चित्र की महत्वाकांक्षी, सुन्दरी ने अपनी व्यथा का वर्णन किया।

'आपको जो कहना हो शीघ्र कहिए क्योंकि समय निकला जा रहा है।' अधीर होकर काक बोला।

'तुझे उन्हें वश में करना होगा।' रानी ने कहा।

'किन्तु वह कैसे और क्यों वश में नहीं हैं यह तो कुछ बताइए।'

'वह राणक देवी के पीछे पागल हो गए हैं।'

'और इस पागलपन से इनकी रक्षा करनी है।'

'हाँ।'

'किस प्रकार ?' काक ने पूछा।

चाहे जनागढ़ जा, चाहे देवड़ी को वश में कर, चाहे महाराज को सीधा कर। तूने मुझे यहाँ ब्याहा है। अब युक्ति सोच निकालना भी तेरा ही काम है।'

रानी की भयंकर और पैनी दृष्टि देखकर काक को कंपकंपी-सी छूट गई।

'देखता हूं।'

'देखता हूं क्या ? मुझ पर कोई और पटरानी आई तो कुछ-न-कुछ होकर रहेगा।' अडिग शान्ति और निश्चय से लीलादेवी ने कहा, 'या तो तू नहीं रहेगा, या मैं न रहूंगी या फिर पाटण नहीं रहेगा।' उसने अपना हाथ अपने पांव पर मारा मानो पाटण को तोड़ रही हो।

'देवी ! आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। जिस क्षण मेरे जीते-जी आपके सिर पर दूसरी पटरानी आएगी उसी क्षण प्राण दे दूंगा। और कुछ ?'

'कैसे होगा यह सब ? रानी ने पूछा।'

'इसकी चिन्ता आप न कीजिए, मैंने आपसे भेंट की है यह बात किसी से न कहिएगा। मेरे वस्त्र और हथियार राजगढ़ की पिछली खिड़की वाली गली में पड़े हैं उन्हें मंगवा दीजिए।'

रानी ने मंगी को बुलाकर आज्ञा दे दी। कुछ क्षण दोनों मौन रहे 'फिर.....।'

'काक ! मंजरी कैसी है ?' तनिक तिरस्कार से रानी ने पूछा।

'प्रसन्न है।'

'और बच्चे ?'

'आनन्द में हैं।'

'लाट के क्या हाल-चाल हैं ?'

'अभी यहां से एक मूर्ख को दुर्गपाल नियुक्त करके भेजा है, और रेवापाल तो प्रतीक्षा कर ही रहा है।'

'तब क्या होगा ?'

'जैसी सोमनाथ की इच्छा। किन्तु देवी, मुंजाल मेहता क्या कर रहे हैं ?'

'ताँबूल चबाते हैं।'

'और उदा ?'

'महाराज के लिए राणकदेवी लाने के लिए व्याकुल हैं। वह तो तेरा शत्रु है न ?

काक मुस्कराया—'मुझे उकसाने की आवश्यकता नहीं।'

रानी ने हँसकर काक की ओर अस्थिर दृष्टि से देखा।

'और यह जगदेव कौन है ?'

'नया परमार योद्धा है। बहुत चतुर है। तुम सब पर धाक जमाने के लिए महाराज उसे लाए हैं।'

'अच्छा ! और बाबरा भूत—'

रानी के मुख का रंग तनिक फीका पड़ गया। वह.....।

क्यों ?'

'उसका नाम लेते ही तो मेरे अंग ठंडे पड़ जाते हैं।' मंगी क्या है!' रानी ने घूमकर पूछा।

'भटराज को खोजते हुए परमार यहां आए हैं।' मंगी ने कहा।

'कैसे जाना ?'

भटराज ने जिस प्रहरी को बन्द किया था उसी ने परमार को कहा लगता है।'

'अच्छा', शान्ति से रानी बोली, 'जाकर बाहर खड़ी रह। आए तो खड़ा रखना।' मंगी गई और रानी काक की ओर घूमी।

'घबराना मत। तू उस कमरे में जाकर वस्त्र पहन।

न, न, आप मेरी चिन्ता मत कीजिए। मुझे इस परमार से भी परिचय करना है।'

'देवी ? मंगी ने द्वार खुला रखकर रानी से कहा, जगदेव परमार आप से भेंट करना चाहते हैं।'

आने दे।' कहकर रानी ने हाथ के संकेत से काक को अन्दर भेजा और पलंग से उतर कर लहंगा-कँचुकी ठीक किए, ओढ़नी सिर पर ठीक से रखी और पुनः गर्व से बैठ गई।

वह पलंग पर बैठी ही थी कि जगदेव परमार अन्दर आया।

३८

जगदेव अन्दर आया। लीलादेवी ने उस पर उपेक्षा-भरी दृष्टि डालकर मुँह फेर लिया।

जगदेव मूर्ति के समान था। उसका विशाल कद था, छाती चौड़ी थी, उसके हाथ साधारण मनुष्य की जंघा के समान थे, उसका मुख

बड़ा और भरा हुआ था। उसे तेजस्वी नहीं—सुन्दर कहा जा सकता था। काली, सावधानी से संवारी हुई दाढ़ी मुख की शोभा बढ़ा रही थी। उसकी कमर में खड्ग लटक रहा था, पटके में दो कटारें शोभा दे रही थीं।

उसे देखकर अडिग शौर्य का स्मरण हो आता था किन्तु उसकी आंख में कुछ अगम्य-सा था—वह तेजस्वी न थीं फिर भी लोग उनसे घबराते थे। उनमें सज्जनता न थी। किन्तु हरामखोरी भी न थी। उनमें दुष्टता न होते हुए भी कोई उनको देखकर विश्वास नहीं करता था। जयसिंहदेव महाराज के दरबार में उसे कोई समझ नहीं पाता था। घबराते सभी थे। पट्टणी योद्धा उससे सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे। महाराज और उसकी शक्ति के भय से कोई उससे शत्रुता भी नहीं करना चाहता था। जगदेव समझता था कि पट्टणियों को दबा रखने की शक्ति केवल उसी में है। गर्वीले पट्टणी उसको तिरस्कार से देखते थे और मात्र उतना ही मान देते जितने से महाराज को क्रोध न हो। गर्विष्ठ, सत्ताधारी एवं विदेशी के बीच जितना भाईचारा हो सकता है उससे अधिक पट्टणियों और जगदेव के बीच में नहीं था।

किन्तु महाराज के महामन्त्री और अत्यन्त निकट के सम्बन्धी तो अपना तिरस्कार छिपाने का प्रयत्न तक नहीं करते थे। जगदेव भी जहां तक बनता उनके संसर्ग में नहीं आता था। उदा के साथ बहुत नम्रता से और परशुराम के साथ सम्मान से व्यवहार करता था। रानियों के साथ वह कोई सम्बन्ध नहीं रखता था और जहाँ तक बनता रानियाँ भी उससे कोई सम्बन्ध न रखती थीं। एक लीलादेवी अवश्य उससे शांत किन्तु तिरस्कार से व्यवहार करती थी। जगदेव के मुख पर से इतना तो स्पष्ट हो रहा था कि इस समय यहाँ आना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। उसके स्थूल मुख पर थोड़े बहुत क्षोभ के चिन्ह थे, और गले में से शब्द निकालने में भी उसे कष्ट हो रहा था। किन्तु यह दशा उसने दाढ़ी में हाथ फेरकर छिपा ली।

'देवी ! सेवक का दण्डवत् प्रणाम ।' विदेशी उच्चारण में जगदेव ने रोम-रोम से नम्रता टपकाते हुए कहा ।

रानी ने गर्दन हिलाई, और शांत, निश्चित वाणी में पूछा—'क्यों जगदेव ?'

'देवी ! महाराजाधिराज की आज्ञा है किसी अपरिचित व्यक्ति को महल के अन्दर न घुसने दिया जाय ।' जगदेव ने खखारकर कहा ।

'तो ?' तिरस्कार से लीला देवी ने कहा ।

'कोई व्यक्ति घुसकर आपके प्रकोष्ठ की ओर आया है ऐसी मुझे सूचना मिली है ।'

रानी ने अपना मुँह जगदेव की ओर किया । उसकी आँखों में हृदय-भेदी निर्दय पूर्ण तीक्ष्णता थी । पल-भर तक वह देखती रही, उसने मन ही मन में घबराते हुए भी बाहर से साहस बनाये रखने वाले योद्धा को अपने तिरस्कार का पूरा-पूरा अनुभव करवा दिया ।

'मुझसे क्या चाहते हो ?'

'वह कौन है और कैसे आया यह सब जानकारी मुझे महाराज को देनी होगी । देवी ! क्षमा कीजिएगा, मुझे महाराज की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए । नहीं तो आप तो जानती हैं मेरी क्या गति होगी ।'

रानी ने तिरस्कार से मुँह फेर लिया ।

'वह कौन है ?' जगदेव ने धीमे से किन्तु दृढ़ स्वर में पूछा ।

'परमार !' रानी ने बिना क्रोधित हुए कटाक्ष किया, 'तुम शायद महारानियों की तलाशी लेने की ही नौकरी करते हो ?' रानी ने प्रश्न इस प्रकार पूछा मानो वह नितान्त स्वाभाविक और सामान्य हो । किन्तु जगदेव को अपमान का गहरा घाव लगा । उसके होंठ कुछ कांपे, परन्तु उसने स्थिर होकर हाथ जोड़े ।

महारानी ! मैं तो आज्ञा पालन करने वाला दास हूँ ।'

'मैं जानती हूँ ।' कहकर लीलादेवी ने तिरस्कार से अंगड़ाई ली, 'कैसा आदमी था वह ?' तिरस्कार से उसने पूछा ।

'देवी ! ब्राह्मण के वेश में वह महल में घुसा था।'

'हूं—और किस वेष में वापस निकला?'

जगदेव को लगा कि रानी उसकी हँसी उड़ा रही है।

'देवी ! अभी तो वह व्यक्ति यहीं है।'

'क्या ?' लोलादेवी ने चैंककर पूछा। उसने जगदेव की ओर देखा और उस योद्धा के मुख पर मुस्कराहट देखकर वह घबराई।

'अभी उसके पूजा-पात्र यहीं पड़े हैं।' कहकर जगदेव ने मुस्कराकर भूमि पर रखे हुए पात्रों की ओर संकेत किया।

'जगदेव !' शाँति से लीलादेवी बोली। उसकी वाणी में भयंकर तिरस्कार था, 'पाटण की महारानी के साथ किस प्रकार के विवेक से काम लेना चाहिए यह तुझे नहीं मालूम, यह सच है, मुझे विवेक सिखाना पड़ेगा। जा ! बाहर जाकर मंगी को भेज। मुझे केश संवारने हैं।'

'परन्तु देवी…।'

'परमार ! जो मैंने कहा वह नहीं सुना ?' रानी ने गर्व से पूछा। जगदेव को यह प्रश्न ठोकर के समान लगा।

'हाँ।'

रानी ने गर्दन हिलाकर उसे बाहर जाने की आज्ञा दी। जगदेव को और कुछ सूझा ही नहीं वह नमस्कार करके बाहर चला गया। उसके बाहर निकलते ही रानी के मुख पर क्रोध छा गया किन्तु मंगी को आता हुआ देखकर उसका मुख जैसा था वैसा ही शांत हो गया।

'मंगी ! इन पात्रों को छिपा दे।'

'जैसी देवी की इच्छा।'

रानी मंगी की ओर देखे विना शीघ्रता से अन्दर गई और द्वार बन्द कर लिए। दूसरे ही क्षण उसकी चीत्कार मंगी को सुनाई पड़ी। मंगी के प्राण सूख गये। लीलादेवी जैसी शाँत और भावहीन स्त्री का इस प्रकार चीत्कार कर उठना इतना अस्वाभाविक था कि वह घबरा गई। वह दौड़कर अन्दर गई। रानी कुछ अस्थिर थी और उसकी आँखों में

घबराहट थी। प्रकोष्ठ निर्जन था।

'भटजी......!'

'कौन जाने कहां गया।' रानी ने कहा।

'इस द्वार से तो बाहर नहीं गए?' कहकर मंगी एक दूसरे द्वार के सामने जाकर उसे ध्यान से देखने लगी। उसका ताला उस ओर था, किन्तु द्वार बंद दिखाई पड़ा।

'पागल! यह द्वार तो कभी खुलता नहीं। उसकी कुंजी ही कहाँ है?'

'तो फिर?'

'देवी—देवी! ओ, देवी!' मंगी चीखी।

'क्या है?' कठोर होकर लीलादेवी ने पूछा।

'अरे रे—भटजी—गंगानाथ भगवान् भला करें।' कहकर मंगी ने आंखों पर हाथ रख लिया।

रानी नहीं समझी। उसने मंगी का कान पकड़कर खींचा, 'क्या है?'

'देवी—वह तो—बावरा है।'

पल-भर रानी मौन रही। उसे मंगी की बात सच्ची लगी, उसके सुन्दर होठ फड़कते रहे; उसकी आंखें स्थिर और गहन हो गई; मोहक फीकापन उसके मुख पर छा गया। रानी के कुछ बोलने के पहले ही बाहर के प्रकोष्ठ में किसी के दौड़ने की आवाज आई! रानी द्वार की ओर मुड़ी।

द्वार खोलकर एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या ने नाचते-कूदते प्रवेश किया। उसकी ओढ़नी अस्त-व्यस्त, उसके मुख पर हास्य उमड़ा पड़ता था। हास्य के कारण उसके मुख पर मोहक लालिमा छा रही थी। उसकी चंचल आँखों में अधिक हंसने के कारण आंसू थे। उसके हास्य की प्रतिध्वनि सारे प्रकोष्ठ में हो रही थी। वह रानी की ओर आई और एक उंगली ऊंची करके कुछ कहा। उसके हंसने के कारण एक अक्षर भी समझ में नहीं आया।

'समर्थ !' रानी ने कठोरता से कहा।

'मां !' बड़ी कठिनाई से वह कन्या बोली. परन्तु हँसी आ जाने पर वह पांव लम्बे करके भूमि पर बैठ गई, और एक हाथ भूमि पर रखकर दूसरे हाथ से पेट पकड़ लिया।

'समर्थ देवी ! क्या है ?' मंगी ने पूछा।

उत्तर में समर्थ ने पुनः रानी की ओर संकेत किया, किन्तु फिर हँसी आ जाने के कारण वह बोल न सकी।

'समर्थ ! पागल हुई है ?' लीलादेवी के प्राण अधीर हो गए थे। उसने मंगी की ओर देखा और कहा, 'मंगी चल, मुझे मेहताजी से भेंट करने जाना है।'

लीलादेवी और मंगी वहाँ से चली गईं। समर्थ अकेली हँसती रही। थोड़ी देर में बड़ी कठिनाई से उसकी हँसी रुकी और वह खड़ी हो गई।

'अहा कैसी घबरा गई ? माँ अब पकड़ में आई है।' वह फिर हँसने और चारों ओर कूदने लगी—'माँ खूब पकड़ी गई ? और अब मेहता आने वाले हैं।'

समर्थ ने हँसकर धरती पर पाँव पटका फिर थोड़ी हँसी, और नीचे झुककर ताल दे-देकर गाने लगी : वह थोड़ी-सी कूदी और कमर से कुन्जियों का गुच्छा निकाला।

'मां समझी उनका ब्राह्मण लुप्त हो गया है।' फिर उसने ही-ही हँसकर मंगी ने जिसे न खुलने योग्य मान लिया था उस द्वार को धक्का देकर खोल दिया। उस ओर न साँकल चढ़ी हुई थी न ताला ही लगा हुआ था। समर्थ उस ओर गई और सांकल चढ़ाकर द्वार पर ताला लगा दिया।

३६

अन्दर जाकर काक अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगा। लीला अपने पद से हटा दी जा सकती थी; जयसिंहदेव उस पर कुपित थे; और उसके यहाँ किसी को भी आने की कड़ी मनाही थी। ऐसे समय और इस प्रकार महल में घुसकर वह लीलादेवी से मिला इससे अवश्य उसे हानि पहुंचेगी—ऐसा उसे लगा। इस भूल को सुधारने का विचार करके वह उस कमरे से बाहर निकलने के लिए द्वार खोजने के हेतु दूसरे द्वार की ओर गया। द्वार को धकेलकर देखा तो खुला लगा तब उसने उसे खोल दिया। अब वह एक सूनी कोठरी थी। द्वार का ताला खोलकर किसी ने वहीं रख दिया था।

काक ने सावधानी से द्वार बंद किया, एकाएक एक कन्या सामने आकर खड़ी हो गई। वह सुन्दर और नटखट थी और उसे देखकर हँसने लगी।

'चोर पकड़ा गया।' वह हँसने लगी।

'धीरे।' काक ने नाक पर उँगली रखी।

'तू कौन है ?' उस लड़की ने आँखें नचाकर पूछा।

'अरे, पर धीरे तो बोल।' रानी सुन लेगी।

'हा, हा, हा !' कन्या हँसी, 'तू छिपकर भाग आया। अच्छा हुआ कि मैंने द्वार खुला छोड़ दिया। मालूम है, इसकी कुंजी केवल मेरे पास है ? तू कौन है ?'

'मैं लाट का ब्राह्मण हूं, और देवी का आश्रित हूं।'

'हा हा, हा ! और छिपकर भागा जा रहा है ?' कन्या हँसी, और फिर एकदम गम्भीर हो गई, तू लाट का है ?'

'हां।'

'काक भटराज को जानता है ?'

'भली-भाँति। क्यों ?'

'वह सोमनाथ पाटण आया है।'

काक सावधान हो गया।' 'आया होगा। तुम्हें क्या काम है?'

'वह पकड़ा गया कि नहीं कुछ मालूम है?' लड़की ने पूछा।

'जब वाहड़ मेहता गए हैं तो बिना पकड़े कहीं रह सकते हैं?' काक ने कहा।

कन्या गदगद् हो गई और उसके गाल लज्जा से लाल हो गए। अनजाने ही हर्ष से उसके दोनों हाथ मिल गए।

'तुझे विश्वास है?' लड़की ने पूछा।

हाँ, बहन! तेरी इच्छा सफल होगी। अब मुझे जाने दे। जयसिंह-देव महाराज कहाँ मिलेंगे?'

'बाहर निकलकर दाएँ हाथ जाना, वहाँ जगदेव परमार मिलेंगे। उनसे कहना वह तुझे ले जायेंगे।'

'बहन! तू कौन है?'

'मैं दंडनायक परशुराम की पुत्री समर्थ हूं।'

'सज्जन मेहता की पौत्री।'

'अच्छा!'

'बाप रे! तू तो सभी से परिचित है।'

'हाँ।' कहकर जल्दी-जल्दी काक वहाँ से निकला। कन्या ने द्वार पर ताला लगाया और कुंजी कमर में छिपा ली। 'ठीक है, अब देवी मुझे चिढ़ायेंगी तो मैं भी उन्हें चिढ़ा दूंगी।' यह कहती हुई वह उछली। कुछ देर के लिए वह विचार में पड़ी और फिर एकदम हँस-हँसकर गाने लगी।

काक उस कमरे से निकलकर एक कोठरी में आया और वहाँ से जल्दी-जल्दी दाएं हाथ की ओर गया। दो कोठरियाँ पार करने के पाचश्त् उसे दो सशस्त्र योद्धा दिखाई पड़े। वह उनके निकट गया।

'महाराज अन्दर हैं?'

दोनों योद्धा गुजराती प्रतीत नहीं होते थे। एक सामान्य ब्राह्मण

को इस प्रकार आते देख वे तनिक क्रोधित हो गए।

'हाँ, क्यों ?'

'कुछ नहीं, मुझे भेंट करनी है।' कहकर काक अन्दर जाने लगा। उसकी धृष्टता देखकर वे सैनिक चकित हो गए और द्वार के सामने भाले अड़ा दिये, परमार को आने दे।'

काक को लगा कि अन्दर कोई बैठा है अतः वह जोर से बोला—'मुझे क्यों रोकते हो ?' काक की वाणी में गर्व और सता दोनों थे। 'मुझे लाट के दुर्गपाल भटराज काक को क्या समझते हो ?' काक का नाम सुनकर वह सैनिक तनिक दूर खिसक गए।

'अन्नदाता ! यह तो मैं काक !' कहकर काक इस प्रकार अन्दर चला गया मानो महाराज ने उसे पुकारा हो और वह उसका उतर दे रहा हो। परन्तु अन्दर जाना इतना सहज न था। एक दूसरे सशस्त्र पुरुष ने उसका हाथ पकड़ा और घरघराती वाणी में पूछा, 'कौन है ? क्यों गड़बड़ करता है ?'

काक ने ऊपर देखा। सामने खड़ा पुरुष धूल से लथपथ था और उसके एक हाथ पर पट्टी बंधी हुई थी। आंखें लाल हो रही थीं। काक ने वह छोटा किन्तु सशक्त शरीर, झुकी हुई किन्तु प्रतापी नासिका, श्रांत किन्तु हठी मुख तुरन्त पहचान लिया।

'दंडनायक महाराज को घणीखम्मा।' विनोद से काक ने कहा। 'क्या सचमुच विजय की धुन में लोग पुराने मित्रों को भी भूल जाते हैं। खूब है यह संसार ?'

'कौन ?' तनिक चकित होकर सज्जन मंत्री के महारथी पुत्र परशुराम ने कहा।

'काक।'

'भृगुकच्छ का दुर्गपाल ? ओ हो हो ! कैसे हो ?' बाहों में लपेट कर उसने काक से पूछा।

'अच्छा हूं। जीता-जागता यहाँ तक आ ही गया हूं। महाराज

मिलेंगे।'

'तुझ पर तनिक क्रोधित हैं।'

'उसकी चिन्ता नहीं। अन्दर हैं न?'

'हाँ। अभी-अभी मेंदरडा के निकट सोरटियों को हमने पीछे धकेल दिया है, यही सूचना देने के लिए आया था।'

'परशुराम जी! आप न होते तो पाटण का जाने क्या होता?'

परशुराम हंस दिया, 'काक! मैं दरबारी नहीं अतः चापलूसी पचती नहीं। परन्तु तू न होता तो पाटण ने लाट कभी की खो दी होती।'

'अरे हाँ, भूला। मैं फिर मिलूँगा। मुझे आवश्यक काम है।'

'जा! विजय कर। इस समय महाराज का मन भी कुछ प्रसन्न है।'

काक नमस्कार करके अन्दर गया। उसका पगरव सुनकर अन्दर के प्रकोष्ठ से एक सत्ता-भरा स्वर सुनाई पड़ा, 'कौन, जगदेव?'

काक ने स्वर पहचान लिया और दौड़कर अन्दर गया 'नहीं अन्नदाता! मैं हूं··· काक।'

गद्दी पर एक व्यक्ति आरसी में देखकर मूंछें संवारता हुआ बैठा था। एक-दो गण कंघी लेकर खड़े थे।

काक ने साष्टांग प्रणाम किया।

४०

साधारण-सा युवक गद्दी पर लेटा हुआ था। उसका कद बड़ा और छटादार था। उसका शरीर भरा हुआ और सशक्त था, उसके चौड़े कन्धे और सुदृढ़ भुजाएं उसके शारीरिक बल की साक्षी दे रही थीं।

उसने सफेद धोती पहन रखी थी और कन्धों पर सुनहरी दुपट्टा डाल रखा था। भीने दुपट्टे में से उसके गले में पड़े हुए आभूषण और

हाथ के बाजूबन्द चमक रहे थे, उसका रंग गेहुंआ था। मात्र कलाई के आस-पास उसके हाथ तनिक सांवले थे। उसका मुख गोल और भरा हुआ था, छोटी और सुन्दर दाढ़ी के मोहक केश सिर के लम्बे और घुंघराले केशों में मिलकर उसके मुख को भव्य बना रहे थे। उसकी नासिका लम्बी और पतली थी। महत्वाकांक्षा प्रकट विलासी रुचि के परिचायक होंठ सुघड़ और पतले थे अलसामा दे रहे थे। आंखें विशाल, लम्बी और तेजस्वी थीं, उनमें आवेश टपक रहा था। और उसके मुख पर सोए हुए सिंह के समान प्रताप सा पड़ा हुआ था—ऐसा कि उसकी स्थिरता ही सामने वाले को कंपा देती थी।

जयसिंहदेव महाराज ने आंखें तनिक अधिक खोलकर देखा। इस प्रकार किसी का आना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, ऐसा उनकी दृष्टि से स्पष्ट लग रहा था।

'कौन?' कुछ कठोर होकर उसने पूछा।

'देव! आपने जिसे बुलाया था वही काक हूं।' काक उठा, घुटने के बल झुका और हाथ जोड़कर बोला—

'काक! तू?'

'हाँ देव! आपका आज्ञा-पत्र मिलते ही तुरन्त चला आया, अन्न-दाता प्रसन्न तो हैं?' काक ने पूछा।

महाराज को यह मित्रता अच्छी नहीं लगी यह काक ने स्पष्ट देख लिया। परन्तु उसके चेहरे पर मुस्कान थी।

'तू सीधा चला आया?' आश्चर्य चकित हो जयदेव ने पूछा।

'आपकी आज्ञा हो तो भला रुका जा सकता है?'

'तुझे कोई मिला?'

नहीं देव! शत्रु का देश था अतः मैं बहुत सावधान था। किन्तु कृपानाथ! आप प्रसन्न तो है?' दण्डनायक ने मुझसे मेंदरड़ा के विषय में अभी-अभी कहा था।'

'हाँ, यह अच्छा हुआ।' जयदेव महाराज ने गर्व से कहा।

लीलादेवी प्रसन्न हैं न ?' और बड़ी देवी ? मुंजाल मेहता आदि तो आनन्द में ही होंगे ?'

'जयदेव की आंखों में थोड़ी सी चमक आई। उसे यह प्रश्नावली अच्छी नहीं लगी।'

'काक सब प्रसन्न हैं। लाट की क्या दशा है ?'

'मैं आया तब तक तो लाट शांत था। अब तो आम्रभट मेहता क्या करते हैं उन्हीं पर निर्भर करता है।'

'क्यों ?'

'बहुत कच्चा है। इस समय लाट को शाँत रखना छोटे बच्चों का खेल नहीं।'

'हँ हँ !' तिरस्कार से महाराज ने कहा किन्तु तू इस वेष में कैसे ?'

'देव !' काक मुस्कराया, 'आपका आज्ञा पत्र मिला तो मुझे लगा कि आपको सचमुच मेरी आवश्यकता है। आपके और मेरे शत्रु कुछ कम तो नहीं है ? अतः इस वेष के सिवा और कोई चारा नहीं था। अन्न-दाता ! लीलादेवी का विवाह कराने आया था उसके पश्चात् आज आपके दर्शन कर रहा हूं। किन्तु महाराज, आपकी कीर्ति और आपका प्रताप देखकर तो मैं दंग रह गया। पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने जो कहा था वही हुआ न ?'

'आपका जन्म विक्रम राजा की कीर्ति को भी मन्द करने के लिए हुआ है।'

जयदेव ने प्रसन्न होकर दाढ़ी पर हाथ फेरा। वह तकिए पर लेट गए और काक पर पहली अमृत भरी दृष्टि डाली।

'काक ! तू पाटण आकर क्यों नहीं रहता ?'

'देव ! आप क्या नहीं जानते ? आपके दरबारियों में खलबली मच जायेगी। स्मरण नहीं, पन्द्रह वर्ष पहले मुझे चला जाना पड़ा था ?'

'काक ! तुझसे मुझे काम है।' जयदेव ने कहा।

'आपकी आज्ञा हुई और मैं प्रस्तुत हो गया हूं।'

'मैं इन सबसे थक गया हूं।' सीधे होकर कुछ तिरस्कार से राजा ने कहा, 'मुरार! बाहर जा।' कंघी लेकर खड़े हुए व्यक्ति से जयदेव ने कहा। मुरार बाहर चला गया। 'काक! मैं इस जूनागढ़ के घेरे से थक गया हूं।' राजा ने काक पर तीक्ष्ण दृष्टि टिकाकर कहा।

भावहीन मुद्रा में काक ने कहा—'देव! तो दो मार्ग हैं।'

'कौन से?'

'या तो जूनागढ़ पर विजय प्राप्त कीजिए या छोड़ दीजिये।

'मैं जयसिंहदेव जूनागढ़ का घेरा हटा लूँ?'

'तो उस पर विजय प्राप्त करिए।' काक ने शांति से कहा।

जयसिंहदेव ने अधीर होकर हाथ पटका, 'किन्तु वह जीता भी तो नहीं जा रहा है, और···मेरी कीर्ति को कलंक लग रहा है।'

'आपकी आज्ञा की देर है।'

'क्या?' तनिक हर्षित होकर जयदेव बोला।

'आपको कितने दिनों में जूनागढ़ लेना है?'

'कितने में लिया जा सकेगा?'

'जितने में आप कहें।'

'और यदि नहीं लिया तो?'

'उसके पहले या तो जूनागढ़ नहीं या फिर काक नहीं।'

जयदेव महाराज प्रसन्न हो गए। काक दृष्टि नीचे किये यह परिवर्तन देखता रहा।

'धन्य हो! सच है, तेरे समान एक भी नहीं है।'

'यह तो आप बहुत समय से जानते हैं।'

जयदेव का मन प्रसन्न था। वह हँसे। 'काक! तेरी बोली तो वैसी की वैसी ही है।'

'देव! मुझ में जब परिवर्तन नहीं हुआ तो मेरी बोली में कैसे हो सकता है?'

जयदेव हँसा। चाटुकारिता से भरे दरबारी वातावरण में इस

समय यह साहस उसे आकर्षक लगा। इतने में मुरार आया।

'अन्नदाता ! बाहर परमार और उदा मेहता आये हैं।'

राजा ने काक की ओर देखा। मुस्कराए, 'तू काक को पहचानता है ?

'वही आपका विदेशी दास ?'

जयदेव हँसा—'फिर तेरी जबान सीधी नहीं रहती ! यह तो मेरा विश्वासपात्र है।'

'उससे क्या वह सम्मानित हो जाता है ? देव ! आपको हँसी अच्छी लगती हो तो मुझे वस्त्र परिवर्तन कर लेने दीजिये।'

'हाँ ! यह ठीक है। मुरार, जा इसे वस्त्र दे।'

'जो आज्ञा।'

काक उठा और मुरार के साथ दूसरे दरवाजे से बाहर चला गया।

जयदेव मन-ही-मन हँसे। वर्षों से परशुराम सोरठियों के गढ़ को घेरे हुए पड़ा था; और सोरठ का अधिकांश भाग पाटण के आधीन था, परन्तु जूनागढ़ के गढ़ को तोड़ना कोई खेल नहीं था। तीन बार जयसिंह देव महाराज ने स्वयं धावा बोला था; किन्तु वह जूनागढ़ का एक कंकड़ भी नहीं हिला सके। इस समय परशुराम, त्रिभुवनपाल सोलंकी और मुरारपाल मंडलेश्वर, राज्य के इन अग्रगण्य महारथियों ने रा' खेंगार को चारों ओर से घेर रखा था; फिर भी गिरनार का रा' अपनी स्वतंत्रता का झंडा उठाये हुए उनका उपहास कर रहा।

अब जयसिंहदेव का धैर्य टूट गया था। साथ ही न जाने कैसे देवड़ी के प्रति उनका प्रेम फिर जाग पड़ा था। वर्षों पहले खेंगार द्वारा किया हुआ अपमान उन्हें चुभ रहा था। और जब तक रा' न झुकेगा तब तक उनकी कीर्ति में कालिमा बनी रहेगी यही विचार उन्हें रात-दिन जलाया करता था।

युद्ध में जाकर पीछे हट जाएँ तो बड़ी कठिनाई से अर्जित की हुई कीर्ति और महत्ता नष्ट हो जाती है—यह बात भी वह न भूले थे। वे

बड़ी तैयारी के साथ एक ऐसा धावा बोलना चाहते थे कि जूनागढ़ का एक पत्थर भी न बच सके। इसी के लिए खंभात से सेना लेकर उदा मेहता को, थोड़ी बहुत सेना लेकर मालवे से दादाक को और भृगुकच्छ से काक को बुलाया था। त्रिभुवनपाल परशुराम, मुरारपाल, उदा, दादाक और काक इन छः सहस्र युद्धों के प्रचण्ड खिलाड़ियों के नेतृत्व में धावा बोलने का उन्होंने निश्चय किया था। यम के सैनिकों के समान यह दुर्जय योद्धा खेंगार तो क्या गिरनार को भी चूर कर सकते थे ऐसा उनका विचार था।

दादाक अभी नहीं आया था। जयदेव की चलती तो काक को न बुलाता। दूर पड़ा हुआ काक इन योद्धाओं के साथ शोभा नहीं देता ऐसा कुछ विचार उनके मन में था। किन्तु त्रिभुवनपाल और मुरारपाल दोनों ने काक को बुला भेजने की बात कही थी। जब जयदेव ने मुंजाल मेहता को भी शस्त्र से सज्जित होने के लिए कहा तो महामात्य हँस पड़े।

जयदेव ! मैं आऊँगा किन्तु वह आपको शोभा नहीं देगा आपने बहुत कीर्ति अर्जित की है; किन्तु इसके बिना और सब व्यर्थ है। मूल-राजदेव ने रा' को झुकाया, आपके लिए अभी यह करना शेष है। आव-श्यकता होगी तो रण चढ़ूँगा। निश्चिंत रहियेगा। वृद्ध तो हो गया हूं, फिर भी अभी चलेगा।' कहकर मंत्री ने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त बाहुओं पर दृष्टि डाली।

राजा बड़ा गर्वीला था किन्तु मुंजाल मेहता के सम्मुख वह बच्चा ही बना रहता था। राजा अपने को छोटा न समझ ले इससे बिलक्षण मन्त्री सब ओर ध्यान रखते हुए भी एकांतवासी थे। जयदेव यह उदा-रता समझता था। उसने जाने की आज्ञा चाही।

'महाराज !' मंत्री ने निरपेक्ष भाव से कहा, 'एक काम करिएगा तो मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

'क्या ?'

'भृगुकच्छ के दुर्गपाल को बुलाकर साथ ले लीजिएगा ।'

'किसे, काक को ?'

'हाँ ।'

दूसरे ही दिन आम्रभट आज्ञा-पत्र लेकर भृगुकच्छ के लिए निकला।

जयदेव दूर पड़े हुए काक को अपने तेज से चकाचौंध कर देना चाहते थे, अपने प्रताप से उसे डराए रखना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ यह राजा को अच्छा नहीं लगा। परन्तु काक के साहस, शौर्य और चतुराई की उन्हें आवश्यकता थी, और उनका सम्मान करने जितनी शक्ति भी उनमें थी।

४१

गर्वित उपेक्षा से जयदेव फिर गद्दी पर लेट गए। सिर के केशों को हाथ से संवारते हुए वह विचार करने लगे।

विचार करते-करते वर्षों पहले देखी कलाड़ा की देवड़ी का मुख याद आया। जयदेव के मुख पर से उदासी जाती रही और रसिकता छा गई। उनकी विशाल आँखों में आतुरता दिखाई पड़ने लगी। काक के साथ वार्तालाप से उठे विचारों ने दूसरी ही दिशा पकड़ी। वह मन-ही-मन बड़बड़ाए—

'जूनागढ़ लूँ, रा' को समाप्त करूँ यह सब तो ठीक है किन्तु उदा ठीक कहता है—रा' के मरने पर कहीं देवड़ी मिल सकती है ? राज्य-विहीन हुई देवड़ी मुझे शत्रु तो समझेगी ही किन्तु देवड़ी को प्राप्त करना ही होगा।' जयदेव की भवें तन गईं। उसकी आँखों में रोष प्रकट हुआ। क्यों नहीं प्राप्त होगी ? क्या बात है ? उदा इतना कच्चा नहीं। वह जानता है कि मेरी इच्छा सफल हो जाय तो उसका बेड़ा पार

हो जाय। वह चतुर भी है। यदि समझौते से ही देवडी प्राप्त हो जाय तो ही भले रा' कर देकर जूनागढ़ में ही बना रहे। किन्तु इस विषय में मुझे इन खड्गधारियों का विश्वास नहीं। देखूँ उदा क्या समाचार लाया है।'

'घणी-खम्भा, अन्नदाता !' जयदेव का स्वर सुनाई पड़ा।

'जगदेव !' रौब से जयदेव महाराज बोले, 'दूसरा कौन उदा मेहता ! आओ !' जगदेव और उदा मेहता आए।

स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों में, सादे किन्तु बहुमूल्य अलंकारों से उदा मेहता सुसज्जित थे। उनकी लाल पगड़ी का रंग वैसा ही था जैसा यौवनकाल में हुआ करता था। सब उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। वह पहले के समान ही हँसमुख थे। उनकी मूछों में काले केश बहुत कम रह गए थे किन्तु फिर भी उनके मुख पर बुढ़ापे की रेखाएं अधिक न थीं। उनकी दृष्टि का पैनापन कुछ अधिक तीखा हो गया लगता था। कभी-कभी तो उनमें मनमनसाहत भी दिखाई पड़ती थी। वह बढ़ती हुई उम्र के सौजन्य से था या अभ्यास द्वारा प्राप्त की गई सरलता के कारण, यह निश्चय करना कठिन था।

वह अनुभवी दरबारी गर्व से चलता था। इसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर उनके स्वभाव और जीवनचर्या की स्पष्ट छाप थी। शांत और स्थिर बुद्धि—न डिगे न छूटे ऐसा धैर्य—न चूके न विपत्ति में मुँह मोड़े ऐसा शौर्य कभी न समाप्त हो और न कभी कम हो ऐसी मिठास—लगन से प्राप्त किये हुए इन गुणों का प्रतिबिम्ब क्षण-क्षण पर उसकी चाल में, बोली में और विचारों में पड़ता था। उसके शृंगार में, उसकी बोली में और उसके व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषता थी कि एक क्षण के लिए भी कोई यह नहीं भूल सकता था कि वह जैन धर्म का महास्तम्भ श्रावक शिरोमणि अतुल धन का धनी, और अपार सत्ता का अधिकारी है।

'हाँ देव, आ ही गया।' मन्त्री का शांत और मधुर स्वर सुनाई

पड़ा। इस स्वर में मोहकता थी, किन्तु कहीं कुछ कमी अवश्य है ऐसा सुनने वाला तुरन्त समझ जाता था।

'जगदेव, तू कहां गया था?' जयदेव ने पूछा।

'अन्नदाता! मैं महल में…?'

'परमार!' सिर ऊँचा करके राजा ने कहा, 'मैं कोई बहाना नहीं सुनना चाहता। यहां दो व्यक्ति बिना आज्ञा के घुस आंए, इसमें दोष तेरा है।'

जगदेव हाथ-में-हाथ कर, सिर नीचा किये खड़ा रहा।

'बाहर जा।'

'जो आज्ञा।' कहकर जगदेव बाहर चला गया।

'आओ मेहता जी! बैठो।' राजा ने उपेक्षा से उदा को बैठने के लिए सम्बोधित किया। उदा मेहता ने पीठ पर दुपट्टे को सवारा और गद्दी के नीचे पालथी मारकर बैठ गया।

'क्या कर आए।'

'मैं देशल से भेंट कर आया हूं।'

'तो?'

'परसों वह मुझसे भेंट करने वाला है। हो सका तो रा' और देवड़ी से मैं ही भेंट कर आऊँगा।

'मेहता! मुझे इस प्रकार बातचीत चलाने में विश्वास नहीं।'

'महाराज! आप परिणाम देखेंगे तभी समझेंगे।'

'तुम भी तो जानते हो रा' बहुत हठी है।'

'हम क्या कम हठी हैं? अन्नदाता! जो शौर्य से नहीं होता वह चतुराई से हो जाता है।'

'ठीक किन्तु ध्यान रहे, मुझ पर कलंक न लगने पाए।'

'देव। आपको देवड़ी वर ले और रा' झुक जाय—इससे अधिक और क्या चाहिए?'

अधिक तो कुछ नहीं—किन्तु—'जयदेव ने कुछ रुककर पूछा—

'किन्तु मेहता वाहड़ क्यों नहीं आया ?'

'महाराज ! वह अपने नाम का काक है, उसे लाना क्या कोई सहज बात है ?'

'किन्तु वाहड़ उसे ले तो अवश्य आएगा न ?' न समझ पड़े ऐसे उपहास भरे स्वर में राजा ने पूछा।

'देव ! अगर कोई यह काम कर सकता है तो बस वाहड़—'

'वैसे काक हमारी सहायता करेगा न ?'

'उदा मेहता सर खुजलाने लगे, 'हाँ, करेगा किन्तु उसके मत से चलेंगे तो !'

'मेहता ! गुजरात में एक ही व्यक्ति का मत चलता है।

'और वह अन्नदाता का।' उदा ने वाक्य पूरा किया। बाहर किसी की पगध्वनि सुनाई दी। दोनों सुनने लगे।

'जगदेव ? यह कौन है ?' जयदेव ने पूछा।

'कृपानाथ ! वाहड़ मेहता आए हैं।' जगदेव ने द्वार पर आकर कहा।

'आने दे।'

जगदेव और वाहड़ ने प्रवेश किया। वाग्भट यात्रा में सीधा चला आ रहा था: उसके मुख पर थकावट और हर्ष दोनों के चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

'अन्नदाता, घणी खम्भा !' वाग्भट ने प्रणाम किया। 'पिता जी, प्रणाम।'

'काक को लाया ?' उदा ने पूछा।

जयदेव केवल उसकी ओर देखता रहा।

'अन्नदाता ! आपकी आज्ञानुसार मैं काक भट को पकड़ लाया हूं।' वाग्भट ने झुककर, हर्षातिरेक से कहा।

'किसे ?' जयदेव ने चौंककर पूछा।

'भटराज काक को।' वाग्भट ने कहा।

'किसी को उसके साथ बात तो नहीं करने दी न ?' उदा ने पूछा।

जयसिंहदेव की एक दृष्टि ही से पिता-पुत्र स्तब्ध हो गए, 'काक बाहर है ?'

'जी हाँ, महाराज !'

'अन्दर ला, देखूँ तो।' राजा ने कहा। उसकी आंखों में क्रोध प्रकट हुआ।

'जो आज्ञा महाराज !' कहकर वाग्भट बाहर गया। महाराज की मुद्रा देखकर उदा चिंतित हुआ।

'देव ! उसके साथ तनिक सावधानी से काम लीजिएगा।' उसने सलाह दी।'

जयसिंहदेव कभी-कभी सबसे विरक्त और पहुंच के बाहर हो जाते थे। उस समय उनकी आंखों का तेज उनके निकट सम्बन्धियों तक को दूर ले जा पटकता था और उनके चारों ओर गौरव का अभेद्य वातावरण छा जाता था। इस समय राजा की बिल्कुल वैसी ही दशा हो गई।

'मैंने तेरी सलाह नहीं पूछी थी।' उन्होंने पग पटककर उदा से कहा। उदा मौन रहा। वाग्भट खेमा को साथ लेकर अन्दर आया।

'कहां है काक ?' राजा ने कठोर होकर पूछा। वाग्भट ने आश्चर्य चकित होकर चारों ओर देखा। उदा फीका पड़ गया, जयदेव ठहाका मार कर हँस पड़े।

'यह है काक ?' जयदेव ने तिरस्कार के कहा, 'उदा मेहता ! वह काम कोई यदि कर सकता है तो वाहड़—हा ! हा ! हा ! यह और काक ?'

खेमा हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

'क्यों रे, तू कौन है ?'

'अन्नदाता ! मैं तो भटराज का सेवक हूं।'

'किसका ? काक का ?' राजा ने पूछा।

'हाँ, देव !' खेमा ने कहा।

'तू यहां कैसे आया ?'

'मैं क्या करूँ देव ? यह भाई कुछ पूछने लगे थे। पोत डूबने लगा तो मैं तैरता-तैरता आया और फिर इन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं निःसहाय था, कर ही क्या सकता था ?'

'उदा मेहता, तुम काक को पकड़ने वाले थे न ?'

'देव! ......

'तुम्हारा लड़का लौट गया है। मेरी राय है तुम भी वहाँ जाकर कुछ सीख आओ।' कटाक्ष से राजा ने कहा।

'अन्नदाता! किन्तु यह काक गया कहाँ ?' उदा ने बात फेरने का प्रयत्न किया।

'यहीं है यह रहा।' कहते हुए महल में से सुन्दर वस्त्र, और चमकते हुए शस्त्रों से सुसज्जित होकर काक अंदर आया। उस समय उसका लंबा शरीर भव्य लग रहा था। उसके तेजस्वी मुख से प्रताप की किरणें फूटी पड़ रही थीं और उसकी तीक्ष्ण और गहरी आँखों से हँसी टपक रही थी।

जयदेव पुनः ठहाका मारकर हँस पड़े, 'वाग्भट। इस व्यक्ति का नाम है काक। पहचान ले, कहीं फिर भूल न हो जाय। इससे काम बनाना कविता करने जितना सरल नहीं है। मेहता! यह तुम्हारा पुराना मित्र है। पहचानते हो ?'

उदा मेहता और मुझे न पहचानें ?' काक ने हँसकर कहा, क्यों खेमा! अच्छा तू बच गया। और कोई डूबा ?'

'नहीं महाराज!' खेमा ने कहा।

खेमा, गुजरात में एक ही महाराज है। परमभट्टारक जयसिंहदेव महाराज। तेरा सौभाग्य है कि आज तुझे उनके दर्शन हो गए। देव! आज्ञा हो तो यह जाय—यह थक गया होगा।'

'और तू भी तो थक गया होगा।'

'आप जानते हैं कि आपकी सेवा से मैं कभी थकता नहीं।'

'भटराज !' उदा मेहता चहके, 'मेरा आँबड़ तो प्रसन्न है न ?'

'हाँ !'

'मेहता !' जयसिंहदेव ने कहा, 'तुम्हारा आँबड़, लगता है, वहाँ सब गड़बड़ कर देगा।'

उदा ने तीक्ष्णता से काक की ओर देखा, पुराने वैरी के द्वेष का अनुमान लगाने लगा। काक मुस्करा रहा था।

'वाहड़ !' राजा ने मुस्कराते हुए तिरस्कार से कहा, अब तू भी विश्राम कर। बहुत थक गया होगा।' वाहड़ दृष्टि ऊँची न कर सका, 'फिर परशुराम के साथ मेंदरड़े जा।' आज्ञा मिली।

'जो आज्ञा।' कहकर वाग्भट नमस्कार करके म्लान मुख वहाँ से चला गया। काक के संकेत करने पर खेमा भी वहाँ से चला गया।

४२

राजा ने बारी-बारी से उदा और काक दोनों की ओर देखा।

'तुम दोनों पुराने शत्रु हो। किन्तु अब मित्र बनना पड़ेगा।' उन्होने कहा।

'देव ! मैं तो काकभट का मित्र ही हूं।'

'और मैं—जो आपका सच्चा सेवक हो उसके साथ वैर नहीं रखता अन्नदाता।'

'अच्छा. तो दोनों बैठ जाओ। देखो, अब इस जूनागढ़ का क्या करना है ?' काक और उदा दोनों बैठ गए।

'महाराज !' उदा ने मिठास से कहा, 'आप मेरे विचार तो जानते हैं। यदि मैं निरन्तर दबाव डालता रहूंगा तो रा' के लिए समझौता स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा न होगा।'

'काक ! तू सारी बात जानता है ?'

'नहीं ।'

'रा' अब हाथ आया ही समझो, किन्तु गढ़ इतना दृढ़ है कि उसे गिराते वर्षों लग जायेंगे । मैं यह युद्ध शीघ्र समाप्त करना चाहता हूं ।' जयदेव ने कहा ।

'क्या रा' वह किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार करेगा ?'

'उसके लिए अन्य मार्ग ही नहीं है ।' उदा ने कहा ।

'कितने ही व्यक्तियों को समझौता करने से श्मशान अधिक रुचिकर लगता है ।'

'तो रा' समझौता स्वीकार नहीं करेगा, ऐसा तू मानता है ?'

'हाँ, महाराज मुझे विश्वास है ।'

'कैसे ?' राजा ने कहा ।

'मैं उसे वर्षों से पहचानता हूं ।

'और यदि मैं करवा लूँ तो ?' उदा ने मुस्करा कर कहा ।

'मैं शस्त्र उठाना छोड़ दूंगा ।' काक ने मुस्करा कर कहा ।

'भटराज ! देखना !'

'किन्तु वह समझौता स्वीकार न करे तो ?' काक से पूछा ।

राजा की आंखों में गहन तेज चमक उठा । वह सीधा होकर बैठ गया और दोनों की ओर देखा ।

'और कर ले तो ? काक ! मैं स्वयं युद्ध में जाऊंगा । और रा' को चुटकी से मसल दूंगा । जो मूलराजदेव ने किया क्या वह मैं नहीं कर सकता ? सोलंकियों को शिक्षा देनी नहीं पड़ती ।'

'महाराज यह मैं जानता हूं'; काक बोला, 'और इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि आप समझौते की बात कर रहे हैं । समझौते की बात निर्बल करते हैं, शक्तिवान नहीं ... गढ़ और रा' दोनों को पराजित करना पड़ेगा ।'

'अन्नदाता को यह मार्ग अच्छा नहीं लगता ।' उदा ने धीमे-से

अपनी बात कही।

जयदेव ने उत्तर नहीं दिया। काक समझ गया— राजा देवड़ी का विचार कर रहे थे।

'तो अन्य कोई मार्ग नहीं है। किन्तु देव ! समझौता करना हो तो शीघ्र कीजिए जिससे हम जैसे लोग कुछ समझ सकें।'

'अरे हाँ !' राजा ने कहा, 'उदा मेहता तीन-चार दिन में उत्तर लाने के लिए कहता है।'

'हाँ ! तुम भी चलो तो अच्छा है।' प्रयत्न निष्फल होने पर काक भी अपयश का कोई भागी हो तो अच्छा, यही सोचकर उदा मेहता ने उदारता दिखाई।

'नहीं, काक गर्दन हिलाकर बोला, 'जो नहीं हो सकता ऐसे काम में मैं भाग-दौड़ नहीं किया करता।'

'देव ! मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। रा' आधा तो मान गया है। देवड़ी पर से विश्वास हट जाय इसका भी प्रयत्न किया जा रहा है, और देवड़ी के माँ-बाप भी उसे समझाने के लिए तैयार हैं। देशलदेव योद्धाओं को भी समझा रहा है। दो-चार दिन में सब कुछ ढीला हो जायेगा तब मैं जा मिलूँगा। जितना बन सका उतना मैंने कर रखा है; आगे की आदीश्वर भगवान् के हाथ में है।'

छल और प्रपंच की इस प्राण रूँधा देने वाली परिस्थिति में किस प्रकार जूनागढ़ अपनी स्वतन्त्रता खोएगा—यह योजना बताते-बताते खम्भात के बुद्धिमान मंत्री की आँखें चमकने लगीं, जयसिंहदेव की बात में रस आ रहा था। काक स्थिर नयनों से देखता रहा।

'आप स्वयं जायेंगे ?' काक ने पूछा।

'हाँ तो।'

'मेहता ! वहां जाकर जो बात अब तक आप नहीं समझ पाए हैं वह समझ जायेंगे।'

'कौन सी !'

'वीर की अडिगता और सती की श्रद्धा।'

'रा'—और देवड़ी ?' जयदेव ने पूछा।

'महाराज ! आप उन्हें नहीं पहचानते। जब से ये दो ज्वालाएँ एक-दूसरे से मिलीं तभी से मैं दोनों से परिचित हूं। आप उन पर चाहे जितना पानी डालिए, उनकी ज्वाला कम नहीं होने की। और अन्नदाता ! यह याद रखियेगा कि अब यह दो ज्वालाएँ दो न रहकर एक हो गई हैं। त्रिपुरारी स्वयं आपकी सहायता को आयें तो भी आप उन्हें अलग नहीं कर सकेंगे। इन्हें बुझा दीजियेगा तो भी उनके अंगारों की राख अलग होने की नहीं।

'भटराज !' उदा ने तिरस्कार से कहा, 'तुम्हें उनका गुणगान करना क्या बहुत अच्छा लगता है ?'

'अकारण ही गुणगान करने की मेरी आदत नहीं है।'

किन्तु जयदेव का मुख लाल हो उठा। उनकी आंखों से अग्नि निकलने लगी। उनके नथुने फूल उठे। भावावेश से कांपते हुए किन्तु स्पष्ट स्वर में बोले—

'और काक ! तू जानता है ? मैं—परमभट्टारक—जयसिंह ने सोलंकियों की कीर्ति की सौगन्ध खाई है कि इन दोनों को साथ नहीं रहने दूंगा। यह देवड़ी उसकी नहीं—मेरी है। और देखता हूं वह उसे कहां तक रख सकता है ?'

काक मौन रहा।

'उदा मेहता ! जब तुम सन्देश ले जाओगे तो मैं भी साथ आऊंगा।'

'देव ! आप ?' काक बोला।

'मुझे तेरे रा और तेरी देवड़ी को देखना है।'

'किन्तु आपको कुछ हो गया तो ?'

'काक !' गर्व से जयसिंहदेव ने कहा, 'मुझे त्रिभुवन को कंपा देने वाले को—मेरा कोई क्या कर सकता है ?' जिसने बावरा पर विजय प्राप्त की वह मनुष्य से कब डरेगा ?' मैं जाऊंगा।'

'किन्तु अन्नदाता !' तनिक मुस्कराकर उदा बोला, 'एक शर्त पर । आप न रा वेश धारण करेंगे और न कुछ बोलेंगे ।'

'मुझे स्वीकार है ।'

'और देव ! मैं भी एक शर्त रखूँगा ?' काक एकाएक कुछ निश्चय करके बोला ।

'कौन सी ?'

'अनुचर बनाकर मुझे भी ले चलिएगा ।'

जयसिंहदेव हँसे । 'अच्छा काक तू भी देखेगा कि तेरे महाराज जैसा तू सोचता है वैसे नहीं हैं ।'

'देव ! मैंने जितना सोचा था उससे बढ़कर प्रतापी तो आप हैं ही, किन्तु मेरा मन जो नहीं मानता ।'

'अच्छा किन्तु जो शर्त महाराज ने स्वीकार की है वह तुझे भी स्वीकार करनी पड़ेगी ।' उदा बोले ।

'अवश्य ? मुझे इस सन्धि का दायित्व लेना भी नहीं है ।'

'देव !' मुरार अन्दर आया ।

'क्या ?'

'बड़ी देवी का गण आया है, काकभट हों तो वह बुलाती हैं ।'

'जयसिंहदेव मुस्करा दिए, 'काक ! प्रतीत होता है सभी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

'देव ! यह भी भाग्य की बात है ।'

'मेहता ! तो तुम भी जाओ । देखना आज की बात का एक अक्षर भी किसी के कानों में न पहुंचे । मुरार, मेरी कंघी तो ला ।'

राजा राजमाता के विश्वासपात्र काक की ओर शाँत, किन्तु द्वेष-भरी, छिपी दृष्टि डाल कर उदा उठ खड़ा हुआ । वह और काक दोनों बाहर गये ।

'भटराज ! हमें बीती बातें सब भूल जानी चाहिएँ, ठीक है न!' तनिक हँसकर उदा ने कहा ।

'मैं आपका स्मरण करता ही नहीं, मेहता !' काक ने नमस्कार करके कहा और मीनलदेवी के दूत के साथ हो लिया ।

४३

लीलादेवी अपने पति के स्वभाव से पूर्णरूप से परिचित थी; क्रोध में वह क्या कर बैठें यह नहीं कहा जा सकता था। जयसिंहदेव को काक के प्रति कोई विशेष प्रीति तो थी ही नहीं। इतना ही नहीं, कुछ अंशों में उसके प्रति क्रोध और अविश्वास दोनों थे। काक को एकाएक क्यों बुलाया गया इसका भी कारण वह जान न पाई थीं।

असाधारण शीघ्रता से वह मुंजाल मेहता के निवास-स्थान की ओर चलीं।

नाम के महामात्य थे मुंजाल, उनका वास्तविक स्थान तो भीष्मपितामह के समान राज्य के अधिष्ठात् देवता के समान था। वह बाहर बहुत कम निकलते थे, कभी-कभी मन्त्रियों के मन्त्रणा करते समय वह भी उपस्थित रहते थे। फिर भी, उनकी दृष्टि चारों ओर रहती थी; और उनकी दृष्टि चारों ओर है यह भी सभी जानते थे। पहले के समान यह सबको दूर नहीं रखते थे; सभी निडर होकर उनके पास जाते थे। बड़े, छोटे सबकी कठिनाइयों को दूर करने में वह अपना समय व्यतीत करते थे, और अवकाश मिलने पर राज्य के सभी अमल-दारों को बुलाकर उन्हें सलाह और शिक्षा देते थे। कभी-कभी किसी ब्राह्मण या साधु के साथ बैठ कर धर्म की चर्चा करते या सुनते। दिन में तीन-चार बार जयदेव उनसे भेंट करने के लिये जाते, और उनके साथ गुप्त मंत्रणा करते थे। राजकाज के भार से परे रहते हुए भी राजतन्त्र का सहज ही संरक्षण करते थे और उसे निष्कंटक मार्ग पर चलाते थे। इस महापुरुष के व्यक्तित्व और प्रताप की उपेक्षा करने का कोई स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकता था और सबको इनकी सहायता लेने की ऐसी आदत पड़ गई थी कि उनके बिना कोई काम हो भी सकता है यह कोई विचार भी नहीं कर सकता था।

जिस समय मंगी मंत्री को सूचना देने के लिए गई उस समय पांवों

पर दुपट्टा डालकर मुंजाल शोभ मेहता को आज्ञा-पत्र लिखने के लिए कह रहे थे। आयु बहुत प्रौढ़ होने पर भी मंत्री का शरीर-सशक्त और तेजस्वी था। उनके सिर पर चँदलाई थी, निर्मूछ मुख के कारण संन्यासी जैसे लगते थे। बुढ़ापे के कारण मुंह कुछ क्षीण था, नाक की हड्डी तनिक टेढ़ी हो गई थी और कपाल पर रेखाओं के संयोग ने त्रिपुण्ड रच दिया था। किन्तु सागर के समान गहन आँखों में प्रभाव वैसा-का-वैसा ही था।

'मेहता जी! देवी आई हैं।'

'कौन लीलादेवी?' मुंजाल ने तनिक मुस्कराकर पूछा। उस मुस्कराहट में गौरवशाली वृद्धावस्था की मृदुलता थी।

'हाँ।'

'शोभ! तुम जाओ, फिर बुला लूंगा।'

'सोलंकियों का पीढ़ियों का नागर मंत्री शोभ सुन्दर, दृढ़ और चतुर था। उसकी छोटी-सी पगड़ी और चमकता हुआ तुर्रा उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे थे। उसकी सोने में मढ़ी लेखनी और कमर में बांधी हुई रत्न-जटित दावात उसके आज्ञा-पत्र लिखने का अधिकार और ठाट बाट की लालसा दोनों की साक्षी थी।

'और शोभ! कल प्रेम कुंवर को बड़ी ने डाँटा था?'

शोभ ने संकोच से नीचे देखा।

'घबरा मत, महामात्य ने हँसकर कहा, 'मैं मीनलदेवी को समझा दूंगा। परन्तु तुम दोनों मेरे पास आना। मुझे कुछ बातें करनी हैं।'

'जो आज्ञा।' कहकर शोभ मेहता बिदा हुआ।

रानी ने कुछ अधीर होकर प्रवेश किया, 'मेहताजी! मुझे तनिक काम है।'

'आओ न बहन!' मुंजाल ने मुस्कराकर कहा, मैंने तो आपको तीन दिन पश्चात् देखा है। कौन करे वृद्ध मनुष्य की चिन्ता?' रानी मुस्कराई। उसे पाटण के आडम्बर-भरे दरबारी वातावरण में यह वृद्ध

विचारशील और सर्वग्राही दृष्टि वाला महामात्य भला लगता था।

'मेहताजी ! आपको मालूम तो होगा ही कि महाराज ने भृगुकच्छ से काक को बुला भेजा है।'

'हाँ, क्यों ?' मुंजाल के मुख पर रहस्य-भरी मुस्कराहट दौड़ गई।

'वह यहां आ गया है।'

'अच्छा !'

'हां. परन्तु यह अच्छा नहीं हुआ।'

'क्यों ?'

'महाराज उस पर कुपित हैं उदा उसका कट्टर शत्रु है, महाराज का सन्नाहकार है, और इस दरबार में उस जैसे सत्यवादी का मूल्य न होगा यह तो स्पष्ट ही है।' तिरस्कार भरी शांति से लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल के मुखपर गहन मुस्कराहट थी।

एक दो बातों से मुझे लगा कि उसके प्राण यहां संकट में हैं।

मुंजाल गम्भीर हो गया---'बहन ! आप व्यर्थ घबरा रही हैं।'

'नहीं। निश्चयात्मक वाणी में लीलादेवी ने कहा। उनकी सुन्दर भवें स्थिर हो गई; उनकी तीक्ष्ण दृष्टि निश्चल हो गई। उसके भावहीन स्वर में आज कुछ अधिक दृढ़ता थी। ऐसे क्षणों में यह कोमल लगती रमणी भयंकर दृढ़ता की मूर्ति बन जाती थी और चारों ओर भय का प्रसार कर देती थी।

'मेहता जी !' वह बोली, 'आप इस राज्य के स्तंभ हैं इसलिए मैं यहाँ आई हूं। मैं आपके राज्य के प्रबंध मे पड़ी नहीं पड़ती, किन्तु यदि काक को कहीं कुछ हो गया तो आपके राज्य का क्या होगा यह भोलानाथ भी नहीं कह सकते।'

अगाध शान्ति और निश्चल दृढ़ता से भरे हुए स्वर में बोले गये ये व्यग्य-भरे शब्द मुंजाल स्नेही पिता की सद्भावना से सुनता रहा।

'बहन ?' मीठे स्वर में मुंजाल बोला, 'मैंने जो पहले कहा वही फिर कहता हूं—आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।

क्यों ?'

'आप काक को नहीं पहचानतीं।

'मेहता जी ! आप अपने शिष्य और उनके जगदेव और बाबरा को नहीं पहचानते।'

'मैं पहचानता हूं सभी को भली-भाँति पहचानता हूं ! बहन ! आप अधीर न होइए। बैठिए।' कहकर मुंजाल मुस्कराया और रानी गद्दी पर बैठी। 'काक सम्पूर्ण नगर को छका दे ऐसा है। और एक बात कहूं ?' एक रहस्यभरी दृष्टि लीलादेवी पर डालकर मुंजाल बोला।

'क्यों ?'

'आपका काक मेरे लिए पुत्र के समान है।'

'आप लगता है पुत्र की पूरी-पूरी संभाल नहीं करते।' तनिक हँस कर लीलादेवी ने कहा।

'यह तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा था। बहन ! मेरी चले तो उसे मैं अपना स्थान दूँ; परन्तु आप निश्चिन्त रहिए। यदि उसके प्राण संकट में होंगे तो मुंजाल फिर शस्त्र हाथ में लेगा। बस ?'

'मेहताजी ! वह इस समय कहाँ है इसका पता तो लगवाइए।'

'अच्छा, मैं अभी मीनलदेवी के पास जाकर पता लगाता हूं।'

'मेहताजी ! अब मैं निश्चित हुई। वह हमारे लाट का रत्न है।'

'आप जैसी महारानी और काक जैसा योद्धा—फिर लाट को बहन, रंक आप ही कह सकती हैं। जाने से पहले एक बात और कह दूँ।'

'क्या ?'

'आप राज्य के प्रपंचों में हाथ क्यों नहीं डालतीं ?'

'मुझे रुचता नहीं।'

'झूठ बात।' स्नेह से हँसकर मुंजाल ने कहा, 'विधि ने राज्यतन्त्र चलाने के लिये आपका सृजन किया है और सभी संयोग अनुकूल

हैं। महाराज जैसे प्रतापी राजा को वास्तव में आप जैसी प्रतापी रानी ही की आवश्यकता है। व्यर्थ ही आप दूर-दूर रहती हैं।' मुंजाल के स्नेह भरे स्वर से रानी के अन्तर में अनेक तार झनझना उठे। आपको अपना पटरानी का पद निभाना चाहिए।'

कुछ देर के लिए रानी की आँखों में निष्फलता झलक गई।

'यह पद रखने के लिए ही तो काक को यहाँ बुलाया है ?' रानी का मुख फीका पड़ गया। उसको लगा उसकी चोरी पकड़ी गई है।

'आपने कहाँ से जाना ?'

'बेटी !' मुंजाल ने मुस्कराकर स्नेह से धीमे स्वर में कहा, 'आपका पटरानी पद बना रहे और जूनागढ़ पराजित हो इसी में पाटण का श्रेय है। विधि इसी के लिए व्यग्र है।'

'और मेहताजी ! उसी विधि ने काक को यहाँ बुलाया है।' बुद्धिमान् मंत्री की ओर गर्व भरी दृष्टि से देखते हुए लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल ठहाका मारकर हँस पड़ा प्रभु जाने, किन्तु काकको विधि का साधन बनने की बड़ी टेक है अतः अब निश्चिंत रहिएगा।'

लीलादेवी उठी साथ ही मुंजाल भी उठा—'बहन !' मुंजाल ने कहा आज मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि हम इतनी बात कर सके। इसी प्रसंग में एक दूसरी बात कहूं तो मानोगी ?'

'कहिए।'

'देखिये, हम वृद्धों की कुछ बातें काम की भी होती हैं, कई बार हम माथा-पच्ची भी करते है, किन्तु निश्चय ही प्रत्येक बात में कुछ न कुछ सीखने को होता ही है।'

'आज आप इतने नम्र क्यों हो गए हैं ?'

'क्योंकि मैं पाटण की महारानी के साथ बातें कर रहा हूं। बहन . नो ! काक के यहाँ रहने से ही आपका, महाराज का और पाटण का भला होगा। किन्तु वह यहाँ रहेगा या नहीं यह बात आप पर

निर्भर है।

'यह किस प्रकार ?' कुछ चौंक कर रानी ने पूछा।

'बैठिए मैं कहता हूं। हम एक दूसरे को समझ लें तो सदा के लिए निश्चिन्त हो जायें।'

'किन्तु काक का पता······'

'हाँ, लगवाता हूं। वस्ता ! जा, महाराज के पास भृगुकच्छ के दुर्गपाल काकभट हों तो कहना मीनलदेवी बुलाती हैं। हों, तो लेकर आना। न हों तो, दौड़कर वापस आ।' आज्ञा पाकर वस्ता चला गया।

'देख बेटी ! ' मुंजाल लीलादेवी से कहने लगा। उसकी आँखों में मधुरता आई, उसके मुख पर गांभीर्य छा गया। 'द्वापर युग में एक नर और एक नारी थे। दोनों तरुण थे, दोनों का स्वभाव कल्पनाशील था, दोनों ने मेरु पार करने का दृढ़ संकल्प किया था। नर की रगों में वनराज की सर्वभक्षी लगन थी और नारी की रगों में सिंहनी की सत्ता-प्रियता थी।'

मुंजाल कुछ रुककर फिर बोला—दोनों दूर थे, किन्तु विधि ने उन्हें एक किया। नर और नारी की प्रौढ़ आत्माओं का एक दूसरे से मिलन हुआ। दोनों के मन में एक को छोड़ दूसरी दृष्टि नहीं थी—दूसरी आशा न थी।'

लीलादेवी समझने लगी। उसकी आँखें इस वृद्ध आमात्य के तेजस्वी मुख पर होते हुए परिवर्तन को देख रही थीं। मुंजाल का मुख कूटनीतिज्ञ जैसा कठोर हो गया। वह इतना कहकर कुछ क्षण के लिए रुका।

एक मन्त्री था—दूसरी महारानी थी। विधाता ने उनका एक होने के लिए सृजन किया था उसी ने उनके बीच में असंख्य और उचित व्यवधान खड़े कर दिये। दोनों ने विधि की आज्ञा को सिर आँखों चढ़ाया।' मन्त्री की आँखों का तेज तनिक मन्द होता-सा लगा।

दूसरे ही क्षण उसने बात प्रारम्भ की, 'अटल बन्धनों से बँधी हुई लता ने कठोर वैधव्य की पवित्रता स्वीकार की। उनकी त्यागवृत्ति ने उन्हें जीते-जी मृत्यु का आस्वादन करवाया।' मुंजाल रुका।

'किन्तु मेहताजी!' प्रथम बार रानी का स्वर भाव-भरा हुआ, 'इस त्याग से अद्भुत सुवास ने सम्पूर्ण सृष्टि को सजीव भी तो किया?'

'कौन कह सकता है?' मुंजाल आगे चला, 'किन्तु इस सुवास में लिपटी हुई उनकी पवित्रता पर वह जीवित रहीं' 'मन्त्री ने सीधे होकर चारों ओर देखा। 'और जैसी वह जीवित रहीं वैसी ही मरी थी—बिल्कुल अकेली।' कुछ देर तक मन्त्री मौन रहा, उसकी आँखें सजल हो उठीं। 'बहन!' गला ठीक करके मन्त्री ने कहा, 'बात का सारांश इतना ही है कि बहुत-सी वस्तुयें देखने में स्वाभाविक लगती हैं—किन्तु सचमुच में यदि वे अस्वाभाविक निकल आएँ तो दुःख की सीमा नहीं रहती। मैं यह नहीं जानता कैसे—किन्तु इन दो के पाप के कारण राज्य जड़मूल से उखड़ जाता। अतः बेटी! ध्यान रखना। मुंजाल ने स्नेह से लीलादेवी के कन्धे पर हाथ रखा। 'समझीं न?'

कुछ देर तक कोई नहीं बोला। मुंजाल की वाणी पुनः जैसी थी वैसी ही स्वस्थ हो गई, 'रानी! सोलंकी की कीर्ति का आधार आप पर है।' रानी उठी, नीचे देखती रही, फिर एकाएक कुछ निश्चय किया हो ऐसे अपना सिर ऊँचा किया। उसकी आँखों में तेज चमका, उसकी छाती तनिक फूली, उसके अधर जोर से बन्द हो गए।

'मेहताजी!' उसकी वाणी तलवार की धार जैसी पैनी थी, 'आज आपने अनायास ही पिता का स्थान लिया तो आपको मैं पुत्री के स्नेह-से अपनी बात कहूं?'

'बेटी, निडर होकर कहो। मैं इस अवस्था में, अब भी विवेक से विचार कर सकता हूं। मेरी सलाह से अब तक किसी को हानि नहीं हुई।'

'मेहताजी! सलाह के लिए तो स्थान ही नहीं है।' रानी तिरस्कार

से कहने लगी। 'एक नर था—एक नारी थी। नारी ने याचना करके मुकुट धारण किया। मेहताजी! संसार में कइयों के भाग फूटे होते हैं। वह नर उसका मूल्य नहीं परख सका—या फिर आपने कही वैसी बात से वह डरता होगा। उन्होंने अपने मार्ग जाना पसंद किया। दोनों को एक-दूसरे में विश्वास है—इसके सिवाय और कुछ नहीं है—और न कुछ होगा।' रानी की वाणी भावहीन थी। वह हँस पड़ी—हास्य शुष्क और तिरस्कार भरा था। 'मेहता जी! सोलंकियों की कीर्ति के कलंकित होने का तनिक भी भय नहीं।'

मुंजाल उठा, रानी के निकट गया, उसके कंधे पर हाथ रखा और स्नेह-भीनी वाणी में कहा, 'बेटी! तू तो सचमुच महारानी होने के लिए बनी है।'

रानी पुनः हँस पड़ी—पहले के समान नीरस रीति से!

'नहीं बनी होती तो कोई कष्ट न होता।' कहकर उसने मुंजाल की ओर एक कठोर दृष्टि डाली। 'किन्तु बन चुकी हूं—अब आप और क्या चाहते हैं?'

गर्व से सिर ऊँचा किये लीलादेवी कमरे से बाहर चली गई। मुंजाल देखता रहा और फिर थोड़ी देर बाद बड़बड़ाया, 'अब मैं निश्चिन्त हुआ।'

४४

इतनी उम्र के व्यक्ति में आश्चर्यजनक लगने वाली आतुरता से मुंजाल घूमा और अन्दर के द्वार में से होकर एक कोठरी में गया। कोठरी के निकट एक कमरे में एक दासी बैठी कुछ सी रही थी। मुंजाल ने उससे पूछा, 'बड़ी देवी कहाँ हैं?' दासी एकदम खड़ी हो गई।

'पूजाघर में।' हाथ बांध कर दासी ने कहा।

मुंजाल ने हाथ से उसे बैठ जाने का संकेत किया और स्वयं अन्दर गया। इस कमरे के कोने में एक छोटी अंधेरी कोठरी बनी हुई थी, और उसमें से धूप की सुगन्ध आ रही थी। मुंजाल इस कोठरी के आगे खुले हुए द्वार के सामने गया और धीरे से कहा। 'देवी!' उसके स्वर में मृदुता थी और दबाई हुई भावना का कंपन भी था।

'कौन मुंजाल! बैठ।' अन्दर से आवाज आई और अन्दर बैठी मीनल देवी ने द्वार खोले। मीनल देवी के मुख पर बुढ़ापा स्पष्ट दिखाई दे रहा था उनकी आंखों और मुख के सामने रेखायें खिंच आई थीं और उनके बहुत से बाल गिर गये थे, फिर भी उनके मुख पर गौरव और सत्ता की झांकी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनकी वाणी भाव-भरी थी।

मुंजाल ने शिखा खोलकर फिर बांधी। इतनी देर तक दोनों ने एक दूसरे के सामने देखा। दृष्टि मात्र मिली ही नहीं, वरन् आलिंगन कर रही थी। अतृप्त अन्तर की इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिए एक-दूसरे से लाड कर रही थी।

'देवी! काक आ गया।' थोड़ी देर पश्चात् मुंजाल ने कहा।

'चलो अच्छा हुआ। भेंट हुई?' मीनल देवी ने पूछा।

'मैंने उसे बुलाया है। अभी आने वाला है।'

'तुम्हें उसमें विचित्र श्रद्धा है न?'

'हां। उसकी शक्ति का आज एक अद्भुत उदाहरण मिला।

'कैसा उदाहरण!'

'लीला देवी मेरे पास आई थी।

'क्यों!'

काक के प्राण संकट में है ऐसा समझ कर रक्षा के लिए चिन्तित वह मेरे पास आई थी।'

'फिर?'

'जो उससे जानना चाहता था वह जानने का अवसर मिल गया। दरअसल लीलादेवी को पटरानी पद पर बनाए रखने से पहले मैं उसका मन जानना चाहता था।'

'जान लिया ?'

'हाँ, वह चतुर है, सत्ता की लालसा रखती है; महत्वाकांक्षी है। मुझे काक के सम्बन्ध में कुछ भय था वह आज दूर हो गया।'

'कैसा भय ?'

'देवी चालीस वर्षों में समय अवश्य परिवर्तित हो गया है। किन्तु क्या मनुष्य के हृदय में परिवर्तन हो जाता है ? अब हम हो गये हैं वृद्ध। छोटे बच्चों को तो जैसे हम कहें वैसा करना चाहिए।' कहकर मुंजाल ने स्नेह-भीनी दृष्टि से राजमाता को अर्घ्य अर्पित किया।

मीनलदेवी मुस्कराई। उमंगों और स्नेह ने जिसमें विशुद्ध परिपक्वता प्राप्त की वैसे हृदय से वह मुस्कराहट प्रकट हुई थी।

'फिर !' उसने पूछा।

'उसके मन में पुरुष वास अवश्य करता था किन्तु अब वह खेल समाप्त हो चुका है। या तो स्त्री आकर्षक न थी अथवा पुरुष रसिक न था।' मन्त्री ने कहा, 'पुरुष ने मुकुट और याचना दोनों को अस्वीकार कर दिया अब मैं निश्चित हुआ।'

मीनलदेवी ने भी निश्चिन्तता का निःश्वास लिया।

'नहीं तो क्या करते ?' उन्होंने विनोद में पूछा।

लीलादेवी को पटरानी पद से हटाना पड़ता और काक को लाट में लड़ने देना पड़ता।' तनिक गम्भीर होकर मुंजाल ने कहा।

मीनलदेवी थोड़ी देर तक गम्भीर रहीं। फिर उलाहना देते हुए वह मुस्कराई 'हे भगवान् ! चालीस वर्ष पहले मैं पाटण का महा-मामात्य होती तो ऐसे पुरुषों को ऐसी शिक्षा अवश्य देती।'

'वह पुरुष वैसी शिक्षा की चिन्ता भी करता ?' मुंजाल ने हँसकर उत्तर दिया। उसका मुख भूतकाल का स्मरण कर दीप्त हो उठा।

फिर गम्भीर मुख से उसने कहा, 'देवी ! सभी में हमारी शक्ति और हमारी पवित्रता नहीं है । अब तो हमें सोलंकी कुल की कीर्ति की रक्षा करनी है—और किसी प्रकार की जोखिम नहीं उठा सकते ।'

'हाँ' गम्भीर होकर मीनलदेवी ने कहा, 'अब यह काक यदि तुम्हारा सोचा हुआ करे···?'

'करेगा ही । लीलादेवी को विश्वासपात्र पटरानी बनाई रखने के लिए वह तो जान लड़ा देगा' देवड़ी वाली बात नहीं बनेगी ।'

'किन्तु जयदेव तो उसके पीछे पागल हो गया है ।

'पागलपन तो अपने आप दूर हो जायगा । काक है इसलिए हमें बोलना नहीं पड़ेगा । अब लीलादेवी जयदेव को रिझा सकें तो फिर कोई कठिनाई नहीं होगी । आपने प्रेमकुँवर से कहा था ! मैंने भी शोभा से कहा है कि दोनों आकर भेंट कर जायें ।

'यह लड़की ऐसी आई है कि लीलादेवी को प्रसन्न रखने के लिए आकाश पाताल एक कर देगी ।'

'लीलादेवी के मन को प्रसन्न करना सरल काम नहीं है ।' मुंजाल ने कहा, और किसी का पगरव सुनकर पूछा—'कौन है ?'

'बापू मैं हूं वस्ता, भटराज आ गए हैं ।

मुंजाल और मीनल देवी की दृष्टि मिली । 'आने दे' मुंजाल ने कहा । काक ने प्रवेश किया, राजमाता और महामंत्री को नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा ।

'कहो काक ! कैसे हो ? बैठो न !' मीनलदेवी ने कहा, 'मंजरी कैसी है ?'

'आपकी कृपा से आनन्द में हैं ।'

'और कोई बाल-बच्चे हैं ?'

'हाँ देवी, एक पुत्र और एक पुत्री है ।'

'वह भी आनन्द में हैं न ? ।'

'हाँ, आपके अशीर्वाद से ।'

'बहुत दिनों पश्चात् हम से मिला।' मीनलदेवी ने कहा।

'आपके प्रताप से मैं लाट में निश्चिंत हूं।' काक ने उत्तर दिया।

'तू भी ऐसे ही बोलना सीख गया है क्या ?' मुंजाल ने हँसकर काक से पूछा, 'तुझे अधिक निश्चिन्तता प्राप्त भी होती है ?'

'महाराज की सेवा में मैं निश्चित ही हूं आदरणीय।'

'लाट की स्थिति कैसी है ?' मुंजाल ने पूछा।

'सब कुछ छोड़कर आया हूं। आँबड़ आया है यही डर है।'

'क्यों ?'

'भूल करने का उसका स्वभाव-सा मालूम होता है।' काक की बात सुनकर मुंजाल और मीनलदेवी हँस पड़े।

'उदा मेहता मंजरी को साध्वी बनाना चाहता था यह तू भूलता नहीं मालूम होता।'

'मेहता जी !' मैं उसे नहीं भूला और वह भी भूलने वाली नहीं है।'

'क्यों उनसे भेंट हुई ?'

'हाँ। हम दोनों महाराज के पास थे दाहड़ मुझे पकड़ने के लिए सोमनाथ आया था। मेरे स्थान पर उसने मेरे सैनिक को पकड़कर यहाँ ला खड़ा किया। काक को पकड़ लाने का आनन्द लेते बाप-बेटे के सामने अन्दर के कमरे में से मैं निकला। दोनों के मुख देखने जैसे हो गए थे।'

'और महाराज ?' मीनलदेवी ने हँसते-हँसते पूछा।

'महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं।'

'तेरी प्रकृति तो मैं जानता हूं,' मुंजाल ने कहा, 'अब यह तो बता महाराज ने तुझे क्यों बुलाया ?'

'काक मुस्कराया, मेहता जी ! देवी न होती तो कुछ पूछता। अभी नहीं पूछूँगा।'

'पूछ ही ले न ! मीनलदेवी ने हँसकर कहा, 'मैं तो राज्य के काम में हाथ ही नहीं डालती।'

'और मैंने भी वानप्रस्थ ले लिया है। जो कुछ कहेगा सुन लूंगा।

मुझे सहनशीलता सीखनी चाहिए न, क्यों ?' मुंजाल ने हँस कर कहा ।

'मन्त्रीवर, तो सुनिए ! कितने ही दिनों से मेरे मन में एक संशय था ।'

'कैसा ?'

'यह कि इस पाटण का क्या होने वाला है । राजा को कोई पराजित नहीं कर सकता । उदा मेहता राजा के दाहिने हाथ बन बैठे हैं । छोटी देवी का सम्मान मिटता जा रहा है । विदेशियों और पिशाचों के बल पर पाटण का राजा उछलता और कूदता है । पट्टणी योद्धाओं का अपमान होता जा रहा है । इतना ही नहीं अशांत लाट में मेरे स्थान पर आंबड़ मेहता को भेजा और मेरे जैसे निर्दोष व्यक्ति को पकड़ने या मारने के लिए पग-पग पर आदमी बिठा दिए । मुझे यह सोचने के लिए विवश होना पड़ा कि मुंजाल मेहता गए कहाँ ?'

'मुंजाल मेहता ठहाका मारकर हँस पड़े, सोचा होगा मुंजाल मेहता स्वर्ग सिधार गया ?'

'मुझे ऐसा ही लगने लगा था,' काक ने हँस कर उत्तर दिया । 'किन्तु आज्ञा-पत्र देखकर कुछ-कुछ विचार पलटा ।'

'क्यों ?' मीनलदेवी ने पूछा ।

'पन्द्रह वर्ष पश्चात् एकाएक मेरा भाव बढ़ गया ।

'कितना अभिमान ! लाट में स्वच्छन्द होकर राज्य करने वाले दूंगपाल को राजा बुलाए नहीं तो क्या करे ?'

'या फिर होली में नारियल फोड़ने के लिए महाअमात्य को आवश्यकता पड़ गई हो तो वह और क्या करें ?'

मुंजाल की आँखों में प्रशंसा चमक उठी, 'महाअमात्य वृद्ध हो गया है ।'

'फिर आपके साथ मल्ल युद्ध करने का मुझमें साहस नहीं है ।' काक ने मुंजाल की ओर दृष्टि करके कहा, 'देवी ! आपको क्या लगता है ?'

'तू बदला नहीं है, तेरा बल ग्रौर बुद्धि वैसी की वैसी बनी हुई है यह स्पष्ट दिखाई देता है तेरे जैसा यहां दूसरा नहीं है।'

'तो ग्रब कब मेरी ग्राहुति देनी है, कहिए ?' काक बोला।

'काक बेटा !' मुंजाल ने कहा, 'देवी सच ही कहती हैं। तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं।'

'ग्रब मुझे करना क्या है ?' काक ने पूछा।

'जो समझ पड़े। काक ! राज्य के जीवन में कई बार विचित्र प्रसंग ग्राते हैं। यदि उन प्रसंगों पर विजय पाई तो राज्य की कीर्ति बढ़ती है—नहीं तो विनाश ग्रारम्भ हो जाता है। तुमने पूछा कि 'पाटण का क्या होने वाला है ?' कुछ नहीं होने वाला है, हाँ, एक विचित्र प्रसंग ग्रा गया।'

'तो ग्राप कुछ करते क्यों नहीं ?' काक ने सीधा प्रश्न किया।

'मैंने हल निकाला है।' रहस्य-भरे ढंग से हँसकर महाग्रामात्य बोले।

'क्या ?'

'जो व्यक्ति कर सकता है उसे खोज निकाला है।' मुंजाल मुस्कराया।

काक हाथ जोड़कर झुका, मेहता जी ! जितना ग्रापका विश्वास है उतनी शक्ति भोलानाथ दें बस यही कामना है !' उसने नम्रतापूर्वक कहा।

'काक ! मीनलदेवी ने कहा, 'तू थक गया होगा, ग्रब तनिक ग्राराम कर। परन्तु जो बातें हुई हैं किसी को उनकी भनक न मिले।'

'देवी !' मुंजाल बोला, 'ग्राप इसे भली प्रकार नहीं जानतीं। काक ! जा, विजय कर !'

काक ने प्रणाम कर विदा ली।

४५

सरोवर के किनारे पारिजात के वृक्ष के नीचे समर्थ खड़ी हुई थी। इस समय उसकी प्रसन्नता का ठौर न था ; उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे ; उसकी आंखों की पुतलियाँ स्थिर नहीं थीं, उसके होंठ क्षण-मात्र भी शांत न रह रहे थे, उसके सिर के केश भी चैन से नहीं बैठ रहे थे।

रह-रहकर उसके पाँव थिरक उठते थे और वह झुक-झुककर ताली बजा रही थी। वह कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। अभी उसके मन में से वाहड़ के बारे में अपनी बनाई हुई वह पंक्ति गई न थी।

उसने होंठ पर उंगली रखी, 'आने दे।' वह बड़बड़ाई, 'मुझे प्रतीक्षा करवा-करवाकर थका डाला है। अच्छी बात है—मैं भी परशुराम की पुत्री नहीं यदि उन्हें थका-थकाकर न छका दूँ तो! अपने मन में समझते क्या हैं? हम जैसे यों ही हैं।' उसने होंठ-पर-होंठ चढ़ाया और पुतलियाँ ऊंची कीं। ऐसा करोगे तो हम नहीं बोलने के—बस नहीं—नहीं—बस नहीं····।'

'समर्थ!' वाग्भट ने पीछे से आकर कहा। उसके मुख पर असाधारण ग्लानि छाई हुई थी। आँखें उदास थीं। उसके सुन्दर मुख के तेज पर निराशा की कालिमा छा रही थी।

समर्थ ने घूमकर वाग्भट को देखा तो क्रोध भूल गई। और एक-दो पग हवा में कूदी और ताली देकर वही पंक्ति गाने लगी। उसका रोम-रोम हँस रहा था। वाग्भट ने एक गहरा निःश्वास लिया।

'समर्थ!' रुआंसे से स्वर में वाग्भट बोला।

'काक आ गया न?' समर्थ ने ऊँचा देखकर, कपाल से केशों को उठाते हुए पूछा।

'हाँ।' वाग्भट ने कहा, 'किन्तु····!'

समर्थ सुनने के लिए नहीं रुकी। वह उछलते-कूदते वाहड़ की

परिक्रमा करने लगी और एक के स्थान पर दो तालियां बजाने लगी।

'समर्थ ?' खेद से समर्थ का हाथ पकड़कर वाहड़ बोला, 'सुन !'

'तुम तो रोया ही करते हो,' कहकर समर्थ फिर परिक्रमा करने लगी।

'समर्थ !' अधीरता से वाहड़ बोला, 'तू सुनेगी भी ?'

'बोलो !' कहकर समर्थ खड़ी हो गई। वह बेचारी अधीरता का कारण न समझ पाई।

'समर्थ !' वाहड़ ने दुःखी हृदय से कहा, 'मुझ से वचन का पालन नहीं हुआ।'

'क्या ?' एकदम आँखें फाड़कर समर्थ ने पूछा।

'मैं काक को नहीं पकड़ पाया।'

कुछ देर तक समर्थ देखती रही—फिर एकदम तालो बजाकर हँसी 'झूठे, झूठे, झूठे !'

'नहीं, सच्ची बात है।' वाहड़ ने हास्यास्पद गम्भीरता से कहा।

'झूठ ! मेरी दासी कहती थी।'

'समर्थ !' उठते हृदय से वाग्भट ने कहा, 'जिसे मैंने पकड़ा वह काक नहीं, कोई और था।'

समर्थ की आँखें धीरे-धीरे बड़ी हुईं। वह मर्म समझी, उसका मुख गम्भीर हो गया और रुआँसा हो गया।

'तब काक को पकड़कर नहीं लाये ?' कहते हुए वह रो पड़ी ऊँ···ऊँ···ऊँ—तुमने क्यों नहीं पकड़ा ?'

'वह चुपचाप यहाँ पहले से ही आ गया था।' वाहड़ ने धीरे से कहा।

'अब क्या होगा ? हं—हं—तुमने वचन नहीं रखा—हं—हं मैंने अपनी माँ के साथ शर्त की थी हं···हं···मैं हार गई। तुमने यह क्या किया है ? हं···हं···हं !' कहकर हाथों में मुंह रखकर समर्थ रोने लगी। उसका सुन्दर मुख सिसकियों से ऊँचा-नीचा हो रहा था।

'अब कोई तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करेगा।'

वाहड़ की छाती में एक धक्का लगा—'मैं जानता हूं।' उसने बड़ी कठिनाई से कहा। 'काक को पकड़कर महाराज से वरदान मांगने का विचार किया था परन्तु उल्टा अपमानित होना पड़ा। मुझे तेरे पिता जी के अधीन युद्ध में जाना है।' कपाल पर से पसीना पोंछते हुए वाग्भट ने कहा।

'पिताजी कहते थे कि तुमको कविता करना आता है—लड़ना नहीं।'

वाहड़ ने नीचे देखा, 'यह कैसे जाना?'

'एक दिन रात को पिता जी और माँ बातें कर रहे थे; मैंने छिपकर सुन ली। वाहड—वाहड—ओ वाहड तुम तुम!' उसने निराशा-भरे स्वर में कहा।

'क्यों?'

'क्या अब भी काक को नहीं पकड़ सकते?'

'समर्थ!' वह तो महाराज का विश्वासपात्र है--क्या पागल हुई है?'

'तो तेरे दादा मेरे दादा के समान दण्डनायक क्यों नहीं बने?'

वाहड़ ने खेद से दृष्टि उठाई। उसे मालूम था कि उसके मारवाड़ी दादा का भुखमरा जीवन ही उसके और वनराज के महामन्त्री चापा का वंशज समर्थ के बीच में आता था। परन्तु दादा की स्थिति के लिए वह उत्तरदायी बिल्कुल नहीं था यह इस नादान छोकरी को कैसे समझाए यह उसे नहीं सूझा।

'मेरे जले भाग्य के कारण।'

'तो तुम कवि कैसे हो गये?' समर्थ ने पूछा।

'अपना सिर फोड़ने के लिए।'

'तुम ऐसे कैसे बोलते हो?' समर्थ ने क्रोध में कहा। वाहड़ सम्मान से झुक गया।

'समर्थ! मैं जानता हूं मैं तेरे योग्य नहीं हूं। मैं अब युद्ध में जाऊँगा मर जाऊँगा तो छुट्टी मिलेगी—और विजयी होऊँगा तो भी उससे पहले तेरा ब्याह दूसरे स्थान पर कर दिया जायेगा।'

समर्थ ने ऊपर देखा। वह आँखें फाड़कर देखने लगी, 'तुम मर जाओगे ? नहीं, नहीं। फिर तुम्हें जला देंगे ? नहीं ऐसा क्यों कहते हो ?'

'मुझ से तेरे बिना जिया नहीं जाता।' कवि ने कहा।

'ऐसा मत कहो, तुम इस प्रकार बोलते हो तो मेरा जी घबराता है।'

'समर्थ ! बच्ची है—इसलिए मुझे कैसा समझेगी ? तू तो मुझे कल भूल जायेगी किन्तु तेरे बिना मेरा जीवन कैसे चलेगा ?'

समर्थ नादान, विचारहीन, और तरंगी थी। उसे वाग्भट बहुत अच्छा लगता था और उससे ब्याह करने का उसका मन बहुत करता था—किन्तु वह इस प्रकार क्यों बोल रहा है वह यह स्पष्ट न समझ सकी। वह थोड़ी देर तक सोचती रही।

'वाहड़ ! तुमने मेरा गीत भी बिगाड़ दिया। ऐसा गीत मैंने पहले कभी नहीं बनाया था।

वाग्भट तनिक तिरस्कार से हँस पड़ा 'समर्थ तेरा तो गीत ही बिगड़ा—मेरा तो साथी गया।'

'क्यों ?'

'मेरा सिर,' कहकर वाग्भट जाने के लिए घूमा।

'वाहड़ !' एकाएक समर्थ बोली।

'क्या !'

'तुम अभी नहीं मरोगे।'

'यह मेरे हाथ में नहीं है।'

'पूरा सुनते भी नहीं। मुझे एक मार्ग सूझा है। मैं ऐसा मार्ग बताऊं कि काक को तुम ही पकड़ सको।'

वाग्भट ने निःश्वास लिया, सिर हिलाया और भारी हृदय से फिर जाने के लिए मुड़ा। उसके अन्तर के दीप मन्द पड़ गये थे।

विद्वान् और वीर वाहड़ ने विद्वानों के स्वभाव की सरलता से इस द्वीप को अपने प्राण अर्पण कर दिये थे, किन्तु यह ज्योति उसके

भाग्य में न थी इसका उसे पूरा विश्वास हो गया।

समर्थ को एक सरल विचार आया था; और जब तक उसे करके न देखा जाता तब तक उसे चैन पड़ने की न थी।

उसे इस न पकड़े गये काक के प्रति द्वेष हो आया। उसने अपने पिता को इस काक की प्रशंसा करते हुए सुना था, और यह भी सुना था कि इसको जो भी पकड़ेगा उस पर राजा बहुत प्रसन्न होंगे। इसी से उसने और वाहड़ ने यह युक्ति रची थी और वाहड़ ने उदा मेहता से काक को लेने जाने की आज्ञा मांग ली थी। यदि वाहड़ काक को पकड़े तो राजा प्रसन्न हों, परशुराम की वाग्भट पन्डित के शौर्य के विषय में अच्छी भावना हो जाये तो समर्थ और वाहड़ के ब्याह की कुछ बात की जा सके। पहले शम्भू मेहता के पौत्र के साथ उसका विवाह होने वाला था; किन्तु गत वर्ष वह युद्ध में मारा गया था। तब परशुराम जैसा गर्विष्ट योद्धा अपने कुल की महत्ता के योग्य वर की खोज में था, किन्तु पाटण के बहुत ही कम कुलों में वह योग्यता होने और कुटम्बों में उचित आयु के अविवाहित युवकों का अभाव होने के कारण वह खोज अब तक सफल नहीं हो पाई थी। समर्थ यह सब जानती थी, किन्तु वाहड़ जैसे अच्छे आदमी को उसके पिता अपनी पुत्री को क्यों नहीं दे रहे थे यह उसकी समझ में नहीं आया।

४६

जगदेव परमार दुर्जन या नीच मनुष्य नहीं था। वह वीर योद्धा था और स्वामी-भक्ति निभाने के लिए हर क्षण तत्पर रहता था। उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर जयसिंहदेव उसे मालवे से साथ ले आये थे और पाटण में उसे धन, मान, उपाधि और चावडा जैसे ऊँचे कुल की पत्नी

आदि सभी दिये थे । उसे पसन्द करने और दाहिना हाथ बनाने में जयसिंह देव का गहरा स्वार्थ था इस बात को जगदेव नहीं जानता था ।

गर्विष्ठ पट्टणी योद्धाओं और मंत्रियों पर सत्ता जमाने के लिए उनसे नितान्त स्वतन्त्र होने का सिद्धान्त जयसिंहदेव के मस्तिष्क में घर कर गया था । बाबरा को जीत लेने से और भूत समझे जाने वाले बाबरा की सहायता से असाधारण लोग उन्हें अपार्थिव और अजित सत्ता का धनी समझते थे । किन्तु योद्धाओं, सामंतों और मंत्रियों के प्रभाव को दबाना उतना सहज नहीं था । कई महामंत्री और महारथी एक-दूसरे के सम्बन्धी थे और एक-दूसरे से जी भर ईर्ष्या करते थे, किन्तु राजा के कहने पर एक-दूसरे से लड़ने के लिए तत्पर न होते थे । राजा को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने जगदेव परमार को अपना अंग-रक्षक नियुक्त किया और तीन सौ सशस्त्र मालवियों को उसके आधीन कर दिया । महल में प्रवेश करना हो, राजा से भेंट करनी हो, कुछ प्रार्थना करनी हो, तो उसके लिए जगदेव से भेंट किए बिना कोई और चारा नहीं था । किसी को 'सीख' देनी होती या किसी को डराना होता तो राजा की आज्ञा यह स्वामि-भक्त सिर-आँखों चढ़ाता था । उसे राजा की कृपा छोड़कर और किसी की चिन्ता नहीं थी । पाटण या उसके राजतंत्र में या उसके ठाट-बाट में राजा की सेवा के अतिरिक्त उसे और किसी में आनन्द नहीं आता था । राजा और परमार के बीच, किसी व्यक्ति और उसके विश्वासपात्र निर्जीव शस्त्र के बीच जैसे प्रीति हो जाती है वैसे ही प्रीति थी ।

राजा के और अपने मध्य में यह धार वाली बाढ़ खड़ी देखकर पाटण के महापुरुष पहले तो कुढ़े, किन्तु राजा के हठी और महत्वाकांक्षी स्वभाव से परिचित थे । इसलिए सोये सिंह को न छेड़ने के उद्देश्य से सभी ने परमार से भाईचारे का व्यवहार स्थापित कर लिया । यदि कभी-कभी राजा की इच्छानुसार जगदेव अपनी सत्ता चलाया था तो वह इधर से आँखें ही मींच लेते थे । इतना ही नहीं कभी-कभी तो वह इस

प्रकार व्यवहार करते थे मानो डरते हों कि कहीं जगदेव बिगड़ न खड़ा हो। फलस्वरूप उनका गर्व और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

राजा ने परमार को जब भट्टराज बनाया तब तो कोई नहीं बोला, किन्तु जब सेनापति का पद देने की बात उठी तो सभी में खलबली मच गई। फलस्वरूप मीनलदेवी बीच में पड़ीं और यह आशय पूरा न होने दिया। किन्तु राजा जब मंत्रियों के साथ सलाह करता था तब परमार अधिकतर वहीं उपस्थित रहता था। जगदेव के कारण मालव योद्धाओं ने पाटन में घर करना आरम्भ किया और छोटे-बड़े पदों का उपभोग करने लगे थे, और इस प्रकार राजा की गृहिणियों का गर्व कम करने की लालसा बढ़ती गई।

इसलिए महत्वाकांक्षी, हठी और प्रतापी राजा के इस मान्य और विश्वासपात्र योद्धा को सभी विदेशी, किराए का प्रत्येक प्रकार का काम करने वाला दास समझकर मन-ही-मन तिरस्कार के वाक्य कहते थे, किन्तु किसी की ऐसी मजाल नहीं थी जो उसके सामने एक शब्द भी बोल सके, एक पग भी बढ़ सके।

राजा ने समझा, मेरी सत्ता पूर्ण हो गई; जगदेव ने समझा कि उसका स्थान निर्विघ्न हो गया, दरबारियों को लगा कि उनके और राजा के बीच का निर्दोष व्यवहार समाप्त हो गया। यह नूतन क्रम सदा का है और सदा रहेगा ऐसा सभी ने मान लिया—और बर्बरक पर विजय पाने वाले परमभट्टारक महाराजाधिराज दैवी और दुर्धर्ष सत्ता के अधिकारी हैं यह भी सब मानने लगे।

जगदेव परमार की भी यही मान्यता थी, इसलिए आज उसे चैन न पड़ा। वह राजा के कमरे के बाहर अपनी चौकी पर लेटकर भवें तान रहा था। आज उसे बहुत सी बातें अच्छी न लगीं। महल में कोई ब्राह्मण के वेश में उसके बिना जाने घुस गया, उसने उसके सैनिक को बाँधा, वह उसके जाने बिना रानी से भेंट कर आया, रानी ने उसे अपमान करके निकाल दिया। उसके बिना जाने दो व्यक्ति महाराज से

भेंट कर आए। उसके बिना जाने ही काक राजा के कमरे में जा घुसा और राजा का मान्य हो गया और उसे बिना बुलाए ही राजा ने उदा और काक के साथ मंत्रणा कर ली। उसे यह सब साधारण और अस्वाभाविक बातें अच्छी न लगीं।

इस नवागन्तुक काक के प्रति उसे अरुचि हो गई। उसने इस व्यक्ति के विषय में बहुत परिचय प्राप्त कर लिया था और लोगों में फैली लोक कथाएँ भी बहुत सुनी थीं। किन्तु ऐसी कथाओं में उसे श्रद्धा न थी। पाटक के बहुत-से दण्डनायकों, मंत्रियों और सेनापतियों के विषय में ऐसा ही सुना था, किन्तु कोई उसके सामने खरा न उतरा और इस समय इस नये व्यक्ति को उसका स्थान बताने के लिए उसके हाथ अकुला रहे थे।

'सामने खड़े हुए एक सैनिक को उसने बुलाया—नेमा!'

'आज्ञा बापू!'

'शम्भू को बुला तो!'

'जी' कहकर नेमा शम्भू को बुला लाया। शम्भू परमार का काम करता था और उसकी ओर से देख-रेख करता था।

'तो काकभट को उसका निवास-स्थान दिखा आया?'

'हां, किन्तु उन्होंने वह स्थान पसन्द नहीं किया।'

'क्यों?' जगदेव ने चकित होकर पूछा।

'उनके लिए वस्ता ने कमरा खोल दिया है।'

'कौन सा?'

'शोभ मेहता जिसमें लिखते हैं उसके निकट वाला कमरा।'

'किन्तु मैंने जो कमरे खुलवा दिये थे उनका क्या हुआ?'

'वह कहते हैं कि मुझ अकेले को अधिक की क्या आवश्यकता।'

'कहना चाहिए था न कि महल का प्रबन्ध मेरे हाथ में है।'

'मैंने कहा तो हँसकर बोले कि मैं तो ऐसे कमरे में पड़ा हूं कि किसी को आपत्ति नहीं होगी।'

'शम्भू! वस्ता को बुला ला।' शम्भू गया।

उसे लगा कि आज का सूर्य उदय होने के साथ-साथ झंझट भी लेता आया है। राजमहल का सम्पूर्ण प्रबन्ध वही करता था, और उसमें परिवर्तन करने का किसी में साहस नहीं था। उस पर मुंजाल मेहता का नौकर वस्ता इस प्रकार काक के लिए प्रबन्ध करे यह उसे अपने गौरव और सत्ता पर चोट करने जैसा लगा। उसने काक के लिए अपने निवास-स्थान के नीचे के भाग में दो कमरे खोल दिये थे ताकि उसकी दृष्टि उस पर रहे। किन्तु वह कमरा तो ऊपर था जहाँ से महाराज रानियां, मीनलदेवी, मुंजाल आदि के निवास-स्थानों में तुरन्त जाया जा सकता था। वह अपनी मूंछे दांतों के बीच में रखकर चबाने लगा।

शम्भु वस्ता को ले आया। जगदेव राजमहल के कई लोगों को दूर-ही-दूर रखता था। वह अधिकतर वृद्ध थे, और ऐसा कहा जाता था कि मुंजाल मेहता के विश्वासपात्र आदमी हैं। हो सके जहां तक मुंजाल या उसके आदमियों पर खुले रूप से अधिकार जमाने में सार नहीं था, ऐसी प्रेरणा जगदेव को बड़ी विचित्र रीति से हुई थी और उसी प्रेरणा के अनुसार वह आजकल चलता भी था किन्तु इस समय उसे लगा कि वस्ता ने उसकी सत्ता के क्षेत्र में अनधिकार चेष्टा की है।

वस्ता वृद्ध था, किन्तु चतुर था। मौन रह कर और हाथ जोड़कर उसने प्रणाम किया।

'वस्ता ! महाराज की आज्ञाओं का तुझे मान है ?'

'मैं समझा नहीं ?'

'महाराज की आज्ञा है कि महल की व्यवस्था मेरे सिवाय कोई न करे।

'मुझे मालूम है।'

'तो आज यह आज्ञा तूने कैसे भंग की ?'

'मैंने कहां भंग की ?' कुछ चकित होकर वस्ता ने कहा।

'मैंने सुना है तूने काकभट के लिए महल में कमरा खोल दिया।'

'ओहो !' वस्ता हंसा, 'भट्टराज ! यह तो ऐसा हुआ कि काकभट

जी महाराज के साथ भोजन करके लौटे तो उनके लिए बैठने का भी स्थान नहीं था । मेरे पास उस कमरे की कुंजी थी तो मैंने खोल दिया । भटराज ! इन थके-मांदे अतिथि के लिए इतना-सा करना अपराध हो गया ?' वस्ता ने निर्दोष बात कही ।

'विस्तर आदि किसने दिया ?'

'मैंने ।'

'किसकी आज्ञा से ?'

'अतिथि-सत्कार करने के लिए आज्ञा की आवश्यकता होती है ।' सादगी से वस्ता ने कहा ।

'तुझे यह सब अधिकार किसने दिया ?' आंखें निकालकर जगदेव ने पूछा । उसे लगा मानो वह वृद्ध उसकी हंसी उड़ा रहा हो ।

'ऐसा करने के लिए क्या अधिकार की आवश्यकता होती है ?'

वस्ता फिर मुस्कराया ।

'अच्छी बात है । जकार काक भटराज को कह आ कि उनके लिए मैंने नीचे चौक में दो कमरे खोल दिये हैं वहीं आकर रहें । तेरा बनाया हुआ कमरा उनके जैसे बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता ।'

'बापू ! यह आपके गणों का काम है—मेरा नहीं । महल का प्रबन्ध आपके हाथ में है ।' वस्ता ने उपेक्षा से कहा ।

'तू और मेरे गण सभी महाराज का नमक खाते हैं ।'

'खाते हैं ।'

'तो यह काम तुझे करना ही पड़ेगा ।'

'नहीं ।' वस्ता ने दृढ़ता से कहा ।'

'क्यों नहीं ?' जगदेव गरजा ।

'मैंने कारण कभी का बता दिया है ।

'तू मेरी आज्ञा का अनादर करता है ।'

'हाँ ।'

'किसी की आज्ञा से या अपनी इच्छा से ।' जगदेव ने पूछा ।

'अपनी इच्छा से।'

'ऐसा ? शम्भू ! इसको बन्दी बना ले।'

'शम्भू !' हंसकर वस्ता ने कहा, 'क्यों कष्ट करता है ? मुझे कोठरी बता, मैं वहां चलूं।' कहकर वस्ता आगे बढ़ा। शम्भू कहने लगा, 'बापू।'

'अपनी आज्ञा का अनादर मैं नहीं सहन करूंगा।' जगदेव चिंघाड़ा। शम्भू और वस्ता चले गए।

'और अब मैं स्वयं जाकर ही यह काम करूंगा।' कहता हुआ जगदेव उठा, कमर में तलवार लटकाई और काक से भेंट करने चला।

'नहीं, नहीं। परन्तु यह कैसे हो सकता है ? ऐसा होने से मेरे उत्तरदायित्व पर लांछन लगता है।' जगदेव ने कहा।

'परमार! मेरा स्वभाव कुछ विचित्र है जब मैं यहां आ गया तो मुझे यहीं अच्छा लगेगा।'

'किन्तु यह तो उस आदमी की भूल थी। महल का प्रबन्ध तो मैं करता हूं न ?' जगदेव ने तनिक अधीर होकर कहा।

'मेरे लिए प्रबन्ध करने का कष्ट मत कीजिए। मैं अपना प्रबन्ध स्वयं कर लेता हूं।'

'फिर यह कोठरी भी तो अन्य काम के लिए है।' जगदेव ने कुछ नम्रता से कहा।

काक इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा था। जिस प्रकार बाघ छलांग मारता है उसी प्रकार वह जगदेव की ओर लपका और बोला, 'परमार! तुम योद्धा हो। मैंने भी कई युद्धों में भाग लिया है। योद्धा का अपमान सहन नहीं होता, साफ कह दो न कि इस सब का रहस्य क्या है ?'

'नहीं—नहीं—कोई विशेष……'

'कह दूं ? हंस कर काक बोला, 'अब तुम मुझे निश्चित किए हुए स्थान पर रखना चाहते हो परन्तु मैं वहां रहने का।'

जगदेव चमका। इस प्रकार बात करने के लिए वह तैयार नहीं था।

'भटराज ! किन्तु महल की व्यवस्था ……।'

'परमार ! उसकी मुझे लेशमात्र भी चिन्ता नहीं । देखो हम प्रथम बार मिले हैं, इसलिए स्पष्ट बातें कर लें ।'

'कैसी ?'

'तुम यहां के बड़े सत्ताधीश हो । मैं जयसिंहदेव महाराज की सत्ता के सिवा और किसी को गिनता नहीं । इसलिए मुझे क्या करना है, कहां रहना है इस सम्बन्ध में उनके सिवा किसी दूसरे को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं ।'

४७

जब जगदेव परमार काक के कमरे में उससे भेंट करने के लिए पहुंचा तब द्वार के सामने वाहड़ जिस व्यक्ति को काक समझ कर पकड़ लाया था वह बैठा हुआ था ।

'काक भटराज हैं ?'

'सोये हुए हैं ।' उस व्यक्ति ने कहा ।

'कौन है ?' अन्दर से एक स्वर सुनाई पड़ा ।

'मैं जगदेव परमार ।'

'पधारिए ।' काक की आवाज आई ।

परमार अन्दर गया । एक छोटे से हिंडोले पर नाम का गद्दा डाल कर काक लेटा हुआ था । वह उठ बैठा ।

'आओ भाई परमार ! आपने कैसे कृपा की ? बैठो ।' काक ने परमार को अपने पास बैठने का संकेत किया ।

'वैसे ही !' जगदेव ने बैठते-बैठते मीठा उत्तर दिया, 'आपके लिए मैंने दो कमरे खुलवा दिए हैं यही कहने आया हूं ।'

'अरे क्यों कष्ट किया ? मेरे लिए यहीं ठीक होगा।'

'ऐसा कहीं हो सकता है ?'

'मेरी इससे अच्छे स्थान में रहने की आदत नहीं है।'

'परन्तु महाराज की विशेष आज्ञा है।'

काक सावधान हो गया। इस भलमनसाहत में कुछ रहस्य दिखाई दिया।

'कह देना कि अब यहीं ठहर गया तो ठहर गया।'

'उन्हें बुरा लगेगा।'

'मैं मना लूँगा।' काक ने हँस कर कहा।

'भटराज ! आप जान बूझ कर मेरा अपमान करना चाहते हैं, क्यों ?' गर्व से हँसकर जगदेव ने दाढ़ी पर हाथ रखा।

नहीं, केवल मैं अपना अपमान सहन नहीं करता।'

'भटराज ! आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया है। मैं किसी का अपमान नहीं करता।'

'परमार ! बिना अधिकार कोई मुझ पर सत्ता जमाने आए तो मैं उसे अपमान ही समझता हूं।'

'भटराज ! महल में मेरा ही अधिकार है।'

'मैं उसे स्वीकार नहीं करता।'

'क्यों ?'

'परमार ! तुम्हारा बल अगाध समझा जाता है, तुम्हारे मालवी वीर जिसे चाहे राह चलते पकड़ कर पीट सकते हैं। मेरे प्रति भी अपने अधिकार का जैसा चाहे उपयोग करो। मैं सामना करने के लिए तत्पर हूं।' काक ने निश्चिन्तता से हिंडोले को धक्का देते हुए कहा।

'भटराज आप व्यर्थ का वैर बांध रहे हैं।' हिंडोले पर से क्रोध से उतरते हुए जगदेव ने कहा, 'मुझसे शत्रुता करने वाले किसी पट्टणी का कभी भला नहीं हुआ।'

'और ···।' उपेक्षा से मुस्करा कर काक ने कहा. किसी विदेशी ने

मुझ पर सत्ता जमाने का प्रयत्न करके लाभ नहीं उठाया।'

'भटराज ! आपकी जबान बड़ा बुरा परिणाम लाएगी।' जगदेव का हाथ तलवार पर गया।

'तुम से कहीं अधिक बलवानों को मेरी जबान ने जीवित जला दिया है, धीरे से हिंडोले पर से उतरते हुए काक बोला, 'तुम्हारे हाथ अकुला रहे हैं, क्यों ? अच्छी बात है। खेमा ! मेरा खड्ग ला तो।' तिरस्कार से काक बोला, 'अभ्यास किए बहुत समय हो गया है. फिर ताजा हो जायगा।'

जगदेव को अब परिस्थिति का भान हुआ। वह नम्र हो गया।

'भटराज ! क्षमा करो। मुझे सचमुच तनिक क्रोध आ गया था। क्षमा करो। महाराज जानेंगे तो क्या कहेंगे ?' जयसिंहदेव का स्मरण होते ही परमार मन-ही-मन काँप उठा।

'कोई बात नहीं। यह तो विनोद ही हो रहा था।'

'नहीं, नहीं यह कैसे हो सकता है ? भटराज ! क्षमा करो.' कहकर चतुर जगदेव ने हाथ जोड़े. आपने. मुझे व्यर्थ ही उत्तेजित कर दिया था।'

'घबराओ नहीं। हां, एक बात और कहूं, नहीं तो फिर रह जायगी। तुम्हारे जैसे परमार का बल और शौर्य तो धारा के परमार के यहां शोभा देता है; परमार के कट्टर शत्रु पाटण के राजा के यहां नहीं,' काक ने जैसे चाबुक मारा। 'परमार, बैठो, एक दूसरी बात करनी है।'

नहीं, अब मैं जाऊं······!' इतने में एक वृद्ध अनुचर आया जिसे देखकर जगदेव अटक गया।

'परमार !' उसने आकर कहा. 'महाअमात्य जी बुलाते हैं।'

'कौन ?' साश्चर्य जगदेव ने पूछा। उसका मुंह कुछ उतर गया।

'मुंजाल मेहता जी !' उस वृद्ध ने कहा।

काक की आँखें कुछ चौड़ी हो गईं। जगदेव घबरा गया था यह

स्पष्ट दिखाई दे रहा था। जहाँ तक सम्भव हो वह मुंजाल से भेंट नहीं करता था और न ही मुंजाल ही कभी उसे बुलाता था। जगदेव का मुंजाल से परिचय नहीं था किन्तु राजा को उसे अत्यन्त मान देते देख कर वह भी उससे सम्मान के साथ दूर ही रहता था। आज जब उसके गर्व पर चोटें पड़ रही थीं तो इस प्रकार का बुलावा उसे अच्छा नहीं लगा।

'कहना, तनिक काम में लगा हूँ, फिर आकर भेंट कर लूँगा।' कुछ अभिमान से जगदेव ने कहा।

उसकी साधारण स्थिरता उसमें होती तो परमार इस प्रकार कहने का स्वप्न में भी विचार नहीं करता। किन्तु उसका मस्तिष्क ठिकाने न था। यह उत्तर सुनकर काक और अनुचर दोनों चकित हो गए।

'आपने क्या कहा?' अनुचर ने स्पष्ट पूछा।

'मैं फिर भेंट करूँगा।' हर एक शब्द पर जोर देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा, 'तुम क्या कह रहे हो यह भी मालूम है?' उसने धीरे से पूछा।

'हाँ, क्यों?'

'मुंजाल मेहता बुलाए और कोई न जाय, इसका अर्थ क्या होता है मालूम है?'

'मैं जानता हूँ कि वह महाअमात्य हैं। परन्तु मुझे महाराज के पास जाना है।'

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

'जगदेव! चले जाओ!' उसने कठोरता से कहा, 'इतने वर्ष यहाँ रहकर भी तुम मुंजाल को नहीं पहचानते यह आश्चर्य की बात है। जाओ, नहीं तो यह अनुचर आयेगा।'

काक के बोलने का ढंग इतना गम्भीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फटा जा रहा था।

काक मुस्कराया। 'सेना!' उसने कहा, 'जा, जाकर मंगो से पूछ आ, लीलादेवी को अवकाश हो तो भेंट कर कृतार्थ होऊँ।'

'जो आज्ञा बापू।

६८

जगदेव परमार के हृदय में क्रोध की आँधी चली थी। लीलादेवी, काक और मुंजाल इन तीनों ने आज उसे पैरों की धूल सा समझ लिया था। इतने वर्षों के पश्चात् यह कैसा परिवर्तन? उसे काक सावधान करे उसे न सुहाया, और मुंजाल मेहता ने आज्ञा देकर बुलवाया, यह भी उसे भला न लगा। उस पर काक के शब्दों ने उसके आन्तरिक गर्व पर आघात किया था। वह विदेशी है, सेवक है, वह अपने योग्य स्थान पर नहीं है, यह उसे प्रथम बार प्रतीत हुआ। फिर भी वह हठी होकर अपना गर्व बनाए रहा।

गर्व से सिर ऊँचा करके संग्राम की मूर्ति जैसी प्रचण्ड भयानक दीखने वाली मूँछ पर हाथ रखकर वह महाअमात्य के निकट गया। मुंजाल मेहता से उसका कभी सीधा काम नहीं पड़ा था इसलिए आत्मगौरव को सुरक्षित रखने के लिए उसे यही उचित साधन जान पड़ा।

वृद्ध मुंजाल गद्दी पर बैठा हुआ था। गौरवशाली मुख पर सत्ता की रेखाओं से सज्जनता की रेखायें मिली हुई थीं। एक ओर एक जैन मुनि बैठे हुए थे। थोड़ी दूर पर शोभ कान में लेखनी खोंसकर अभी-अभी के लिखे आज्ञा-पत्र को रेत डाल कर सुखा रहा था। दो व्यक्ति दूर घुटने टेककर बैठे हुए थे। वातावरण किसी धनाढ्य और श्रद्धालु वणिक के घर जैसा था।

'आपने मुझे बुलाया?' तनिक कठोरता से जयदेव ने कहा।

मुंजाल ने मधुर मुस्कराहट से उसके प्रणाम को स्वीकार किया

और जगदेव की ओर बिना देखे ही कहा—'तनिक ठहरो। मैं यह आज्ञा पत्र पढ़ लूं।' कहकर उसने शोभा से आज्ञा-पत्र लेकर धीरे-धीरे पढ़ना आरम्भ किया। जयदेव को पट्टणियों की रीति-नीति के प्रति बहुत तिरस्कार था और विशेषकर मंत्रियों के प्रति तो उसकी अरुचि इतनी थी कि बड़ी कठिनता से ही वह उसे दवा पाता था। किन्तु इस शांत आमात्य के सामने वह कुछ घबराया। गर्व से उसने अपना क्षोभ दबा दिया।

'परमार!' स्मित से ऊपर देखकर मुंजाल ने कहा, 'तुम्हारा आदमी वस्ता को बुला ले गया था। वस्ता को पहचानते हो न?' मंत्री की मुस्कराहट हृदय को हरने वाली थी।

'हां!' तनिक गर्व से होंठ बन्द करते हुए जगदेव ने कहा।

'मंत्री की मुस्कराहट जारी रही। उसने शांत [illegible] से जगदेव के मुख की ओर देखा। जगदेव घमण्ड में चेतना खोकर तिरस्कार से मुस्करा उठा।

'एक घड़ी में वस्ता जहां भी हो वहां से खोजकर लाओ।' शांति से मुंजाल ने कहा।

'महता जी!' जगदेव बोलने लगा तो क्षोभ से यह अभिमान के आवेश में स्वर मोटा और विनयी हो गया। वहां बैठे हुए व्यक्तियों को ऐसा लगा मानो यमराज के पदार्पण से जैसा कम्पन होता है वैसा ही कम्पन्न हुआ। मन्त्री का विशाल सिर गर्व से ऊंचा उठा। सज्जनता से शोभायमान उसके मुख पर निश्चल गौरव विराजमान था। उसके कपाल पर शांति थी किन्तु आंखों में मानो ज्वालामुखी फटे हुए थे। उसकी ज्वाला देखकर जगदेव की जिह्वा तालू से चिपक गई।

'परमार!' जिस स्वर से पाटण का शत्रुदल कांपता था उसमें वह गरजा। उसमें प्रभाव था, गर्व था, और दुःसह शांत सत्ता थी, 'एक घड़ी में—एक घड़ी में या तो वस्ता को खोजकर लाओ अथवा अपने वस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ को सौंपकर यहां उपस्थित हो जाओ।'

जगदेव का सिर चकरा गया। इस अमात्य का मस्तिष्क फिर गया है या वह स्वयं पागल हो गया है? शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ मेहता को सौंपने का अर्थ वह समझता था। क्या एक अनुचर को उसका स्थान दिखाने के लिए उनके जैसे योद्धा को, भटराज को, महाराज के विश्वासपात्र को पदभ्रष्ट करके देश निकाले का दण्ड दिया जायेगा?'

'किन्तु....।' काँपते हुए होठों से बोला।

वह आँखें फिर चमक उठीं—'जब तक मेरी आज्ञा का पालन न हो जाय तब तक मैं किसी की कोई बात नहीं सुना करता।' मुंजाल ने प्राणघातक तिरस्कार से कहा। 'जाओ शोभ! मैंने कहा वह सुन लिया न?'

'जी हाँ।' शोभ मेहता ने कहा।

'खड़ा रहे, गिर पड़े या धरती पर बैठ जाय—जगदेव को कुछ भी न सूझा। वह चुपचाप चला गया।

जगदेव के मुख पर फेन आ गया। क्या मालवे से यहाँ इन सभी के पद की रज बनने के लिए लाया गया था? क्या अपराध किया था उसने! उसे जयसिंहदेव महाराज का स्मरण हुआ! बेचारा पाटण का नरेश! उनसे अपने महल में भी सत्ता नहीं दिखाई जा सकती। जगदेव का स्वामि-भक्त खून खौलने लगा। इस समय उसके स्वामी को उसकी बहुत आवश्यकता थी। उसकी सत्ता की रक्षा करना उसका कर्त्तव्य था। यह उसकी कृतज्ञता की कसौटी थी। कैसे किसी को अपने स्वामी की सत्ता पर आक्रमण करने दे सकता है उसके प्रचण्ड शरीर में पवित्र और निःस्वार्थ रोष का संचार हुआ। उसकी अपनी बात तो अलग उसके स्वामी ऐसी दशा में! कैसी बात है? शीघ्रता से पांव उठाता हुआ वह महाराज के निकट गया।

जयसिंहदेव मुरार के साथ बातें करते हुए हँस रहे थे।

'मालवी सैनिक को एक ब्राह्मण ने बांधा—और ब्राह्मण रानी के

आवास में चला गया। राजा को बहुत ही हँसी आ रही थी मानो कुछ समझ ही में न आ रहा हो।

'किन्तु ब्राह्मण···हा—हा—मगर यह तो नितान्त गप्प है।' जगदेव का मुख हँसी से लाल हो गया। 'और रानी···लीला···बुद्धिमान रानी···' 'हा—हा···ब्राह्मण ! गप्प···नितान्त गप्प।'

'अन्नदाता !' मानभंग और रोष के कारण फूले हुए मुख से जगदेव बोला। उसकी वाणी रोते हुए बच्चे की-सी थी, 'गप्प नहीं सच्ची बात है।'

'क्या सच्ची बात है ?' राजा ने बड़ी कठिनता से हँसी रोककर कहा, 'एक ब्राह्मण तेरे सैनिक को बांधकर अन्दर चला गया। हा-हा परमार ?' कृत्रिम गम्भीरता से राजा बोला 'महल की देख-भाल करता है तू ? वह ब्राह्मण गया कहाँ ?'

'महाराज ! मैं उसी को खोज रहा हूं किन्तु मिलता ही नहीं।'

'अररर !' महाराज हँसी न रोक सके।

'परमार ! यह···क्या···हा···हा···होने लगा है ?'

'अन्नदाता ! आप हँसते हैं और मेरे प्राण सूखते हैं।'

'और यदि मैं न हँसूं तो तू जीवित रहेगा ? रे जगदेव यह चुप हुआ तेरे प्राण क्यों सूख रहे हैं—कह डाल।' कहकर राजा पुनः हँसा।

'देव ! देव ! आप हँसते हैं—उधर आपकी रक्षा का आज सत्यानाश हो गया।'

'हाय, हाय राम !' सहानुभूति दिखाते हुए राजा ने कहा।

'सुनिए अन्नदाता ! एक ब्राह्मण ने हमारे एक नामी सैनिक को बांधा'

'यह तो जानता हूं।'

'फिर वह रानी के कमरे में अन्तर्धान हो गया।'

'यह भी जानता हूं।'

'और रानी से जब मैं पूछने गया तो, महाराज ! मुझे दुत्कारकर निकाल दिया।'

'अरे ! मेरे वीर परमार को ? मैं रानी से समझ लूँगा।'

'किन्तु देव ! और सुनिए। वस्ता ने मेरी आज्ञा के बिना काक भटराज के लिए कमरा खोल दिया...।'

'वस्ता है ही ऐसा।'

'मैंने वस्ता को बन्दी बना लिया...।'

'अच्छा किया।'

'और मैंने भटराज के लिए नीचे कमरे खुलवा दिए तो उन्होंने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया।'

'यह काक भी बहुत हैंकड़ीबाज है।' राजा ने फिर हँस कर कहा।

'और देव ! मुझे मुंजाल मेहता ने बुलवाया।'

क्यों ?' राजा ने गम्भीर होकर पूछा।

'मेरा सबके सामने अपमान किया है।'

'क्यों ?'

'मुझसे कहा है कि 'घड़ी-भर में वस्ता को ले आ, नहीं तो अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र शोभ मेहता को सौंप दे।'

'क्या कहता है ?'

'देव ? इसमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं जाती, आपकी जाती है। आपकी सत्ता भंग करने की यह युक्ति है।'

'परमार ! मैं रानी और काक दोनों को समझा लूंगा, किन्तु वस्ता को छोड़ दे।'

'किन्तु महाराज...।'

राजा ने धीरे से कहा, 'परमार ! शस्त्र और आज्ञा-पत्र अच्छे नहीं लगते क्या ?'

जगदेव ने घबराकर राजा के सामने देखा। राजा ने जो कुछ कहा

वह स्पष्ट न सुन सका ऐसा कुछ लगा ।

'देव !' एक शब्द में ही मानो मार्मिक चीत्कार निहित थी ।

'जगदेव ! मेरी मान और वस्ता को छोड़ दे ।'

परमार निराश हो गया । उसने रूठे बच्चे-सा मुंह बनाकर कहा, 'देव ! आपकी बात आप जानें । मैं तो यही करूँगा ।'

'जगदेव ! देख, उसके स्थान पर मैं तुझे कल अधिक सत्ता दूँगा । और अब काक भी आ गया है अतः तुझे अधिक सत्ता की आवश्यकता पड़ेगी ही, नहीं तो उसे वश में रखना दूभर होगा ।'

'लगता तो ऐसा ही है ।'

'जगदेव ! अपनी अश्वशाला में से अच्छे-से-अच्छे दो घोड़े काक के लिए तैयार रखना और अपने आदमियों से कह देना कि उसके आने-जाने में बाधा न दें ।'

'जो आज्ञा ।'

'और कल प्रातःकाल हम चलकर चुपचाप शिविर की दशा देखने चलेंगे ।'

'जो आज्ञा ।'

'परमार ! बिल्कुल घबराना मत । मेरी सत्ता को कोई छू भी नहीं सकता ।'

जगदेव ने झुककर प्रणाम किया और विदा हुआ ।

'मुरार !' राजा पुनः हँस पड़ा, 'रानी को सूचना दे आ कि आज मैं उनके आवास ही में भोजन करूँगा और सोऊँगा ।'

'जो आज्ञा ।'

४६

प्रेमकुंअर नागर मंत्री शोभ की पत्नी थी । वह लम्बी, गोरी और तनिक स्थूल थी । उसकी आंखें विशाल और भावपूर्ण थीं, उसके होंठ कुछ मोटे और विलास की ओर झुकाव प्रदर्शित करते थे । उसके गालों

पर यौवन की लाली थी, उसके नन्हें कपाल पर बड़ी-सी चंदनरेखा शोभा दे रही थी, और उसके होठों से पान की लालिमा कभी अदृष्ट न होती थी। उसके शरीर की रेखाएं भरी हुई थीं—ऐसा लगता था मानों रति का वह मूर्तरूप हो।

पाटण के प्रथम नागरकुल के रत्न की पटरानी को शोभा दें वैसे उनके हाव-भाव थे। वह विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करती और शृंगार करती थी। वह धनाढ्य, आनंदमय और गर्विष्ठ कुल को शोभा देने वाले ठाट-बाट से रहती थी। रानियों से भी उसकी वेशभूषा अधिक आकर्षक लगती थी और उसके आभूषणों की चमक के सामने महाराज का शृंगार भी फीका पड़ जाता था।

यौवन का उल्लास उसे सदा आकर्षित करता था। वह चलती तो उसका शरीर झूमता, उसकी कमर लचकती और उसके पांव थिरक उठते—तब ऐसा लगता मानो धरती कांप रही हो। उसकी आंखें दो क्षण के लिए भी एक-सी न रहतीं वरन् नए-नए भावों से दीप्त होती रहती थीं। कोई भी उस पद पर दृष्टि डालता कि 'नखराली' स्त्रियों का प्रथम लक्षण तुरंत दिखाई पड़ जाता; उसका घूंघट कहां-से-कहां खिसक जाता था और दर्शक को ऐसा लगे मानो लज्जा से उसे ठीक करने के लिए रुक गई हो, वह ऐसा प्रयत्न करती थी।

बाहर के संसार को वह कुछ गिनती ही नहीं थी। उसके अन्तर में पहले वह स्वयं थी फिर उसके राग-रंग थे, फिर वस्त्राभूषण थे, और फिर उसका 'मेहता' अर्थात् शोभ मंत्री था। अपने को मध्यबिन्दु मान कर अपने से अपने मेहता तक त्रिज्या खींचकर जो वृत्ताकार बनाती उसमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल—यह सब और वह सब—सभी समा जाते।

आज प्रेमकुंवर क्रोध में थी। मीनलदेवी ने उस पर लीलादेवी आदि रानियों को क्रीड़ाप्रिय बनाकर बिगाड़ देने का आरोप लगाया था। अब इसमें उसका क्या अपराध? रानियां उसके जैसी रसिक न हों

या उसके मेहता जैसा स्नेही पति उन्हें न मिला हो, तो उसमें इन बेचारी का क्या दोष ? और फिर बिना दोष के इन पर आक्षेप । मीनलदेवी में, इस उमर में तो अधिक बुद्धिमानी होनी चाहिए । उन्होंने तरुणावस्था में क्या-क्या किया होगा ! अब इतने वर्षों पश्चात् उन्हें भी कहने की सूझी । लोग यौवनावस्था में आनन्द न करें तो क्या पति और संसार को छोड़ने के बाद करें ।

वह लीलादेवी का कमरा सजा रही थी । समर्थ उसकी सहायता कर रही थी । समर्थ उसे अच्छी नहीं लगती थी । वह उसे बहुत बातूनी समझती थी । क्योंकि वह उसे दिन-भर उससे संसार की बातें पूछती थी । इतनी बड़ी होकर जो बिना वर के इधर-उधर भटकती फिरे उसे और क्या कहा जाय !

मीनलदेवी से बदला लेने का एक मार्ग ही उसे सूझ पड़ा । यदि सभी रानियों को वह क्रीड़ाप्रिय बना दे तो मीनलदेवी की खीझ का पार न रहेगा और अपने बुढ़ापे में सभी को वृद्ध बनाने की इच्छा रखने वाली से बदला पूरा-पूरा ले लिया जायगा । इस युक्ति का प्रयोग उसने लीलादेवी पर ही करने की सोची क्योंकि वह बहुत शर्मीली, उदासीन और गम्भीर थी ।

'इनको ऐसा बनाऊँ कि कोई क्या कहे,' प्रेमकुँअर बड़बड़ाई और अधिक उत्साह से उसने कमरा सजाना प्रारम्भ किया ।

'यह समर्थ न जाने किस घड़ी से जन्मी है । हर क्षण कटकट, कटकट ही किया करती है,' वह बड़बड़ाई ।

किन्तु जब समर्थ को बोलने की इच्छा होती थी तो सुनने वाले की वह चिन्ता न करती थी ।

'प्रेमा भाभी ! आज ऐसा मजा आया ! रानी देवी चकरा गईं ।' धीमे से उसने कहा, 'ऐसी चकराईं—ऐसी—' कहकर समर्थ हँसने लगी ।

'किस प्रकार ?' बिना ध्यान दिए प्रेमकुँअर ने पूछा ।

'आज उनके कमरे से एक व्यक्ति निकला ।'

'हैं ! प्रेमकुंअर ने एकदम ध्यान देकर आश्चर्य से पूछा ।

'अन्दर के कमरे में घुस गया था ।

'फिर ?'

'मैंने उसे दूसरे रास्ते से जाने दिया,' समर्थ हंसने लगी, 'ऐसा मजा·······।'

हिंडोले पर फूल टांगते हुए प्रेमकुंअर ने पूछा—'कैसा ?'

'अरे ऐसा·····।'

प्रेमकुंअर फूल टांगना छोड़कर समर्थ के निकट गई ।

'कैसा ?'

'देवी आईं, किन्तु वह कैसे मिलता ? ऐसी घबराईं कि अंग्रानी हो गईं ।'

'तूने कैसे जाना ?'

'मैं लौटकर फिर आई न ?'

'हाँ !' प्रेमकुंअर ने कहा और मन ही मन बोली, 'अब समझी कि देवी ऐसी उदास-उदास क्यों रहती है ।' फिर जोर से बोली, 'कौन था वह ?'

'था कोई पुजारी ब्राह्मण ।'

'धत्तेरे की । मर यहाँ से ।' धारणा सच न निकलने से प्रेमकुंअर ने कहा ।

'देखो, प्रेमा भाभी ! मैं आपको मरने के लिए कहूंगी तो कैसा लगेगा ? मुझे तो कह देती हो ।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ बोली—'और मैं आपको, आपके सभी को······।'

इतने में एक अपरिचित व्यक्ति आया । 'महारानी देवी के पास समय है ?'

'क्यों ?' प्रेमकुंअर ने पूछा ।

'काक भटराज भेंट करना चाहते हैं ।'

'का—क !' समर्थ चीत्कार कर उठी।

'क्या बात है समर्थ !' प्रेमकुंअर कठोरता से बोली, 'बोलना आता है या नहीं ?' और फिर खेमा की ओर घूमकर कहा, 'ठहरो भाई मैं पूछ देखती हूं।' यह कहकर प्रेमकुंअर अन्दर गई।

कक्ष में जाकर प्रेमकुंअर ने कहा, 'देवी ! भट्टराज काक कहते हैं कि आपके पास समय हो तो वह भेंट करने आवें।'

सुनकर रानी तनिक मुस्कराई। उस मुस्कराहट को प्रेमकुंअर ने हृदय में जमा लिया। 'हां, कह दे कि मुझे अवकाश है। प्रेमू ! तू अभी कल ही टांग रही है ? तू न होती तो मेरा क्या होता ?' रानी ने कहा।

'देवी ! यह क्या कहती हैं ?' उमड़ती हुई लज्जा को न रोक पा रही हो इस प्रकार मुंह नीचा करके मुस्कराते हुए, अंग लचकाते हुए प्रेमकुंअर ने सोचा। 'आज इसका मन कुछ आनन्दित है,' इस प्रकार मन-ही-मन बड़बड़ाती हुई प्रेमकुंअर लौट गई और जाकर खेमा को संदेशा दिया।

'अच्छा हुआ यह पापी यहीं आया।'

'कैसा पापी ?' प्रेमकुंअर ने ध्यान किए बिना ही पूछा।

'यही काक !'

'उसने तेरा क्या बिगाड़ा है पगली ?'

'उसने नहीं बिगाड़ा तो फिर किसने बिगाड़ा ?' मुंह बनाकर समर्थ ने पूछा।

प्रेमकुंअर ने सिर हिलाया और मन-ही-मन प्रमाण-पत्र दिया, 'बिल्कुल बुद्धू है।'

थोड़ी देर तक दोनों काम में लगी रहीं और प्रेमकुंअर के हस्त-कौशल के प्रताप से समर्थ के वेश में आमूल परिवर्तन हो गया।

कुछ देर पश्चात् किसी की पदचाप सुनाई पड़ी दोनों चौंकी। द्वार पर एक भव्य और कान्तिमान व्यक्ति खड़ा हुआ था। प्रेमकुंअर के सिर से आंचल खिसक गया। उसे उलटा ओढ़कर उसने सिर नीचा

किया। उसने नीचे देखकर आंखें ऊँची कीं। उसकी देह-लता डोल रही थी किन्तु उसके मुख पर घबराहट के चिन्ह थे। इसमें प्रेम का कोई दोष नहीं था। जिस प्रकार कोयल अपने आपको सर्वोपरि प्रमाणित करने के लिए कुहक उठती है उसी प्रकार यह इस विलासी युवती के व्यवहार का एक ढंग था। इसे देखकर सबका ध्यान उधर जाता और शोभ मेहता की मोहक नारी के चरणों पर हृदयों का ढेर लग जाता। नवागन्तुक थोड़ा सा मुस्कराया। इस व्यवहार से वह स्तब्ध हो गया हो ऐसा कोई चिन्ह प्रकट नहीं हुआ।

समर्थ से न रहा गया। वह एकदम कूदकर प्रेमू के पास गई। 'देवी के कमरे में प्रातःकाल जो ब्राह्मण था यह वही है,' वह धीरे-से बोली। प्रेमू ने उसे ध्यान से देखा, समर्थ का हाथ दबाया और उसका स्वागत किया, 'पधारिये भटराज!' मीठे, धीमे, भावसूचक और लजीले स्वर में नीचे देखती हुई नागर कन्या बोली।

'देवी हैं?' नवागन्तुक ने मधुरता से पूछा परन्तु उसकी तीक्ष्ण दृष्टि कमरे के चारों ओर घूम गई।

'अभी बुला लाती हूं।' कहकर आँचल ठीक करती, नीचे देखती और शरीर को लहराती हुई प्रेमू अन्दर गई। जाते-जाते वह बड़बड़ाई, 'काक भटराज रानी के कमरे में? धत्तेरे की लीलारानी! तू भी विलक्षण है! कैसी तेरी प्रकृति और कैसा है तेरा ढोंग! अरे तेरे की? और खोज भी कैसे निकाला? मेरे फूल आज क्यों सुहाए यह अब समझ में आया।

वह अन्दर गई इतने में समर्थ भागी आई। 'क्यों काक भटराज! पहचानते हो?'

'आहो! आप भी यहीं हैं?' काक ने हँसकर कहा।

'मुझे आपसे लड़ना है।'

'अरर, नहीं भाई मुझे नहीं लड़ना है। मैं हार मानने के लिए तैयार हूं।'

'हँसी की बात नहीं है।' समर्थ ने कहा।

'समर्थ!' पीछे से रानी का कठोर स्वर आया, 'तू और प्रेमू बाहर जाओ।'

पीछे आती प्रेमू मन में बोली, 'अरी माँ! आज कैसी खिल रही हैं! वह नीचे देखती हुई आगे आई, काक के सामने गई, मुँह तनिक नीचा किए ऊपर देखकर काक पर एक दृष्टि डाली और चली गई। समर्थ क्रोध से मुँह चढ़ाकर चली गई। काक उस समय रानी को प्रणाम कर रहा था।

'समर्थ! मंगी को भेजना।' रानी ने कहा।

'अच्छा देवी।'

५०

जब वह दोनों चली गईं तो रानी हिंडोले पर बैठ गईं और काक सामने भूमि पर बैठ गया।

'काक! तुझे कुछ हुआ तो नहीं?'

'कुछ भी नहीं महाराज की मुझ पर अत्यन्त कृपा है।'

'अब समझ में आया।'

'क्या?'

'मुंजाल मेहता कहते हैं कि मैं तुझे अच्छी तरह नहीं पहचानती। तुझे कुछ नहीं हो सकता।'

'मेहता जी की मुझ पर विचित्र कृपा है। आप क्या मेरे लिए गई थीं?'

'हाँ, तुझे उस कमरे में न देखकर घबरा गई थी।'

'देवी! आप मेरे लिए बहुत चिन्ता मत किया कीजिए।'

रानी भ्रांति से देखने लगी । विषय पलटा, 'काक ! नेवापाल कैसा है ?'

'जैसा था वैसा ही है । अब भी लाट को स्वतंत्र करने की आकांक्षा उसने त्यागी नहीं है; और हम दोनों पर उसका क्रोध भी विद्यमान है अब जो हो सो ठीक ।'

'क्यों ?'

'मुझे उस उदा के लड़के पर तनिक भी विश्वास नहीं है ।'

'तुझे तो किसी पर विश्वास नहीं होता ।'

'जैसे मंजरी ।'

'जैसे आप ।'

रानी मुस्कराई—'बोल, फिर यहाँ का क्या ?'

'यहाँ ? धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा । प्रथम बार सफल हो गया है । महाराज मार्ग पर आ गए हैं ।'

'देख, भूल मत करना । उनको समझने में जन्म-पर-जन्म व्यतीत हो जायेंगे ।' शांत तिरस्कार से रानी ने कहा ।

'देवी ! यदि आप सहायता करेंगी तो वह बहुत शीघ्र रास्ते आ लगेंगे ।'

'मैं किस लिए सहायता करूँ ?' कुढ़कर रानी ने पूछा ।

'किसलिए ?' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से रानी की ओर देखा, देखिए 'स्पष्टवक्ता सुखी भवेत' यह सूत्र भुलाने जैसा नहीं है । मैंने आपको यहाँ ब्याहा और पटरानी-पद की आशा दिलवाई । इस समय आपका वह पद संकट में है । आपको भी ऐसा ही लगा तभी तो मुझे बुलाया । अब हमें स्पष्ट बातें कर ही लेनी चाहिए ।'

'तो करो न ! मैंने कब ना कहा ?' ऊबकर रानी ने हिंडोले को धक्का दिया ।

'बुरा तो नहीं मानिएगा ?'

'तेरा कहा बुरा लगने पर भी सुन लूँगी ।'

दो सेनापतियों के समान मन्त्रणा कर रहे हैं। हमें गढ़ जीतना है। आप अपने शस्त्रों का प्रयोग कीजिए, मैं अपने शस्त्रों का प्रयोग करता हूं। कहिए, इस प्रकार बात करूँ तो अच्छा लगेगा ?'

'चलेगा !'

'तो, आप ऐसा कुछ करिए कि जयसिंहदेव महाराज आप पर आसक्त हो जायें, तभी गढ़ गिरेगा।'

'राणकदेवी के समान खुले केश रख कर, सिन्दुर लगाकर फिरूँ ?'

'अवसर पड़ने पर यह भी करना पड़ सकता है।'

'और क्या-क्या करना पड़ सकता है ?' तिरस्कार रानी ने कहा।

'पहली बात तो यह है कि वह महत्वाकांक्षी हैं।'

'इससे क्या ?'

'उनको ऐसी पटरानी चाहिए जिसे सभी पूजें। ऐसा मार्ग पकड़िए कि सभी आपको पूजने लगें।'

रानी एकाग्र होकर देखने लगी। ऐसा लग रहा था मानो काक उत्साह से, विनय से स्नेह करता हो। पल-भर के लिए उसने काक के तेजस्वी मुख की ओर देखा।

'किस प्रकार ?'

'गुरुदेव ने आपको शस्त्र-विद्या सिखाई थी; प्रभु ने आपको चतुराई दी है; कुछ ऐसा करिए कि आपकी कीर्ति महाराज को मुग्ध कर दे।'

'तो क्या युद्ध में जाऊँ ?'

'ऐसा भी समय आ सकता। दूसरी बात—महाराज भावुक हैं।' काक ने कहा।

'अच्छा ?' तिरस्कारपूर्वक रानी बोली।

'आप क्या नहीं जानतीं ? और फिर भी आप उनके प्रति स्नेह नहीं प्रकट करतीं। आप बहुत ही तटस्थ, शांत और भावहीन हो गई हैं।'

'तू स्त्री होता तो ननद अच्छी बनता।'

'अपनी रानी के लिए वह बनना भी मुझे स्वीकार है।' काक ने मुस्कराकर कहा। 'देवी! चाहे जैसा आदमी हो स्त्री के प्यार से संतोष प्राप्त नहीं कर सकता। थका-मांदा व्यक्ति जिस प्रकार रेवा की तरंगों में कूदकर नवजीवन प्राप्त करता है उसी प्रकार पुरुष को स्त्री के प्यार स्नेह और छोटे-बड़े विलासों में स्नान करके सजीव होने की आवश्यकता पड़ती है। और महाराज का हृदय इतना उत्साही है कि महाराज को प्यार, स्नेह और विलास की विशाल तरंगों की आवश्यकता होती है।'

'मालूम होता है तू पुरुषों का हृदय बहुत पहचानता है।'

'हाँ! बचपन से उसे परखने का धन्धा ही जो ले बैठा हूं। देवी! प्रत्येक बात के प्रति तिरस्कार रखने से क्या लाभ? यदि पाटण की पटरानी बनना है तो पाटण के स्वामी का अन्तर परखकर उसे बन्दी बनाना ही होगा। आप भी तो मनुष्य-हृदय को परखती हैं। आप चाहें तो उन्हें नचा सकती हैं। नहीं तो आज देवड़ी गई तो कल कोई दूसरी आ जायेगी।'

'तू चाहता है लाट की कुंअरी दासी बनकर रहे?'

'देवी! सर्वांगपूर्ण स्त्री को प्यार प्रकट करने में तो कोई लज्जा नहीं होनी चाहिए। पार्वती जी स्वयं क्या प्यार करती थीं?'

'अच्छा माना। एक—अपनी कीर्ति से उन्हें मुग्ध करूं—अपने अन्तर के भावों से उन्हें भिगोए रखूँ—और कुछ है या बस इतना ही?'

'नहीं अभी और है।'

'क्या?'

'महाराज का स्वभाव बहुत चंचल है। उन्हें दृढ़ता की आवश्यकता है। अपनी निश्चलता पर उनकी रचना होने दीजिए।'

'यह किस प्रकार?' रानी को भी रस आने लगा।

'वह जो चाहे करें किन्तु उनकी कीर्ति और उनकी सत्ता आप ही के कारण है ऐसी श्रद्धा उनमें होनी चाहिए।'

'उनकी कीर्ति और सत्ता की रक्षक बनकर।'

'यह किस प्रकार ?'

'चलो, यह तीसरी बात भी सही। और कोई पाठ है ?'

'अभी इतना ही पर्याप्त है' मुस्कराकर काक ने कहा।

'अब करूं क्या ?' रानी ने बात पलटी।

'प्रथम आपकी कीर्ति। आप शस्त्र तैयार रखिए। कुछ दिनों में ऐसा धड़ाका करूंगा कि सम्पूर्ण गुजरात गूंज उठेगा। कभी-कभी चुप-चाप घोड़े पर बैठकर सेना में क्या हो रहा है यह भी देख आया करिए। लाट में थीं तब तो न जाने कितने कोस की दौड़-धूप करती थीं।'

'काक ! वह दिन गए।' रानी ने निःश्वास लिया।

'दूसरा प्रयोग तो अब आप ही के हाथ में है।' काक ने मुस्कराकर कहा, स्त्री चरित्र का मुझे अधिक अनुभव नहीं है।'

'ऐसा ?' रानी ने हंसकर पूछा, 'तेरी बात से तो ऐसा बिल्कुल नहीं लगता।'

'और तीसरी बात के लिए तो यही कि महाराज अपने आपको देवता समझना चाहते हैं। इसी कारण जगदेव जैसे विदेशी को यहां रख छोड़ा है। आप उनको दिखा दीजिए कि वह जब आपके पास जाते हैं तो बिना प्रयत्न के ही देवता बन जाते हैं।'

'मेरे पास देवता बनाने का मन्त्र नहीं है।'

'है। आप ठाट-बाट इतना बढ़ा दीजिए, अनुचरों की संख्या इतनी बढ़ा दीजिए और ऐसा व्यवहार करने लगिए कि आपके निकट आने वाले लोगों को देवमन्दिर का भान हो आए। इस मन्दिर के देवता बनने के लिए राजाधिराज स्वयं दौड़ते आवेंगे। कुछ दिन ध्यान न भी दें तो घबराना मत, एक दिन अपने आप खिंचे चले आयेंगे। अब तक मुझे ऐसा मनुष्य न मिला जो देवता माने जाने पर प्रसन्न न हो।'

'मुझे एक मिला है।'

'आपको कुछ भ्रम हो गया है। उसका भी एक छोटा-सा मन्दिर है जहाँ वह देवता समझा जाता है।' काक मुस्कराया। पल-भर के लिए

उसका मन भृगुकच्छ के सामन्त बृहस्पति के बाड़े में जा लगा।

पुरुष स्त्री को धन और बाहर सुखी करता है।' उसको यौवन और प्यार देता है, पूजन-अर्चन करता है, क्यों? मात्र देवता बनने के लिए। इस दुःखी संसार में उसे केवल उसी में मुक्ति की राह दिखाई पड़ती है।'

'काक! बहुत हो चुकी तेरी विद्वता।' रानी ने कहा और शांति से सूखे हुए होठों को गीला किया। 'तुझे पूजूं या धिक्कारूं यह मुझे नहीं सूझता!'

'मुझे तो आपकी सेवा ही करनी है।' काक ने उत्तर दिया।

'ऐसे बोलेगा तो जीभ खींच लूंगी। बोल, अब महाराज को देवता बनाकर उनकी स्थापना कैसे करूं?'

'जब वह यहां आयें तो अपनी सेवा में प्रस्तुत रहने के लिए कुछ सैनिक मांग लेना।'

'फिर?'

'और ऐसा कुछ करिए कि बड़े-बड़े योद्धा यहां आयें।'

'क्या रस्सी बांध कर खींच लाऊं।

'आप प्रयत्न तो कीजिए। बिना रस्सी सभी खिंचे चले आयेंगे। परशुराम को बुलाइए। आप वीरांगना हैं। आपकी वीरता से वह प्रसन्न होगा। वह आया कि सब आये।'

'मुझ पर इतना विश्वास करते हो?'

'देवी! देवी! महाराज पधार रहे हैं।' सखी हांफती-हांफती आई। उसके पीछे प्रेमकुंअर और समर्थ के घबराए हुए मुख दिखाई दे रहे थे। तुरन्त ही, उनके पीछे जयसिंहदेव महाराज आए।

रानी चमककर हिंडोले पर से उतर पड़ी। काक उठा और झुककर खड़ा हो गया।

५१

राजा अपनी आयु से छोटे लगते थे। उनका सुन्दर मुख इस समय आकर्षक दिखाई पड़ रहा था, और उस पर सदा छाई रहने वाली सत्ता की छाप ने इस समय मोहक गौरव का स्वरूप ले लिया था। उनका मुख ऐसा लग रहा था मानो अभी हंसी फूट पड़ेगी। रानी को काक से इस प्रकार बैठकर बातें करते देखकर उन्हें हंसी आई किन्तु उन्होंने उसे रोककर अपने कपाल को आकुंचित किया।

'रानी ! कहो, क्या कर रही हो ?' कुछ हंसते हुए स्वर को कठोर बनाकर उन्होंने पूछा, 'क्यों काक, तू यहाँ कैसे ?'

'देवी से भेंट करने आया था।' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से राजा की मुखमुद्रा की परीक्षा करते हुए कहा।

'रानी ! आज एक विचित्र बात मेरे कानों में आई है' कहकर राजा हिंडोले पर बैठा और हाथ खींचकर रानी को भी बिठा लिया। उसने चारों ओर देखा और रानी के कमरे की सजावट देखकर कहा, 'तुम बहुत रसिक लगती हो।'

'अच्छा !' शांति और स्पष्ट से तिरस्कार से रानी ने कहा। किन्तु कहते समय उसकी दृष्टि काक पर जा पड़ी। काक की आँख में घुड़क थी। इतना कहने पर भी रानी कुछ नहीं करती ? लीलादेवी के हृदय में काक की प्रेरणा का प्रभाव हुआ, 'मैं तो प्रतिदिन शृंगार करती हूं किन्तु महाराज को देखने का अवकाश कहां ?'

राजा हंस पड़े। काक ने आंखों-ही-आंखों उपकार माना।

'आज तो मैं एक बात की खोज करने आया।' राजा ने फिर गांभीर्य का स्वांग रचा।

'कौन सी ?'

'प्रातःकाल एक ब्राह्मण महल में घुसकर तुम्हारे कमरे में आया, और अब तक नहीं मिला।'

रानी तनिक चमकी। काक बिना कुछ कहे हँस पड़ा।

उस जगदेव ने कहा होगा ?' उसने पूछा।

'कैसे जाना ?' राजा ने कुछ भवें तानकर पूछा।

'क्योंकि वह ब्राह्मण तो मैं ही था।' रानी यह धृष्टता देखकर फीकी पड़ गई। काक आगे बढ़ा, मुझे आपसे भेंट करनी थी इसीलिए ब्राह्मण का वेश बनाकर प्रहरी को बांधकर मैं घुसा था; मेरे मन में यही था कि ऐसे वेश में आपसे न मिलूँ, इसलिए मैंने मंगी से वस्त्र मंगवाए। इतने में देवी को मालूम हो गया और उन्होंने मुझे बुला लिया इतने में परमार भी दौड़ते-दौड़ते आ ही गए। मंगी ने मुझे उस कमरे में छिपाया वहां सौभाग्य से दंडनायक की पुत्री भी आ गयी। उसने मुझे दूसरे मार्ग से निकाल दिया और मैंने आप से आकर भेंट की।'

'ऐसा हुआ ?' राजा ने कहा, 'परन्तु असली बात क्या है ? तूने और रानी ने दोनों ने मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचना प्रारम्भ किया क्या ?'

'हां ! देवी अभी-अभी मेरे साथ षड्यंत्र रच रही थीं, काक ने कहा। 'देवी आज्ञा दें तो कहूं ?'

'क्या ?'

'है आज्ञा ?' काक ने हँसकर पूछा।

रानी समझी नहीं किन्तु उसने तनिक मुस्कराकर स्वीकृति दे दी।

देवी रा' खेंगार के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थीं और सब सेना के विषय में पूछ रही थीं।'

रानी ने काक के सामने एक क्रोध-भरी दृष्टि डाली। वह उसे अपनी युक्ति का प्रयोग करने का साधन बना रहा था। किन्तु वह विरोध भी नहीं कर सकी।

'महाराज ! मैं, सच जानिए इस घेरे से थक गई हूं। जैसे भी हो मैं इसका अन्त करना चाहती हूं।'

'तो हम सब क्या मर गए हैं ?'

नहीं । किन्तु कितने ही वर्षों तक मैंने युद्ध में भाग लिया है, और कितने ही रण-क्षेत्रों को पार किया है। कितनी ही बार तो इस काक को भी छकाया है। मेरे प्राण अब इस आलस्य के जीवन से उकता गए हैं।'

'क्या करोगी ?'

'जो आपकी पटरानी को शोभा दे वही।' तनिक अस्पष्ट तिरस्कार से, काक उनसे क्या कहलवाना चाहता था उसकी कल्पना करके वह कहने लगी। राजा नगर का यह अप्रत्याशित प्रदर्शन देखने लगा।

'यह कोई लाट का छोटा-मोटा युद्ध नहीं है।'

'देव ! लाट के युद्ध में जो हुआ उसकी गाथा गाने वाला कोई नहीं अतः वह सब विस्मृत हो गया है।' काक ने कहा।

'काक जहां जाता है वहां महाभारत हो जाता है।' राजा ने मुस्करा कर कहा।

'नहीं महाराज ! जहां वीर भिड़ते हैं वहीं महाभारत होता है।' रानी ने कहा।

'रानी ! आज मैं भोजन यहीं करूँगा।'

'जो आज्ञा, मंगी !' रानी ने कहा, 'महाराज आज भोजन यहीं करेंगे।'

'देव ! मुझे आज्ञा हो। अभी दण्डनायक से भेंट करनी है।'

'देखती हो एक स्थान पर टिककर यह कभी बैठता ही नहीं।'

काक मुस्कराया, 'जूनागढ़ पराजित हो और आप भृगुकच्छ के सोमनाथ का कलश चढ़ाने पधारें तब।'

'न्योता देने की रीति देखी ? अच्छा भाई जा प्रातःकाल मिलना।' राजा ने कहा। काक विदा हुआ।

काक बाहर गया और थोड़ा ही आगे गया होगा कि एक द्वार में से किसी ने सम्बोधित किया---'भटराज !'

काक ने घूमकर देखा, अरे 'कौन, प्रातःकाल वाली बहन ?'

'हाँ ।' समर्थ ने आँखें निकालकर कहा, 'तू सम्पूर्ण संसार में बुरा-से-बुरा आदमी है ।'

'काक मुस्कराया, 'क्यों, क्या इतनी जल्दी परख लिया ?'

'तूने मेरा बना बनाया खेल बिगाड़ दिया ।' उंगली से काक को धमकाते हुए समर्थ ने कहा ।

'मैंने क्या बिगाड़ा ।'

'तुम पकड़े क्यों नहीं गए ?

'मैं क्यों नहीं पकड़ा गया ?' काक को लगा कि यह लड़की पागल है ।

'हां, तुम पकड़े जाते तो बाहड़ मेहता को मुंह-मांगा प्राप्त होता और वह मुझसे ब्याह कर लेते ।

'और मैं नहीं पकड़ा गया तो...।' कुछ-कुछ समझते हुए काक बोला ।

'अब मेरे पिताजी उसके साथ मेरा ब्याह नहीं करेंगे ।'

'क्यों ?'

'उसका दादा मारवाड़ी था इसलिए ।' होंठ-पर होंठ रखकर समर्थ ने कहा ।

'मैं क्या कर सकता हूं ?'

'तुम अब भी पकड़े जाओ ।'

'अरे वाह रे चतुर ! तुम भी भारी हो गईं !'

'तू बहुत बुरा है,' समर्थ ने रूठकर कहा, 'तेरा कभी भला नहीं होगा ।'

काक हँसकर चला गया ।

५२

दिन निकलने से पहले राजा और जगदेव गढ़ के नीचे उतरे। गढ़ में सभी कुछ शांत था। जगदेव ने जहाँ घोड़े तैयार खड़े करवाए थे, वहाँ गये। परन्तु घोड़े पर बैठे उससे पहले ही साईस ने जगदेव के कान में कुछ कहा; रकाब में पैर रख देने पर भी जगदेव चमककर खड़ा हो गया।

'हैं! सच?'

'हाँ।'

'क्या है जगदेव?' राजा ने पूछा।

'कुछ नहीं देव! आप तनिक रुकें तो मैं उधर हो आऊँ।

'बात क्या है?' तनिक कठोर होकर महाराज ने पूछा।

'अन्नदाता! अभी आया।'

'परमार! मैं सुनना चाहता हूं, क्या है?'

'देव! गढ़ के दो प्रहरी घायल होकर मरणासन्न पड़े हैं। मैं उन्हें देख आऊँ।'

'क्या कहता है, कैसे घायल हुए? मैं भी चलता हूं। साईस! यह घोड़ा तो पकड़।'

'जो आज्ञा।' साईस ने कहा, और महाराज घोड़े से उतरकर जगदेव के साथ गये।

थोड़ी ही दूर पर गढ़ के एक द्वार के सामने जगदेव ने चकमक से मशाल जलाई और भूमि पर देखा। दो प्रहरी एक-दूसरे से दूर निश्चेत पड़े हुए थे। महाराज और जगदेव ने ध्यान से देखा तो एक का हाथ कंधे से टूट गया था और दूसरे के कंधे पर गहरा घाव हो गया था।

रात्रि के अन्धकार में मशाल के अनिश्चित प्रकाश के कारण दो शववत् व्यक्तियों को देखकर दोनों को विस्मय हुआ। जगदेव का रंग उड़ गया था। महाराज ही पहले स्वस्थ हुए। 'यह किसने किया होगा?'

'कौन जाने !' अस्थिर स्वर में परमार बोला।

'क्या सोरठी यहाँ आ गए ?'

'नहीं देव ! गढ़ का ही कोई व्यक्ति होना चाहिए।' कहकर जगदेव ने दोनों पड़े हुए व्यक्तियों को देखकर दिशाओं के संकेतों की ओर राजा का ध्यान खींचा।

'ऊँ !' जिसका हाथ टूट गया था उस सैनिक के मुख से वाणी निकली।

'यह कौन हो सकता है ?' राजा ने गम्भीरता से पूछा। उनके हृदय में क्रोध का उदय हुआ। महल में अब तक ऐसा अत्याचार करने का किसी ने साहस नहीं किया था। उन्हें लगा मानो उनके गौरव की हत्या हो गई है। उनके नथुने क्रोध से फूल उठे।

जगदेव ने उस सैनिक के सिर पर हाथ फेरा। कुछ देर पश्चात् उस सैनिक ने आंखें खोलीं।

'कौन ? क्या हुआ ?'

'कौन बापू ! म—मर गया।'

'किसने मारा ?'

'काकभट······।' कहकर वह सैनिक पुनः अचेत हो गया।

जगदेव ने राजा की ओर देखा। उसका मुख लाल हो गया था। उनकी आंखों में रक्त उतर आया था। उनके कपाल पर रौद्र रस दिखाई पड़ता था। जगदेव प्रसन्न हुआ।

'अन्नदाता ! क्या किया जाय ?' कृत्रिम गम्भीरता से उसने पूछा।

'चल, घोड़े ले लें।'

जगदेव एक अक्षर भी नहीं बोला। क्रोध से फुंकारते हुए राजा और जगदेव घोड़ों तक गए और एक ही छलांग में उन पर बैठ गए। साईस को उन दोनों प्रहरियों की सेवा-टहल करने के लिए कहकर जगदेव भी अपने घोड़े पर बैठकर महाराज के पीछे-पीछे चला। राजा बिल्कुल नहीं बोले किन्तु अन्धकार में भी जगदेव उनका सीधा शरीर

और घोड़े को दौड़ाने की उत्सुकता देख कर उनके मन में उठते हुए विचारों की कल्पना कर सकता था।

जयसिंहदेव के क्रोध की सीमा नहीं थी। उनकी सत्ता और उनके गौरव का खण्डन चाहे ईश्वर ही क्यों न करे वे सहन नहीं कर सकते थे, तो यह था कौन? एक पराजित प्रांत का भटका हुआ सैनिक इस प्रकार करे? वर्षों पहले उसने उनका अपमान किया था। उसने रा' खेंगार को उनकी देवड़ी ले जाने में सहायता दी थी। लाट के गौरव की रक्षा करने के लिए उसने भटकती कुंवरी से उसका ब्याह करवा दिया था, आज प्रातःकाल छद्मवेष में उनकी आज्ञा भंग करके वह रानी से पहले मिला, जगदेव की, अर्थात् उनकी, सत्ता का विरोध कर मन चाहा किया, और अब एक डाकू के समान उसके गढ़ के प्रहरियों को घायल किया।

राजा के हृदय में होली-सी जलने लगी। उनका परम भट्टारक जयसिंहदेव सोलंकी का ऐसा अपमान! भले खेंगार जीते, भले पाटण का सत्यानाश हो, किन्तु यह अपमान कैसे सहन हो? उनका मन काक को शिक्षा देने के अनेक प्रकारों के विषय में सोच रहा था।

वह पट्टणी सेना की चौकी के सामने आ पहुंचे और धीमे-धीमे सेना की स्थिति को दृष्टि में उतारने लगे। एक टीले पर घोड़ों को विश्राम देने के लिए वे खड़े हो गए। थोड़ी दूर तक देखने पर वहां सभी चौकियाँ आगे-पीछे की हुई लगती थीं।

'यह क्या है?'

'दण्डनायक ने कोई नई आज्ञा दी लगती है।' जगदेव ने कहा।

'चलो देखें तो क्या है।' कहकर राजा ने घोड़ा बढ़ाया। थोड़ी दूर जाने पर दो घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। प्रकाश फैलने लगा था अतएव शीघ्र ही दो अश्वारोही दृष्टिगोचर हुए।

'कौन, परशुराम निकले हैं क्या?'

'नहीं देव! दण्डनायक इतने दुबले और लम्बे नहीं हैं।'

'हाँ ! अभी-अभी इधर से निकले हैं। चलो, पकड़ लेते हैं।'

किन्तु देव ! महल पर लौटने में विलम्ब हो जाएगा।'

'चिन्ता नहीं।' राजा ने कहा।

'महाराज ! कितने आदमी होंगे पता लगा ?'

'क्यों डर लगता है ?' राजा ने तिरस्कार से कहा।

'पाटण के स्वामी का ऐसा व्यर्थ का साहस शोभा नहीं देता। मुझे आज्ञा दीजिए मैं जाऊँ।' काक बोला।

'भाग जाना चाहता है ?' राजा ने व्यंग्य किया।

'महाराज !' काक ने कठोरता से कहा, 'काक भाग जाएगा उस दिन धरती रसातल को चली जाएगी।'

राजा ने उत्तर न देकर घोड़े को एड़ मारी। चारों व्यक्ति घोड़ों को दौड़ते हुए बढ़े। चौकियों के बीच के अरक्षित प्रदेश से होकर वह वेग से आगे बढ़े। पथ उजाड़ प्रदेश में था कि आगे जाने वालों के पद-चिन्हों से वे मार्ग ढूँढ़ ही लेते थे। बीच में पथ में चढ़ाई थी अतः वह रुके। टेकरी के नीचे एक छोटा किन्तु उजाड़ गाँव दिखाई पड़ रहा था। उसके आगे एक पगडण्डी जूनागढ़ की ओर जा रही थी। इस टेकरी के निकट एक और छोटा टीला था जिस पर पत्थर की दीवारों से बनी मंजिल की चौकी थी।

'देव ! उस वट के नीचे बैठे हुए वह आदमी ही घोड़ी के चोर होंगे।' जगदेव बोला।

'पन्द्रह के लगभग हैं।'

'तो क्या हुआ इन्हें ठिकाने लगाने में देर नहीं लगेगी।' जगदेव ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।

राजा ने काक पर दृष्टि डाली। वह मौन होकर सब खेल देखने में व्यस्त था। उसे छोड़ने को राजा का मन हुआ किन्तु क्रोध अभी पूर्ण शांत नहीं हुआ था और अभिमान पर लगा घाव अभी हरा ही था।

'अन्नदाता ?' कहकर खेमा ने जिस पथ से वह आए थे उस ओर

उंगली से संकेत किया। उधर से चालीस सोरठी अश्वारोही आ रहे थे।

'मरे !' राजा ने कहा और उनके मुख का रंग सफेद पड़ गया अब ?'

'देव ! चलिए भाग चलें।' जगदेव को भी स्थिति की गम्भीरता का भान हुआ।

'और कोई चारा भी क्या है ?' राजा ने कहा और जूनागढ़ की ओर जाने वाले पथ की ओर उन्होंने घोड़े का मुँह मोड़ा। जगदेव ने भी वैसा ही किया। चपलता से काक ने खेमा की ओर देखा। खेमा समझा कटार निकालकर एक झपाटे में काक के बंधन काट डाले। काक के हाथ स्वतन्त्र हो गये—उसका घोड़ा एकदम स्थिर खड़ा हो गया। सरपट भागते जगदेव के हाथ से लगाम छूट गयी। एक ही छलांग में काक का घोड़ा सबसे आगे निकल गया। नंगी तलवार को सामने कर यमराज के समान काक मुड़ा।

'महाराज ! इस पथ से न जाइए।'

जयसिंहदेव के मुँह का रंग उड़ गया। जगदेव ने तलवार की मुठ पर हाथ रखा। काक के अंगरक्षक खेमा ने जगदेव के तलवार निकालने से पहले ही उसके हाथ तोड़ डालने के लिए लकड़ी आधी ऊपर उठाली।

'परमार ! सावधान, तलवार निकाली तो तुम्हारे हाथ तोड़ देने पड़ेंगे।'

'चाँडाल ! द्रोही....।' क्रोध और साहस से ऊपर देखते हुए जयदेव बोले। उनके होंठ फड़के, उनकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उनका हाथ अनायास ही तलवार की मूठ पर गया।

'देव !' काक ने नम्रता से कहा, 'यह समय लम्बी बातें करने का नहीं है। आप एक दूसरी भूल भी करते आए हैं—देखिए !' काक ने सोरठी सैनिकों की ओर संकेत किया।

वह सब हथियार ऊँचे किये हर्षनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

'देखिए महाराज ! आपको उन लोगों ने पहचान लिया है। अपने

घोड़ की नालें तो देखिए—अंधेरी रात में भी पहचानी जा सकें ऐसी हैं। पाटण का सत्यानाश होने आया है।' कहकर काक ने राजा के घोड़े की सुनहरी नालों की ओर संकेत किया।

'परन्तु हरामखोर ! मुझे जाने से क्यों रोकता है ?'

'यह लोग आपको अभी पकड़ लेंगे। यह पथ एभल नायक की चौकी पर जाता है।'

'एभल नायक !' जयदेव ने घबराकर कहा।

'हाँ महाराज ! अब समझे ? आप मृत्यु के मुख में जा रहे थे।'

'तो क्या करें ?' जगदेव ने कहा।

'सुनिए, जैसा मैं कहूं वैसा करिए।' काक ने कहा।

उसकी आँखों में स्थिर तेज था उसकी भवों पर भयंकर शांति थी, उसके मुख पर अटल सत्ता थी। जगदेव मौन रहा। महाराज भी मौन रहकर उसकी शक्ति देखने लगे।

'वह चौकी देखिए ? आप उसमें घुस जाइए और चौकीदारों को ठिकाने लगाइए। आपकी कलंगी पहनकर मैं आपके घोड़े पर बैठता हूं। भ्रम में डालकर इन्हें मैं दूर ले जाता हूं। सौ सैनिक भी आ जायेंगे तो भी उस चौकी में रहकर आप लड़ सकेंगे और अवसर देखकर भाग भी सकेंगे।'

'परन्तु तुझे वह मार डालेंगे।'

'महाराज ! बातें करने का समय अब नहीं है।' सत्ता-भरी वाणी में काक ने कहा, 'पाटण से अधिक काक का मूल्य नहीं। चलिए।' वह महाराज का घोड़ा पकड़कर चौकी की ओर जाने लगा।

'काक !' राजा ठीक प्रकार न समझने के कारण चिढ़कर बोले, इस तरह जबरदस्ती क्यों करता है ?' जयदेव अपना घोड़ा तनिक आगे लाये।

'देखिये !' काक बोला, 'उन आने वालों को देखिये ? एक शब्द भी अधिक बोले तो एक ही प्रहार में अचेत करके उठा ले जाऊँगा।

चलिये !' कहकर काक ने महाराज के घोड़े को जोर से चाबुक मारा। वह काक के घोड़े के साथ एकदम टेकरी के नीचे उतरागया। राजा की दृष्टि काक की मुख मुद्रा पर पड़ी। उसका गाम्भीर्य, उसकी तेजस्विता, उसकी भयंकर स्थिरता, उसकी दूरदर्शिता, इन सबने राजा के हृदय में विचित्र श्रद्धा को अंकुरित किया।

थोड़ी देर में वह पत्थर की चौकी के सामने पहुंचा। घोड़े पर बैठे ही-बैठे काक ने द्वार खटखटाया। एक चौकीदार ने जैसे ही द्वार खोला वैसे ही काक झट से द्वार धकेल कर अन्दर घुस गया। राजा, जयदेव और खेमा तीनों उसके पीछे-पीछे गये। किन्तु इसके पहले ही काक ने उस चौकीदार के मुख पर हाथ रखकर उसको भूमि पर पटक दिया था। उसकी पगड़ी से वह उसके हाथ-पाँव बाँध रहा था। यह गड़गड़ सुनकर अन्दर से दो आदमी दौड़े आये। महाराज खेमा और जयदेव दोनों उन पर टूट पड़े। थोड़ी ही देर में तीनों चौकीदार बांध दिये गये।

'महाराज ! आपकी पगड़ी और कलंगी।'

जगदेव ने विना एक अक्षर बोले ही पगड़ी और कलंगी उतार कर काक को दे दी।

'खेमा ! जितने बन सकें उतने घोड़े अन्दर ले ले। देव ! मैं जाता हूं। खेमा ! ध्यान रहे, महाराज को कुछ भी हो उससे पहिले तेरा सिर धड़ से अलग हो जाना चाहिए।'

'जो आज्ञा !'

'और परमार ! यह महल की व्यवस्था करने जितना सरल नहीं है। महाराज को कुछ भी हो गया और मैं बचा रहा तो वंथली से बच कर निकलना कठिन हो जायेगा, याद रखना।'

'काक ! 'प्रशंसा से स्तब्ध बने राजा ने कहा, 'तू रह जा, जगदेव को जाने दे।'

'महाराज ! यहां रहकर बच जाना सरल है। कठिन काम दूसरों

'चल उसे पकड़ें।'

परन्तु उन्हें यह करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आगे जाते हुए अश्वारोहियों के आगे जाने वाले ने इन दोनों को देख लिया। वह तुरन्त घोड़ा फेरकर राजा और जगदेव की ओर आने लगे। सूर्योदय होने ही वाला था। चारों अश्वारोहीएक-दूसरे के निकट आ गए।

जयसिंह देव महाराज की जय! ' नवागन्तुक ने कहा।

'का··· क' कटकटाते दांतों में से महाराज का यह शब्द निकला 'जगदेव! उसे बुला ला।' कहकर उन्होंने घोड़ा रोका। जगदेव आगे गया, किन्तु उसके पहले तो काक ही वहाँ आ पहुंचा।

'देव! घणी घणीखम्मा' काक ने मुस्कराकर कहा और फिर परमार की ओर मुड़ा। परमार! महाराज इस प्रकार घूमें उस समय क्या यह घोड़ा लाना चाहिए? पूरा संसार जानता है कि पाटण के स्वामी के सिवा सुनहरी नाल वाले घोड़े पर दूसरा कोई नहीं बैठता। शत्रु देख ले तो···?' कहकर काक ने उदय होते हुए सूर्य की किरणों में चमक रही राजा के घोड़े की नालों की ओर संकेत किया।

'तेरी सलाह लेने के लिए नहीं खड़ा हूं।' क्रोध से कांपते हुए राजा बोला, तू कब का निकला है?'

'मध्यरात्रि के पश्चात् अन्तिम मुहूर्त में।'

'क्या कर रहा है?'

'चोकियों का प्रबन्ध कर रहा हूं।'

'किसके कहने से ?'

'मैंने दण्डनायक से बात-चीत कर ली थी।'

'प्रत्येक बात में हाथ अड़ाने का तुझे अधिकार नहीं है।' काक! आज तूने मेरे सामने सिर उठाने का साहस किया है।' दाँत पीसकर राजा ने कहा।

'सेवक ऐमा स्वप्न में भी नहीं कर सकता, महाराज किस आधार पर कह रहे हैं?' शांति से काक बोला।

'मेरे प्रहरियों को तूने मारा ?'

हाँ, वह मुझे वंदी समझने की धृष्टता कर रहे थे। आप तो जानते हैं कि भटराज का अपमान करने पर सैनिक की क्या दशा होती है ?'

'उन्होंने क्या किया था ?'

'मुझे महल से बाहर जाने से रोका था।'

'तूने अपना नाम नहीं बताया होगा।'

'बताया था, किन्तु उन्होने कहा कि मैं होऊँ तो भी रोकने की आज्ञा है।'

राजा ने जगदेव की ओर देखा। वह चिताग्रस्त मुख से यह वार्तालाप सुन रहा था।

'परन्तु मेरे गढ़ में मेरे सैनिकों पर हथियार क्यों चलाया ? मुझसे कहना था।'

'देव ! मध्यरात्रि को रनवास में आता आपसे पूछने ?'

'परमार को कहना था।'

'क्षमा करें ऐसे कुछ ही व्यक्ति हैं जिनसे मैं आज्ञा लेता हूं। परमार उन व्यक्तियों में नहीं है।'

राजा फूट पड़े। 'अर्थात् ?' वे मोटे स्वर में बोले।

काक ने साहस से ऊपर देखा, 'किसी ने मुझे रोकने का साहस अब तक नहीं किया, और न अब कर सकेगा।'

'अच्छा ? परमार ! इसके हाथ बांध।' राजा ने आज्ञा दी।

काक गर्व से देखने लगा। परमार ने घोड़ा एक डग भी आगे नहीं बढ़ाया। पीछे खेमा काक की आज्ञा की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा था। ठहाका मार कर हँस पड़ा।

'परमार ! यह रहे हाथ। बाँधो। सोलंकियों का शासन मेरे लिए सदा मान्य रहा है।' कहकर उसने स्वयं अपने हाथ लम्बे कर दिए। परमार ने जीन में से रस्सी निकाल कर काक के हाथ बाँध लिए।

'इस घोड़े की लगाम हाथ में ले।' राजा ने जगदेव से कहा। जग-

देव ने आज्ञा का पालन किया।

'क्यों रे, तेरा नाम क्या है ?'

'खेमा अन्नदाता !'

'तू भी पीछे-पीछे चल।'

'जैसी आज्ञा।'

'राजा ने घोड़े को एड़ लगाई और चारों घोड़े वेग से आगे बढ़े।

खेमा ने काक से दृष्टि मिलाकर आँखों से संकेत किया। काक यदि आज्ञा देता तो उसके बन्धन तोड़ने के लिए वह तत्पर था। काक गर्दनने हिलाकर अस्वीकृति दी।

५३

कुछ ही देर में वह सब एक उजाड़ स्थान पर आ गए। यह चौकियां भी दूर-दूर थीं और गांव भी छोटे-छोटे और बहुत दूर-दूर थे। दोनों सेनाओं की छावनियों से भी यह स्थान बहुत दूर था।

राजा का शौर्य जाग पड़ा। प्रातःकाल के उन्मत्त पवन ने उनमें अपार उत्साह भर दिया था। काक के प्रति जो आवेश था वह वीरता के उत्साह में शनैः-शनैः परिवर्तित होता जा रहा था। एक चौकी आई किन्तु वह नितान्त निर्जन दिखाई दे रही थी। सब चकित हो गए, उन्होंने सावधानी से चौकी की परिक्रमा लगाई। एक ओर चौकीदार मरा हुआ पड़ा था।

'जगदेव ! ऐसा लगता है शत्रु घुस आए हैं।'

'हां, देव !'

'खड़ा रह, देखता हूं।' राजा घोड़े से उतर पड़े। जगदेव के हाथ में तो बन्दी काक के घोड़े की लगाम थी इसलिए राजा की आज्ञा के

बिना उसे छोड़ भी तो नहीं सकता था।

'खेमा ! महाराज के आगे-आगे चल।' काक ने तुरन्त राजा के रक्षण के लिए आज्ञा दी।

खेमा उतरा और आगे गया और चौकी का द्वार खोला। पहले खेमा अन्दर गया और कहा—'अन्नदाता ! तीन व्यक्ति मरे पड़े हैं।'

'देखा जायगा।' कहकर राजा अन्दर घुसा।

तीन व्यक्ति पड़े थे। दो मरे हुए पड़े थे और एक खम्भे से बंधा हुआ था।

'जय सोमनाथ !' उन्हें देखकर बंधे हुए सैनिक ने कहा।

'जय सोमनाथ !' महाराज ने कहा, 'खेमा ! इसके बन्धन खोल। क्यों रे, क्या हुआ ?'

'देव !' प्रश्नकर्ता का पद ऊंचा लगने के कारण सैनिक सम्मान से बोला, 'सोरठी दण्डनायक महाराज की घोड़ी चुरा ले गए।'

'परशुराम की घोड़ी ?' राजा ने पूछा।

'क्या, परशुराम की घोड़ी सम्पूर्ण सोरठ में विख्यात थी और सैनिक गण यही विश्वास करते थे कि उसी घोड़ी के प्रताप से दण्डनायक का प्रताप दुर्जय था।

'हां, देव !' सैनिक ने कहा।

'कब ले गए ?'

'एकाध घड़ी ही हुई होगी।'

'किधर गए ?'

'इस ओर।'

'दूसरे चौकीदार जीवित हैं या नहीं, पता लगा।' राजा ने चौकीदार से कहा, 'हम निश्चय ही घोड़ी पकड़ लाते हैं। चल खेमा !' कहकर राजा बाहर आए। उनके मुख पर आवेश छा रहा था।

'जगदेव !' सोरठी परशुराम की घोड़ी चुराकर ले गए।

'काली घोड़ी ?'

और निशाना लिया और नई टोली में से एक को घायल कर दिया।

घायल सैनिक चीखता भूमि पर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर आगे जाते हुए अधिकतर सैनिक दौड़कर पीछे लौटे। उन्होंने तीर से घायल सैनिक को देखा, तीर किधर से आया यह भी देखा। वह आपे से बाहर हो गए। ललकारों, गालियों और पत्थरों की बौछार होने लगी। जयसिंहदेव दांत पीसकर देखने लगे। उनके मुख पर से विलास के चिह्न अदृष्ट हो गए, और रसिक स्वभाव की कोमल रेखाएँ कठोर हो गईं। फिर भी शांत थे। भय से वे डर जायें—ऐसे नहीं थे क्योंकि उनके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि वे सबसे निराले और देव हैं। ऐसा भी नहीं था कि कोई उन्हें हटा सके या मार सके। उन्होंने नीचे झुककर दूसरा तीर लिया और चला दिया। एक और सैनिक गिर पड़ा। बाहर लोगों में हाहाकार मच गई। वह पीछे हट-कर दूर हो गए। उनमें फैली खलबली देखकर राजा अपनी मूंछों में हँसे।

थोड़ी देर तक दोनों पक्ष शांत रहे।

'परमार! वह सब निश्चिन्त होकर बैठ किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता! मुझे तो पल-पल संकट बढ़ता लगता है।'

'कोई मार्ग दिखाई नहीं देता तुझे?'

मुझे तो महाराज! एक ही मार्ग दिखाई पड़ता है।'

'कौन सा?'

'मैं घोड़ा लेकर बाहर जाऊँ और इन सबसे लड़ूं इस लड़ाई का लाभ उठाकर आप और खेमा निकल जाइए।' परमार ने कहा।

'इन सब के पास तीर-कमान हैं कोई घायल कर दे तो? राजा ने शंका से कहा।

'किन्तु यहाँ बैठे रहे और अधिक व्यक्ति आ जायें तो?'

'तब तक क्या कोई हमारी सहायता को नहीं आयेगा?'

'कोई नहीं आया तो ?' परमार ने शंका प्रकट की।

'कैसी बात करता है ?' राजा ने साहस से हँसकर कहा, दो-तीन दिन तक तो बड़ी सरलता से यहां बैठे रहेंगे ।'

'महाराज ? खेमा खिड़की के सामने खड़ा हुआ था, वहीं से बोला, दो दिन कौन रहेगा ? वह तो चौकी जला देने की युक्ति कर रहे हैं।' सब इस प्रकार स्तब्ध हो गये मानो बिजली कड़की हो। फिर सब की समझ में वास्तविक स्थिति आ गई और हाथों के तोते उड़ गए।

५५

महाराज छलाँग मारकर खिड़की तक गए और बाहर देखने लगे। दो-तीन लोग हाथ लम्बे करके बातें कर रहे थे; एक व्यक्ति चकमक से आग जला रहा था; दूसरे दो-एक लोग सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे थे। थोड़ी देर तक राजा एकाग्रता से देखते रहे; एक व्यक्ति लकड़ी जलाकर द्वार में आग लगाने के लिए कह रहा था यह स्पष्ट दिखाई पड़ा। स्थिति बडी भयंकर लगी। राजा ने एक गहरी साँस ली और भवें तानकर कुछ देर तक विचार किया। थोडी देर पश्चात् उन्होंने गर्दन ऊँची की।

'परमार ! तेरी बात सच है। अब हमें मरना और मराना ही पड़ेगा।'

उत्तर में परमार ने दाढ़ी में बल दिया।

'सुन ! एक द्वार खोल दे। यदि बाहर निकलेंगे तो निश्चय ही यह सैनिक बींध देंगे। तू द्वार के बीच खड़ा हो जा। तेरे पीछे मैं खड़ा होता हूं और सबसे पीछे खेमा बैठा-बैठा तीर चलायेगा। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरे को टिकाने लगा देंगे और समय देखकर घोड़ों पर बैठकर भाग निकलेंगे।' राजा ने अपनी योजना बताई।

'जो आज्ञा।' कहकर परमार सीढ़ियां उतरा और अपना प्रचंड खड्ग नंगा करके हाथ में लिया। राजा ने एक हाथ में भाला और दूसरे में

तलवार ली और द्वार से कुछ दूर पर वह खड़े हो गये। घोड़ों को तैयार कर पीछे घुटनों के बल बैठकर खेमा ने निशाना साधा। परमार और खेमा ने महाराज की ओर इस प्रकार देखा मानो यह उनका अंतिम समय हो। फिर भी तीनों जानते थे कि इसके सिवा रक्षा करने का और कोई मार्ग नहीं है। जब तक चालीस योद्धा घेरा डालकर पड़े हों तब तक बचने का कोई अन्य मार्ग नहीं था।

'अन्नदाता! सावधान मैं द्वार खोलता हूं।'

'खोल!' शाँति में सोलंकी ने आज्ञा दी।

परमार ने महाकालेश्वर का स्मरण करके अर्गला हटाई और एकदम एक द्वार खोल दिया।

द्वार खुलने की आवाज सुनकर बाहर के बैठे हुए लोग चमके और निश्चित होकर द्वार की ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण उन्होंने जयघोषणा की; कितने ही तो खिलखिला कर हँसने लगे। आगे खड़े हुए सैनिक शस्त्र निकालकर चौकी में से बाहर निकलने वाले को भूमिसात् करने के लिए तत्पर हो गये, किन्तु दूसरे ही क्षण वे तनिक चकित होकर खड़े हो गये; चौकी के अधखुले द्वार से कोई नहीं निकला। सोरठी सैनिक थोड़ी देर तक देखते रहे, फिर आगे बढ़े। एक पल के लिए उन्होंने परमार के उग्र मुख को भयानक अट्टहास करते देखा और अधीर होकर अधखुले द्वार की ओर बिना सोचे-समझे दौड़ पड़े। उत्साहोन्मत्त सोरठी जैसे ही द्वार में घुसे कि एक प्रचंड चमचमाता खार के पीछे से आगे आया एक झटके में दो सैनिकों के सिर धड़ से अलग होकर धूल धूसरित हो गए; पीछे के एक को तीर लगा और वह धरती पर लुढ़क गया। किसी को भान न रहा कि क्या हो गया। पीछे आने वाले पीछे हटे और अधखुला द्वार जैसा था वैसा ही निर्जन हो गया एक ही पल में यह खेल समाप्त हुआ। आक्रमण करने वाले चौंक पड़े और दूर हटकर एक दूसरे से मंत्रणा करने लगे। थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने दो तीक्ष्ण बाण छोड़े। वे अधखुले द्वार में होकर आरपार हो गए। उत्तर में मात्र परमार का अट्टहास सुनाई पड़ा। खेमा के तीर से घायल हुए व्यक्ति

की वेदना-भरी चीत्कार के सिवाय सब कुछ शांत था। चौकी में तीन व्यक्ति प्रतीक्षा करते हुए खड़े थे। धरती अपनी निश्चित गति से दौड़ रही थी।

मध्यान्ह हो गया। सोरठ का प्रखर सूर्य भी मानो रंग में आ गया था।

थोड़ी देर में महाराज और उनके साथियों ने नया और अपरिचित स्वर सुना वह किसी वृद्ध का विनोद-भरा स्वर था।

'छोकरो! क्या कर रहे हो?'

'मेरे।' परमार बड़बड़ाया और बंद द्वार के छिद्र में से देखकर बोला, महाराज! मेरे पीछे छिपकर रहियेगा। एक बूढ़ा आठ-दस अश्वा-रोही लेकर आया है। एभल नायक के विषय में सुना था, कहीं वही तो नहीं है?'

'बड़ी श्वेत मूंछें हैं? मोटा और नाटे कद का है?' राजा ने पूछा और फिर जिज्ञासा न रोक सकने के कारण आगे आकर कहा 'परमार! हट, तनिक देखने दे।'

परमार हटा और राजा ने देखा।

'अनर्थ हो गया! यह तो सचमुच एभल ही है।'

बाहर अचूक योद्धा आया है इसका प्रमाण तुरन्त ही मिल गया।

राजा देखने लगे अतः परमार के शरीर का कुछ भाग खुले द्वार में से दीखा ही था कि सन्न् करता हुआ एभल का तीर आया। एभल का निशाना चूकता नहीं था किन्तु परमार के भाग्य से तीर उसके शरीर पर खरोंच ही बना सका। बाहर के सैनिकों ने एभल को जानकारी दे दी लगती थी। थोड़ी देर तक इस वृद्ध का निश्चित हास्य ही सुनाई देता रहा। बाहर के सैनिक चतुर नायक की आज्ञानुसार कुछ युक्ति रचते-से लगे। परमार के स्नायु आवेश में तन गए। 'अन्नदाता!' उसने मोटे स्वर में कहा, 'यह बन्द द्वार भी खोलता हूं। सावधान रहिएगा। मैं उसको एकदम घुसने देकर फिर द्वार के मध्य में खड़ा होकर युद्ध करूंगा भगवान सोमनाथ आपकी सहायता करें।'

परमार होंठ पीसता हुआ बन्द द्वार पर अपना कन्धा टेककर खड़ा हो गया। बाहर के लोग बन्द द्वार के सामने रहकर दो-तीन बड़े लट्ठों

को सौंपने की मेरी आदत नहीं। जगदेव ! द्वार बन्द करो।' कहकर काक ने बाहर जाकर द्वार बंद किया और राजा के घोड़े पर चढ़कर यहाँ से निकला।

५४

काक चौकी से तनिक आगे आया और पीछे आते हुए सैनिकों पर दृष्टि डालकर उन्हें ध्यान से देखने लगा। वह निकट ही टेकरी पर आ पहुंचे थे और चारों ओर देख रहे थे। वह इन चारों की गतिविधि समझ गये हों ऐसा न लगा। काक ने घोड़ा रोका, राजा के जीन से बंधा हुआ छोटा किन्तु दृढ़ धनुष हाथ में लिया और एक अचूक तीर फेंका। तीर का निशाना सालक्ष्य था। तीर जाकर उस टोली के नायक को जो इधर-उधर देख रहा था लगा, और वह घायल होकर घोड़े पर से गिर पड़ा।

सम्पूर्ण टोली का ध्यान काक की ओर आकर्षित हो गया उसके सिर की कलंगी और उसके लाल घोड़े की नालें प्रातः के प्रकश में चमक रही थीं। विकराल पशु की गर्जना के समान वह एक ही स्वर में बोल उठे, 'जेसंग सोलंकी !' और उसके पीछे भागे। काक को यही चाहिए था। उसने जोर से एड़ मारकर जयसिंहदेव के घोड़े को सरपट भगाया। चौकी के ऊपर के भाग की जाली में से राजा ने काक को भागते हुए और उस टोली के अधिकतर घुड़सवारों को उसके पीछे भागते हुए देखा। इस राजसेवक की भक्ति देखकर उनका हृदय उमड़ आया। कैसे-कैसे वीर एवं योद्धा उसकी कीर्ति की वृद्धि के लिए अपने प्राण न्योछावर कर रहे हैं।

'अन्नदाता !' जगदेव ने पीछे से आकर राजा का ध्यान खींचा। वह कुछ व्यक्ति हमारी ओर आ रहे हैं।'

'हां ! काक ने जिसे घायल किया था उसे लेकर।

'और वह देखिए !' एक व्यक्ति को सबसे अलग होकर दूसरी दिशा में जाते देखकर परमार ने कहा । 'मुझे लगता है वह वृक्ष के नीचे बैठे हुए व्यक्तियों को बुलाने जा रहा है।' राजा ने कहा।

'सब आ जायेंगे ।'

'हाँ,' हँसकर राजा ने गिनते हुए कहा, पन्द्रह-एक तो यह हैं, और एक-दो-तीन-चार-पांच और वे चार—नौ-दसेक आ रहे हैं।'

'तो कुल पच्चीस हुये ।'

'राजा को विनोद सूझा, 'हाँ ! हम में से प्रत्येक के भाग में आठ-आठ पड़ेंगे ।'

परमार ने गर्दन हिलाई।

'परमार ! नब्वे आवें तब तक तो चिन्ता नहीं।' कहकर राजा हँस दिये।

'मैं समझा नहीं।'

'काक के पीछे तीस आदमी गये हैं न।' राजा ने शान्ति से कहा, 'खेमा कहाँ है ?'

'यह रहा, देव!' कहता हुआ खेमा कुछ रोटियाँ और मिरचें लेकर ऊपर आया। 'महाराज ! इतना-सा भोजन हाथ लगा है। खा लीजिये। कौन जाने फिर कब भोजन मिल सके ।

कर्णदेव सोलंकी के रसिक पुत्र को बड़ी और मोटी रोटियां देखकर कंपकंपी सी हो आई। किन्तु उन्हें खेमा की सलाह ठीक लगी अतः एक-एक टुकड़ा करके बड़ी कठिनाई से गले उतारीं।

'खेमा ! तूने उन चौकीदारों का क्या किया ?'

'महाराज !' उन्हें नीचे कोठरी में बन्द कर आया हूं।'

'परमार !' महाराज बोले, वह लोग यहां आयें उससे पहले भाग निकलें तो कैसा ?'

'चलिये' कहकर परमार ने कमरबन्ध कसा। परमार की परिस्थिति

ऐसी गम्भीर होती दिखाई देने लगी कि उसकी बोलती ही बन्द हो गई थी। ऐसे समय में बोलने से अधिक युद्ध करना उसे स्वाभाविक लगता। तीनों-के-तीनों नीचे उतरकर घोड़ों के निकट गये। इतने में इन्हें दूर से आते हुए लोगों का स्वर सुनाई पड़ा। जगदेव ने चौंककर चारों ओर देखा, राजा के होंठ कड़े हो गये।

'लगता है, अधिक सैनिक आ मिले हैं।' जगदेव ने कहा।

खेमा भी सावधान हो गया था। वेग से ऊपर जाकर देख आया।

'वह इसी ओर आ रहे हैं।'

'कितने हैं ?'

'बीस-पच्चीस।'

राजा की आंखों में आवेश की चमक थी।

'हम अभी बाहर नहीं निकल सकेंगे।'

बाहर से आगन्तुकों ने द्वार खटखटाया।

वह शांत खड़े रहे। थोड़ी देर पश्चात् बाहर वालों ने अधीरता से द्वार खटखटाया और चिल्लाकर कहा, 'चौकीदार! द्वार खोल! खोल!'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ ही देर पश्चात् द्वार पर पदाघात होने लगे और गालियों की बौछार होना आरम्भ हो गया।

'अन्नदाता!' जगदेव ने कहा, 'मुझे एक ही मार्ग दिखाई देता है।

'क्या ?'

'मैं बाहर जाकर बन सके इतनों को ठिकाने लगाता हूं। दस-पन्द्रह को तो लगा ही दूंगा। तब तक आप यहाँ से भाग निकलें।'

राजा मुस्कराए, 'खूब [illegible] तुम ही सबको आना है, क्यों ? काक ने संकट से रक्षा की, तू औरों की रक्षा कर और जयसिंहदेव सोलंकी कायर के समान भाग निकले! देखता जा, सभी ठिकाने लग जायेंगे।

'किस प्रकार ? हम अन्दर रहकर लड़ न सकेंगे। ऊपर की जाली से तीर भी नहीं जा सकते।'

बाहर से लोग अधीर होकर द्वार पर निरन्तर आघात कर रहे थे। दूसरी टोली जो वृक्ष के नीचे बैठी थी अब वह भी आ मिली थी। वह सब आपस में पूछताछ कर रहे थे। एका-एक एक आदमी ने ढेला लेकर जाली की ओर फेंका। कुछ धूल उड़कर राजा की आंखों में जा बैठी।

वह सोलंकी के आदमी हैं। एक तो भाग गया। इन्हें पकड़कर बाहर निकालो।'

राजा मुस्कराया 'परमार ! जयसिंहदेव सोलंकी कैसा फँस गया ? मीनलदेवी जानेंगी तो कितनी क्रुद्ध होंगी ?'

आज वह मरने वाला है, और कल खेंगार यह सुनकर बड़ा प्रसन्न होगा। उस चिपटे नाक वाले को देखा ? मेरी चले तो उसकी नाक खींच लूँ।'

'अन्नदाता ! वह लोग थककर बैठने लगे हैं।'

'यह जाली तनिक बड़ी होती तो एक-एक को एक-एक तीर में बींधता।'

'जाली लकड़ी की है। कहो तो बड़ी कर दूं ?' खेमा ने पूछा।

'हाँ' राजा ने उत्साहित होकर कहा।

'परन्तु वह लोग सुन लेंगे।' परमार ने कहा।

'कुछ देर में अधिक व्यक्ति आ पहुंचेंगे तो मर ही जायेंगे न ? खेमा कोई हथियार है ?'

'नीचे एक कुल्हाड़ी मिली है।' खेमा ने कहा।

'जगदेव ! उस पीछे वाली जाली पर पहले जा।'

जगदेव शीघ्र ही उस जाली की ओर गया और थोड़ी ही देर में बीच का टुकड़ा तोड़कर दो छिद्रों को एक कर डाला। खेमा ने महाराज को धनुष बाण दिये। जगदेव उन्हें लेकर जाली के सामने गए

को पकड़कर उनकी शक्ति से द्वार खोलने के लिए आए। उन्होंने एक नारा लगाया और लट्ठों से द्वार पर आघात किया। घर कांप उठा। द्वार थोड़ा-सा खुला किन्तु जगदेव के बल से फिर बन्द हो गया। सोरठी सैनिक पीछे हटे और फिर लट्ठों को साथ बांधकर निनाद किया। परमार कुछ पीछे हटकर खड़ा हो गया। बाहर के झटके से निराधार द्वार एकदम खुल गया। आक्रमण करने वाले कुछ लोग गिर पड़े।

'जय सोमनाथ' की भयंकर घोषणा करके परमार उनपर टूट पड़ा और देखते ही देखते घायल हुए सैनिक चारों ओर भागने लगे। दोनों द्वार खुल गए थे इसलिए बाहर निकलकर दोनों द्वारों के मध्य में खड्ग घुमाता हुआ परमार खड़ा हो गया। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था किन्तु आज स्वामी के संरक्षण के लिए उसमें विचित्र शौर्य आ गया था। उसकी प्रचण्ड भुजाओं में अपार बल प्रकट हुआ। उसकी लम्बी तलवार दसों दिशाओं में नृत्य कर रही थी मानो कोई महाज्वाला पवन में नृत्य कर रही हो खड्ग के प्रहार से उसे स्पर्श नहीं कर रहे थे, तीरों की वर्षा खड्ग से टकराकर छितरा जाती थी। एभल नायक की आज्ञा से सोरठी सैनिक पैदल और अश्वों पर घूम-घूम कर उसकी ओर बढ़ रहे थे, किन्तु परमार को कभी कभी तनिक घायल करने से अधिक वे कुछ न कर सके।

पीछे महाराज भी सावधान होकर खड़े हुए थे। परमार पर अचानक होते प्रहारों को झेलना और उनके सामने आने वाले को ठिकाने लगाना उनका काम था। परमार थोड़ी देर में थक जायगा फिर इस आक्रमण का सामना करने का काम उन पर ही आएगा यह महाराज समझते थे। और उसके लिए वह तैयार भी हो गये थे। पीछे बैठे खेमा के तीर भी अचूक निशाने पर लगा दिए।

घड़ी दो घड़ी तो परमार शौर्य से लड़ता रहा किन्तु उसके पश्चात् उसका श्वास थकने लगा और स्थान-स्थान पर खून भी बहने लगा सामने के वृक्ष के नीचे घोड़ी पर बैठा हुआ एभल हँस रहा था और विपक्ष के सभी सैनिक अभी थके नहीं थे। महाराज सोच ही रहे थे कि क्या करें इतने में खेमा ने पीछे से उनके कंधे पर हाथ रखा, 'महाराज ! चौकी के बाहर निकलिए। उस दुष्ट ने पीछे छापर पर से

आदमी चढ़ाए हैं। वह उधर से उतर कर अभी-अभी आने ही वा है। तब हमारी दशा चक्की के दो पाट के बीच में हो जायेगी।

'ठीक।' जयदेव ने कहा, परमार! तनिक आगे बढ़ जिससे और खेमा बाहर निकल सकें। पीछे से सैनिक आ रहे हैं।'

परमार ने सुना या न सुना कुछ मालूम नहीं, किन्तु वह [illegible] अवश्य गया। जयदेव बाघ के समान छलांग मार कर बाहर [illegible]। उनका सुन्दर मुख तेज से दीप्त था, उनकी विशाल आँखें लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने जय सोमनाथ की घोषणा की और [illegible] की ओर पीठ करके लड़ने लगे। एक से दो होते देखकर सभी सोरठ-योद्धा उन पर टूट पड़े।

खेमा द्वार के सामने पड़े हुए शव के निकट लेट गया। धीरे-धीरे पेट के बल आगे सरक रहा था। उसने धनुष-बाण बड़ी [illegible] से पकड़ रखे थे। महाराज का आक्रमण इतना विकराल था कि किसी ने खेमा की ओर ध्यान नहीं दिया एभल नायक ने धूप से बचने के लिए कपाल पर हाथ की ओट की।

'कौन, जैसंग सोलंकी?' उसने मोटे स्वर में कहा, '[illegible] उसे जीवित पकड़ेगा उसे एभल नायक का पद प्राप्त होगा!' [illegible] सोलंकी को स्वयं इस प्रकार लड़ते देखकर योद्धा पल-भर के लिए पीछे हटे और फिर 'रा' खेंगार की जय' कहकर टूट पड़े। महाराज [illegible] उमड़ रहा था। उनकी आँखें लाल हो गई थीं। उन्होंने रक्त [illegible] सैनिकों को बढ़ते हुए देखा, दूर एभल नायक को मूँछों पर ता[illegible] देखा निकट ही परमार को भयंकर शौर्य दिखाते हुए देखा [illegible] लगा कि परमार उनकी ओर आते सैनिकों को स्वयं रोक [illegible] परन्तु उसका श्वास रुक रहा था और उसके कपाल से [illegible] की धाराएँ बह चली थीं, इसलिए वह कितनी देर तक टिक सकेगा [illegible] नहीं कहा जा सकता था। जयदेव के हाथ में तलवार फूल के समान घूम रही थी। वह प्रहार झेलते और करते। तीरों की वर्षा करते और रह-रह कर 'जय सोमनाथ' का घोष कर उठते। उन्हें लगा कि [illegible] उन्होंने अपनी लाज रख ली। अन्तर मन में उन्हें उनके पूर्वज [illegible] करते हुए सुनाई पड़े। परमभट्टारक की उपाधि सार्थक होते [illegible]। गर्व के कारण शौर्य जितना था उससे कहीं अधिक बढ़ गया। एक क्षण के लिए उनकी आँखों के सामने अन्धेरा आया और चला गया।

उन्हें अधिक अच्छी तरह दिखाई देने लगा। मात्र उनके कानों में कुछ स्वर सुनाई पड़ने लगे उनका दायाँ हाथ कुछ ढीला पड़ने लगा। एक क्षण में उन्होंने हाथ बदल लिया ! वह बाएँ हाथ से खड्ग घुमाने लगे। सामने से आते हुए सैनिक के मुख पर उन्हें कायरता दिखाई पड़ रही थी। हो सकता है यह मात्र भ्रम हो रहा हो।

एकाएक परमार गरजकर अपनी ओर आते हुए सैनिक पर टूट पड़ा।

यह इस प्रकार क्यों घबराता है ? वह स्वयं तो अभी तक नहीं थका ! सभी ओर सैनिक घायल हो-होकर गिर रहे थे परन्तु खेमा कहाँ गया ?

एक भीषण चीत्कार सुनाई पड़ी। महाराज ने दृष्टि उठाकर देखा। उन्होंने कपाल पर से स्वेद और रक्त पोंछा। सामने घोड़ी पर से एभल नायक भूमि पर गिर पड़ा था। किसी ने उसे बाण मार दिया था। क्या खेमा ने मारा है ?

'शाबाश !' महाराज के मुँह से निकल गया। सैनिकों में खलबली मची। वह एभल नायक को देखने के लिए दौड़े। वेभान परमार ने लौटते हुए एक-दो सैनिकों को समाप्त किया ही था कि खेमा कूदकर आ पहुंचा। उसने राजा पर आक्रमण करने वाले कुछ सैनिकों को ठिकाने लगाया। दो-तीन भाग गए। राजा की आँखों के सामने अन्धेरा होने लगा। उन्होंने हाथ टेक कर दीवार का सहारा लिया। वह तलवार अब भी घुमा रहे थे किन्तु अब किसी को लग नहीं रही थी। परमार उनकी सहायता को आ रहा था, किन्तु निकट आते-आते थम से गिर पड़ा। राजा का कंठ सूख गया माथा चकरा गया।

'देव ! इस पानी से मुंह धो लीजिए।' खेमा का स्वर सुनाई पड़ा।

उन्होंने पानी लिया और मुंह पर डाल लिया। अब उन्हें कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगा। सब सैनिक भूमि पर पड़े हुए थे। परमार उनके पावों के सामने पड़ा हुआ था। खेमा और वह दोनों खड़े हुए थे।

'कहां गए सब ?' राजा ने इस प्रकार पूछा मानो वे कुछ समझ न पाए हों।

'यम के घर; कुछ भाग गए। महाराज आप दोन ने मिलकर ही

सभी को समाप्त किया है।'

'और एभल को तूने मारा?'

हां महाराज ! आप बाहर निकले और मैं लेटा-लेटा धनुष तीर लेकर निकला और पेट के बल सरकते-सरकते मैंने उसका काम तमाम किया है।'

'जीता रह !'

'महाराज ! समय गंवाने में लाभ नहीं है। वह काली घोड़ी वहां चर रही है। वह परशुराम ही की लगती है। थकी हुई भी नहीं लगती। मैं सब कर लूंगा, आप तुरन्त वंथली जाइए। अब और कोई आ जायेगा तो लड़ने की भी शक्ति नहीं है।'

'यह क्या कहता है ? जयदेव से कोई जीता भी है ?'

'जब तक सोमनाथ भगवान् की कृपा है तब तक क्या हो सकता है ?' कहकर खेमा घोड़ी ले आया और सहारा देकर जयदेव को उस पर चढ़ाया।

'थोड़ा पानी पी लीजिए और खड़े रहिए, यह तलवार साफ करके देता हूं, और यह धनुष-बाण भी लेते जाइए। हाँ, ठहरिए, इन एक-दो बड़े घावों को भी बाँध देता हूं।' कह कर खेमा राजा की सेवा में लग गया।

'तू भी तो चल !'

'देखूँ तो सही कि परमार जीवित है या नहीं।'

'खेमा ! आज तो हमने हद ही कर दी।' राजा गर्व दिखाए बिना न रह सके।

'महाराज ! काकभट जी का पता तुरन्त लगवाइएगा।' खेमा ने सूचित किया।

'अवश्य' राजा ने कहा और घोड़ी को एड़ मारी। परशुराम की सुविख्यात घोड़ी हिरन के समान उछलकर दौड़ पड़ी।

ताप दुःसह था, किन्तु राजा के मस्तिष्क में विजय का प्रमाद भी तो था। अकेले ही दुर्जय एभल और सोरठी सैनिकों को ठिकाने लगाया था और परशुराम की घोड़ी लौटा लाए थे। उनकी रगों में रक्त उछल रहा था, उनकी आँखों के सामने रंग-बिरंगे चित्र दिखाई दे रहे थे। सब कुछ सुहाना दिखाई पड़ रहा था। घोड़ी पवनवेग से जा रही थी।

चारों ओर की वस्तुएं भागती-सी लग रही थीं।

नथुने फूल रहे थे, घावों में खून निकल रहा था। परन्तु कानों में विजय-घोषणा हो रही थी। एकाएक एक के अनेक ही घुड़सवार चारों ओर से निकल आए। ये सब कहाँ से आ गए यह समझ में न आया। आगे आगे वाला परशुराम-सा लग रहा था।

साथ में कोई अपरिचित पुरुष था। नहीं, अपरिचित नहीं— उनका मुख उसकी रानी के समान था। उन्होंने घोष किया—'जयसिंहदेव महाराज की जय!'

'जय सोमनाथ!' राजा ने कहा।

सभी उन्हें घेरकर खड़े हो गए। उनका गला सूखने लगा।

'कौन, देवी? तुम कहाँ से? परशुराम तुम्हारी घोड़ी।' राजा ने बोलने का प्रयत्न किया किन्तु कंठ रुंध गया। 'परमार! काक! खेमा एभल' किन्तु कुछ भी स्पष्ट न कह सके। लोगों ने उन्हें सहारा दिया। अन्धेरा हो चला था।

५६

जयसिंहदेव महाराज को लगा कि उनके अंग-अंग में पीड़ा हो रही है और उनके हाथ पांव पर पट्टियाँ बंधी हुई हैं। क्या यह बन्दी बना लिए गये। क्या उन्होंने एभल नायक और सोरठियों पर विजय प्राप्त की, यह बात सच नहीं है! उन्हें लीलादेवी और परशुराम मिले वह क्या स्वप्न मात्र था? उन्होंने आंखें खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु ऐसा लगा मानो वह सी दी गई हों। बड़ी कठिनाई से वह आँखें खोल पाये। क्या वे कारागृह में थे? पांवों की ओर दो वृद्ध मनुष्य बैठे थे। सिरहाने के निकट एक स्त्री बैठी थी। उन्हें सभी के मुख परिचित लगे।

'बेटा! जयदेव!' मीनलदेवी का स्वर सुनाई दिया।

जयदेव ने स्वर पहचाना, 'माँ, मैं कहां हूं?'

'राजमहल में।' मीनलदेवी ने कहा, 'वैद्यराज, दवा लगाओ।'

'बहुत अच्छा।' कहकर वैद्यराज ने दवाई लगाई। राजा को कुछ आराम मिला।

'मां ! परमार कैसा है ? कौन मेहता जी ?' राजा ने पांवों की ओर बैठे हुए दूसरे व्यक्ति मुंजाल को सम्बोधित करके कहा।

'हां, महाराज।' मुँजाल ने कहा, 'परमार अच्छा है। चिन्ता की कोई बात नहीं।

'और एभल नायक ?'

'उसका जीना कठिन है।'

'और काक का क्या हुआ ?'

तू क्यों चिन्ता कर रहा है ?' मीनलदेवी ने टोका।

'मैं चिन्ता न करूं तो कौन करेगा ? वह तो मेरा दायां हाथ है।' राजा ने तनिक चढ़कर कहा। वैद्य ने उनके हाथ-पर-हाथ फेरा। मीनलदेवी ने राजा के माथे पर हाथ रखा। राजा तनिक अस्वस्थ होने लगे। राजा की मच्छरदानी के पीछे से एक निःश्वास सुनाई पड़ा। राजा ने सुना। उनके मस्तिष्क के आगे लीलादेवी का मुख आया।

'मेहता जी ! मैं कब अच्छा हो जाऊँगा ?'

'शीघ्र ही—दो-तीन दिन में ! चोट अधिक नहीं है।'

'परशुराम कहाँ है ?'

'बेटा उसे बुलवाने भेजें ?' मीनल ने पूछा।

'हाँ।'

मीनलदेवी की आज्ञा पाकर एक अनुचर परशुराम को बुलाने गया। राजा आँखें मूँदे पड़े रहे। थोड़ी ही देर में दंडनायक भी आ पहुंचे। राजा उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अतएव उसके जाते ही उन्होंने आँखें खोलीं।'

'परशुराम !'

'आज्ञा देव !'

'काक की खोज की ?'

'महाराज ! चिंता मत कीजिए। उसके लिए चारों ओर अनुचर दौड़ा दिए हैं।

'माँ ! मैंने उसके प्रति अन्याय किया और एक वह है कि मेरे लिए मृत्यु के मुख में चला गया। वह न होता तो आज हम सब एभल नायक के बन्दी बन जाते।'

'खेमा ने मुझे सच बता दिया है।' मीनलदेवी ने कहा, 'और खेमा स्वयं ही तो काक को खोजने गया है।'

'कौन जाता है और कौन रहता है उसकी मुझे चिन्ता नहीं। मुझे काक मिलना चाहिए।'

'महाराज!' मुंजाल ने कहा, 'आप इस समय शांत रहें। कल प्रातःकाल इच्छा हो तो आप स्वयं खोजने चले जाइएगा। मुझे भी काक की चिन्ता है।'

'नहीं तो उस खेंगार का पूरा-का-पूरा गिरनार ही उखाड़ फेकूंगा।' राजा ने कहा।

'अन्नदाता! अब मौन होकर सो जाय तो अच्छा!' वैद्यराज ने कहा। राजा ने पक्ष पलटा।

अगले प्रातःकाल खेमा लौट आया। उसने कल जहां युद्ध हुआ था वहां से पदचिन्हों के पारखियों की सहायता से काक के अश्व द्वारा पकड़ा हुआ मार्ग भी खोज डाला था। पदचिन्हों से लगा कि राजा से विदा होकर वह एकाध योजन आगे गया, पीछे सोरठियों की टोली भी बढ़ी चली आ रही थी, और सामने से कुछ दूसरे व्यक्तियों के आगमन के चिन्ह भी थे। वहां भिड़न्त के चिन्ह भी थे। कुछ व्यक्ति मरे, ऐसा भी लगा। वहां से उसने अनुमान लगाया सभी एभल नायक की चौकी की ओर गये।

आगे बढ़ना खेमा को बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं दिखाई दिया। किन्तु दो बातें स्पष्ट हो गईं—एक तो यह कि काक बन्दी बना लिया गया, और दूसरी यह कि उसे एभल की चौकी पर भी ले जाया गया। किन्तु काक जीता पकड़ा गया या मरा, एभल ने उसे बन्दी किया या मार डाला, वह चौकी में था या नहीं, इन प्रश्नों का निर्णय नहीं हो सका। मुंजाल और परशुराम ने मंत्रणा करके निश्चय किया कि इस समय एभल की चौकी पर हमला करने से कुछ हाथ नहीं लगेगा क्योंकि यदि कुछ सोरठी आवेश में आ जाते हैं तो काक को मार भी सकते हैं। एभल इस समय अचेत था अतः उससे भी कुछ मालूम नहीं हो सकता था।

स्थिति सचमुच गम्भीर हो गई। अच्छे होकर महाराज में काक को खोजने की अधीरता इतनी बढ़ गई थी कि उन्हें फिर ज्वर चढ़

आया। जगदेव परमार जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। एभल नायक मृत्यु के द्वार पर खड़ा हुआ था। मुंजाल ने सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिए। राजगढ़ के द्वार बन्द करके, राजा के अच्छे हो जाने का समाचार चारों ओर फैला दिया गया। सम्भव है एभल का बदला लेने के लिए मोरठी काक को मार डाले इस भय से एभल भी अच्छा है यह समाचार जूनागढ़ तक पहुंचाने की युक्ति की गई। सम्भव है इस समाचार का लाभ उठाकर खेंगार आक्रमण कर बैठें इसलिए ऐसा प्रबन्ध किया गया कि वह विजयी न हो सके। चारों ओर की चौकियाँ दृढ़ कर दी गईं। परशुराम के स्थान पर मुंजाल बैठे और चारों दिशाओं का अधिकार महाअमात्य ने अपने हाथ में ले लिया।

मीनलदेवी और वैद्यराज ने राजा की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। लीलादेवी मर्यादा के कारण राजा के निकट नहीं बैठ सकी।

तीन दिन हो गए, काक का पता नही लगा। यदि वह जीवित होता अथवा बन्दी न बना होता तो अवश्य लौट आता। यदि उसे एभल नायक ने पकड़ा होता तो वह एभल नायक के साथ क्यों नही था? सभी के मस्तिष्क में यह भारी शंका उत्पन्न हो गई कि काक एभल के साथ लड़ते हुए मारा गया यह शंका जैसे-जैसे दृढ़ होती गई वैसे-वैसे प्रत्येक व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होने लगा। मुंजाल का मुख गम्भीर हो गया और उसकी वाणी में मधुरता का स्थान कटुता ने ले लिया। मीनलदेवी को लगा कि काक की मृत्यु बहुत बड़ा अशुभ चिन्ह है और उसका अमंगल प्रभाव उनके पुत्र और पुत्रवधू पर अवश्य होगा। परशुराम उग्र हो गया और उसकी आँखें ऐसे रहने लगीं मानो धधक रही हों और उनमें क्रोध का आवेश होते हुए भी वह अपनी बेचैनी न छिपा सकी। लीलादेवी तो सिंहनी के समान अकेले ही इधर से उधर चक्कर काटती रहीं।

राजगढ़ पर चिंता के काले मेघ छा गये थे। प्रत्येक के हृदय में किसी नई, किसी अपशकुन-भरी बात की आशंका हो रही थी।